स्वामी सत्यानन्द जन्मशताब्दी शृंखला

BIHAR YOGA®

रिखियापीठ सत्संग

भाग 6

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग

भाग 6



SWAMI SATYANANDA SARASWATI
1923~2023
CENTENARY CELEBRATIONS

रिखियापीठ सत्संग 6

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में जनवरी से मार्च 1998 तक
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग 6

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

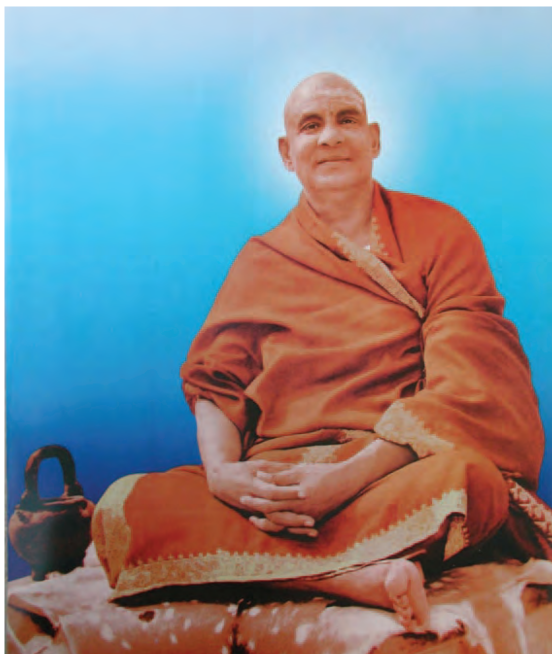
प्रथम संस्करण 2023

प्रकाशक एवं वितरक – योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु,
पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार

मुद्रक – थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, नई दिल्ली

ISBN: 978-81-946102-8-1

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.satyamyogaprasad.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005



अध्याय 1

मंदिरों में भगवान के लिए पूजा-पाठ क्यों किया जाता है? जब संसार की सब चीजें भगवान की ही हैं, तो पूजा में उन्हें फल-फूल चढ़ाने की क्या जरूरत?

इस तरह से तो हर बेटे को चाहिये कि अपने बाप की सेवा करे ही नहीं। बस कह दे, 'पिताजी मैं आपको क्या दूँ, सब तो आपका ही दिया हुआ है,' और सब कुछ अपनी जेब में रख ले। असली बात यह है कि भगवान को जो फूल आप देते हो, अगर देना बन्द कर दोगे तो बहुत-से घरों में चूल्हा नहीं जलेगा। आप व्यावहारिकता को क्यों नहीं देखते? अगर आदर्शवादी दर्शन पर चलोगे तो आधे लोगों का पेट कट जाएगा। 'भगवान को पेड़ा क्यों चढ़ायेंगे? उनको धूप-दीप क्यों दिखायेंगे? शिवजी के ऊपर क्यों दूध चढ़ायेंगे?' ऐसा सोचोगे तब तो मुश्किल है। कितने लोगों के घर में चूल्हा ही नहीं जलेगा। भगवान के बहाने कम-से-कम लाखों आदमियों का पेट तो भरता है न!

दुनिया में यह भी यथार्थ है। इस यथार्थ को कभी भी नजरअंदाज नहीं करना है। आखिर ईसाई धर्म में कितनी मोमबत्ती जलती है? इतनी जलती है कि वहाँ मोमबत्तियों के लिये ढेर सारे लघु उद्योग हैं। वहाँ सब लोग मोमबत्तियाँ बनाना जानते हैं। सब गिरजाघरों और ईसाई मठों के लोग बनाना जानते हैं। अगर यह कहो कि ईसामसीह को मोमबत्ती की क्या जरूरत है तो सारा मोमबत्ती उद्योग चौपट हो जाएगा। इसी तरह यहाँ तुम्हारा पेड़ा उद्योग ठप्प हो जाएगा, तुम्हारे फूल बेचने वाले बेकार हो जाएँगे। हिन्दुस्तान में फूलों की जितनी बिक्री होती है, वह मुख्य रूप से तो धर्म के आधार पर होती है न?

अगर तुम इस सिद्धान्त पर बन्द कर दोगे कि भगवान पर फूल मत चढ़ाओ, तो सब भूखे मरेंगे।

बचपन में हमको भी यह बात समझ में नहीं आती थी, पर अब समझ में आती है। जितनी भी चीजें भगवान के नाम पर चढ़ाते हैं, अगर उन्हें खत्म कर दिया जाए तो भगवान बहुत शुष्क यथार्थ बनकर रह जाएँगे, बिना चीनी के हलुवे की तरह। ठीक है तुम्हें पसंद हो सकता है, लेकिन हम तो भाई नहीं खायेंगे। हमें तो चीनी वाला हलुवा चाहिये। दुनिया के आधे उद्योग-धन्धे भगवान पर निर्भर करते हैं। अगर लोग आप की बात सुनना शुरू कर दें कि भगवान को जल नहीं चाहिये, भगवान को तुम्हारे दर्शन की क्या आवश्यकता है, वह तो तुम्हारे अन्दर है, भगवान की पूजा क्यों करे, भगवान को पूजा का शौक है क्या? तब तो व्यापार ठप्प, चूल्हा ठप्प, बैंकों की आमदनी ठप्प। और अगर यही मानते हो कि मन्दिर-तीर्थ जाकर क्या करेंगे, भगवान तो यहाँ भी हैं, घुसलखाने में भी हैं, तो ठीक है जाओ वहाँ।

जिस कर्म से मनुष्य का पेट भरे, अगर वह गुनाह न हो तो जरूर करो। भगवान के नाम पर भी गुनाह नहीं होना चाहिये, कोई सामाजिक अपराध नहीं होना चाहिए। भगवान को चाहे फूल चढ़ाओ, अगरबत्ती दिखाओ, पेड़ा चढ़ाओ, कुछ भी चढ़ाओ, कम-से-कम दो आदमियों का पेट भरेगा। नहीं तो बहुत मुश्किल हो जायेगी, दुनिया के पाँच अरब लोगों में तीन अरब लोग भूखे मर जायेंगे। दुनिया के पेट भरने का आधार भगवान ही है।

यह तो मैंने व्यावहारिक बात बताई। अगर फिर भी अपनी विचारधारा पकड़े रहते हो तब तो आपको बहुत-सी चीजें छोड़नी पड़ेंगी। सबसे पहले तो शादी मत करो। बिना शादी औरत को घर में रखो, क्या फर्क पड़ता है? अपना बेटा क्या बनाना, किसी का भी बेटा पकड़ लीजिये। दुनिया में जो सामाजिक या आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं वे मनुष्य की भावना पर आधारित होते हैं। तुम शादी करते हो, सामाजिक स्वीकृति लेते हो न? क्या उसके बिना स्त्री-पुरुष से बच्चा पैदा नहीं हो सकता? हो सकता है, मगर हमारी भावना इसको स्वीकार नहीं करेगी। मनुष्य के कर्म का आधार है भावना, और भावना में दो बातें हैं, पाप और पुण्य। पाप-पुण्य की भावना सबके मन में है, कोई मनुष्य उससे मुक्त नहीं है।

भगवान को फूल चढ़ाना, पूजा करना, आरती करना, यह करना, वह नहीं करना – यह सब मनुष्य की भावनाओं के नियम पर आधारित है। मनुष्य ने

अपने लिए एक भावनात्मक जीवन का निर्माण किया है। अच्छा लगता है, इसलिए करता है। हमारे रघुनाथ जी को देखो न, हमने उनको कम्बल पहनाया है। सीताजी को भी पहनाया है। ठण्ढी हो गई थी न अभी, तापमान गिर गया था तो हमने सत्संगी को बोला सर्दी लग जायेगी, पहना दो। हमें अच्छा लगता है। सब हँसने लगे जब हमने कहा भगवान को सर्दी लग जाएगी। हमने कहा, कम-से-कम हँसे तो। जहाँ खुशी हो, जहाँ मुस्कान हो, जहाँ आनन्द हो, वहाँ भगवान है। भगवान के साथ दार्शनिक सम्बन्ध रखना गलत है। अगर भगवान के साथ दार्शनिक सम्बन्ध रखना है तो अपनी बीवी के साथ भी रखना, अपने बाप के साथ भी रखना! पूजा-पाठ करना जीवन में बहुत अच्छी चीज है, अच्छा लगना चाहिये बस। तीर्थ-व्रत करना, हिमालय चढ़ना, बद्रीनाथ जाना, वैष्णव देवी जाना, गुरु-जनों के पास जाना, कीर्तन-भजन करना, यह सब अच्छी चीज है।

नाथ सम्प्रदाय

जो महिलाएँ दशनामी संन्यास में दीक्षित होती हैं उनको बोलते हैं संन्यासिनी। अब वह संन्यासिनी चाहे वेदांत मत को माने या योग मत को माने या भक्ति को माने, वह संन्यासिनी है। उसको योगिनी नहीं कहते हैं, क्योंकि योगिनी एक सम्प्रदाय है हम लोगों के यहाँ। योगिनी जो होती है वह नाथ सम्प्रदाय में होती है। नाथ सम्प्रदाय गुरु गोरखनाथ जी का चलाया हुआ एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय है, जिसे कनफटा योगी भी कहते हैं। उनकी जो दीक्षा होती है उसमें कान फाड़ कर कुण्डल डालते हैं। उनमें जाति, धर्म वगैरह का ख्याल नहीं रखते हैं। विवाहित, अविवाहित, ब्रह्मचारी कोई भी दीक्षा ले सकता है। आदमी कसाई का काम करता है या मोची का काम करता है, ये फर्क भी वे लोग नहीं रखते हैं। तुमने देखा होगा, लोग रास्ते में साँप को नचाते हैं या बन्दर को नचाते हैं, गेरू कुर्ता पहनते हैं, सफेद धोती पहनते हैं, पगड़ी बाँधते हैं, वे उस सम्प्रदाय के होते हैं। उनकी यही पहचान है कि वे एक झोला रखते हैं, झोले में भस्म रहती है, एक माला रहती है और थोड़ा-सा गाँजा लेते हैं। वह उनकी दीक्षा हो गई।

यह बहुत बड़ा सम्प्रदाय है। अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान तक फैला बहुत तगड़ा सम्प्रदाय है। जैसे सिक्खों में गुरुओं को बहुत मानते हैं वैसे नाथ

सम्प्रदाय में भी। मत्स्येन्द्रनाथ, फिर गोरखनाथ, अनेकों नाम आते हैं उनकी गुरु परम्परा में। उनके नाम के आगे आनन्द नहीं लिखा जाता है, नाथ लिखा जाता है।

महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर नाम से एक महान् संत हुए हैं। ये पण्ढरपुर के पास आलन्दी नाम के गाँव में रहते थे। उनके पिताजी इनके जन्म से पहले घर छोड़कर बनारस चले गये थे और संन्यास ले लिया था। माँ घर में अकेली रह गई। फिर एक विचित्र संयोग हुआ। आलन्दी एक तीर्थस्थान है, वहाँ पति के गुरु चलते-चलते पहुँच गये। तो यह भी उनके दर्शन करने को पहुँची। उन्होंने पुत्रवती भव कहकर आशीर्वाद दे दिया। यह बोली कि मेरे पति तो चले गए हैं, फिर पुत्रवती कैसे बनूँगी? गुरुजी ने नाम पूछा और पता चला कि वह तो उनका ही चेला है। वे सीधे बनारस गये और उसको वापस भेजा। उसने घर लौटकर फिर गृहस्थाश्रम शुरू कर दिया।

उनके तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। उनमें एक का नाम था ज्ञानेश्वर जो बहुत बड़े सिद्ध योगी हुए। छोटी उम्र में ही उन्होंने समाधि ले ली, आलन्दी के पास। महाराष्ट्र बहुत ही रूढ़िवादी प्रांत रहा है। वहाँ अभी भी बहुत छूआछूत और भेदभाव है। उस वक्त तो भयंकर था। वे लोग शास्त्रों को बहुत मानते हैं। जब इनके पिताजी वापस गये तो संन्यासी थे। शास्त्र कहता है जब संन्यासी वापस गृहस्थ हो जाता है तो वह चाण्डाल से भी नीच हो जाता है। ऐसे लोगों को समाज से परित्यक्त मानते हैं। संन्यासी जब शादी करके बच्चा पैदा करता है तो वह और उसकी जितनी भी संतानें होती हैं, शास्त्र के अनुसार बहिष्कृत मानी जाती हैं। इसलिए गाँव के लोगों ने उनको जाति से बहिष्कृत कर दिया।

अब ज्ञानेश्वर और उनके भाइयों को खाने तक की नौबत आ गई। घर-घर जाकर भीख माँगते थे, कोई खाना ही नहीं देता था। दरवाजा बन्द कर देते थे। किसी ने सुझाव दिया कि तुम पण्ढरपुर जाओ और शुद्धि कराओ। पण्ढरपुर जाकर वहाँ के पण्डितों से उन्होंने बोला। पण्डितों ने कहा, हमारे वेदों में तो ऐसा कुछ लिखा ही नहीं है कि बहिष्कृत की शुद्धि हो। संन्यास के बाद कोई शादी करे और उसका बच्चा हो, उसके शुद्धिकरण के बारे में हमारे यहाँ तो कुछ लिखा नहीं है। ज्ञानेश्वर ने कहा, 'वेदों में क्या रखा है? वेद तो कोई भी बोल सकता है, तुम भी बोल सकते हो, यह भी बोल सकता है, वह भी बोल सकता है।' उन्होंने कहा, 'यह भैंस भी बोल सकती है क्या?' ज्ञानेश्वर बोले,

'हाँ, वह भी बोल सकती है, इसमें क्या रखा है।' ऐसा कहकर उन्होंने पास खड़ी भैंस की पीठ पर हाथ रखा। भैंस ने वेदपाठ शुरू कर दिया! पण्डित चकित हो गये और उनकी शुद्धि कर दी गई।

इन तीन भाइयों में जो सबसे बड़े भाई थे, निवृत्ति, उन्होंने नाथ पंथ में दीक्षा ली थी, और उन्होंने अपने बाकी भाइयों को दीक्षा दी थी। ज्ञानेश्वर के गुरु उनके बड़े भाई ही थे। 22 साल की उम्र में उन्होंने समाधि ली थी, और उनकी समाधि का भी बड़ा विचित्र वर्णन है। उस वक्त महाराष्ट्र में एक बड़ा योगी था, चाँगदेव। जैसे तुम लोग घोड़े, गधे या मोटरगाड़ी पर सवार होकर जाते हो, वह हमेशा शेर पर बैठकर जाता था। उसने सोचा ज्ञानेश्वर का बड़ा नाम है, एक बार उसको चुनौती दी जाए। तो चाँगदेव शेर पर बैठकर मिलने गया। उस वक्त ज्ञानेश्वर एक छोटी-सी दीवार पर बैठे थे। उन्होंने दीवार से कहा, 'बेटा, तुम भी सरको।' दिवार सरकती गई, चाँगदेव के तो होश गायब हो गये। फिर उसके बाद 22 साल की उम्र में ज्ञानेश्वर एक गुफा में चले गये, दरवाजा बन्द कर दिया और वहाँ उन्होंने समाधि ले ली। उनकी समाधि आलन्दी में है। लाखों मराठी वहाँ तीर्थ के लिये जाते हैं।

नाथ सम्प्रदाय की बात कर रहा था। नाथ सम्प्रदाय बहुत बड़ा सम्प्रदाय है जिसके बारे में आप लोगों को ज्यादा पता नहीं है। उस सम्प्रदाय में जो स्त्रियाँ होती हैं, उनको योगिनी कहा जाता है। जैसे वह जो सपेरा होता है उसकी पत्नी योगिनी कही जाती है। वहाँ ऐसा नियम नहीं है कि दीक्षित व्यक्ति शादी न करे, या यह व्यवसाय न करे, वह व्यवसाय न करे। कोई भी व्यवसाय कर सकते हो। नाथ पंथ वाले को भीख नहीं माँगनी चाहिये, बस। कमाना है उसको, चाहे तो साँप नचाकर कमाए, चाहे बन्दर नचाकर कमाए। देखा है न तुमने सड़क किनारे ऐसे मदारियों को? ऊपर गेरू कुर्ता रहता है, नीचे सफेद धोती रहती है, माथे पर पगड़ी रहती है। ये नाथ सम्प्रदाय वाले हैं। उनके कानों में कुण्डल होते हैं। वे दीक्षित को एक समय पर दिये जाते हैं। पहले मिट्टी के कुण्डल डाले जाते हैं, फिर लकड़ी के कुण्डल डाले जाते हैं। कान के जिस स्थान पर छेद किया जाता है उसका सम्बन्ध मनुष्य की यौन नाड़ियों से है। यौन नाड़ियों का एक मुख्य केन्द्र है यहाँ। मनुष्य के अन्दर काम-वासना बहुत तीव्र होती है। हम लोगों के वैदिक धर्म में जो कर्ण छेदन किया जाता है, यह गहना पहनने के लिये नहीं किया जाता है, इसका प्रयोजन यौन नाड़ियों का

नियंत्रण है। औरतों के कानों में बाली पहनाते हैं, लड़कों का भी कर्ण छेदन होता है, सभी जगह होता था, पर अभी लोगों ने छोड़ दिया है, क्योंकि अंग्रेज लोग कहते हैं मत करो। आपकी आधुनिक सभ्यता कहती है मत करो, पर वास्तव में कर्ण छेदन का सम्बन्ध कान में स्थित यौन नाड़ी से है।

आपको शायद एक विज्ञान का नाम मालूम होगा जिसे कहते हैं एक्यूपंक्चर। यह चीन-जापान की विद्या है। इसमें सुई को शरीर में मार-मार करके यहाँ-वहाँ लगाते हैं। एक्यूपंक्चर का मूल सिद्धांत यही है कि मनुष्य शरीर में हर जगह पर संवेदनात्मक नाड़ियों के केन्द्रबिन्दु होते हैं। उसी तरह कान में भी एक संवेदनात्मक केन्द्र है। नाक में दूसरा केन्द्र है। नाक में जो छेद किया जाता है वह फुली लगाने के लिये नहीं किया जाता, और कान में जो छेद किया जाता है कर्णफूल लगाने के लिये नहीं, बल्कि यौन नाड़ियों को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है, क्योंकि मनुष्य के अन्दर सबसे बड़ी



शक्ति, सबसे प्रबल शक्ति काम शक्ति है। उससे ज्यादा शक्तिशाली और कोई शक्ति नहीं है। हमलोगों के शास्त्रों में लिखा है कि यह काम शक्ति जीव मात्र में है और सबसे बड़ी शक्ति है।

कलियुग के देवता

कलौ चण्डीविनायकौ – कलियुग में दो देवता प्रमुख हैं, चण्डी और गणेश। चण्डी का मतलब होता है बढ़िया कपड़े, बढ़िया गहने, और अब तो औरतों का राज्य आने वाला है। घर वाली तो ये पहले से ही थीं, वह तो आप मर्दों ने उनको थोड़ा दबाकर रखा था, पर अब तो आपकी चुटिया इनके हाथ में आने वाली है। यह आगे का जमाना बोल रहा हूँ। दूसरी चीज है गणेश जी, बढ़िया कपड़े पहनो, खूब किताब पढ़ो, लाइब्रेरी में जाओ, उच्च शिक्षा लो। गणेश जी तो बहुत शिक्षित थे न? आज का मजदूर भी हो तो बी.ए. या बी.एस.सी. पास हो। यह जो जमाना है वह फैशन का है। अच्छा खाना खाओ, अच्छा पढ़ो-लिखो, अच्छे घरों में रहो, अच्छी नौकरी होनी चाहिये, यही सब तो है, नहीं क्या? एक साधारण-से-साधारण मजदूर भी एक अच्छे स्तर के मुताबिक रहना चाहता है, पढ़ना-लिखना चाहता है।

ऐसी हालत में लोगों को क्या सिखाना है? कीर्तन और भजन। नृत्य और संगीत जरूरी हैं, क्योंकि संगीत आनेवाली शताब्दी की मुख्य संस्कृति है। इसलिये अपने बच्चों को संगीत सिखाओ। बचपन से रामायण सिखाओ, कबीर के पद सिखाओ, मीरा के भजन सिखाओ, आधुनिक संगीत, प्राचीन संगीत, सब सिखाओ! तुम देखोगे कि उनका अपना व्यक्तिगत जीवन बहुत अच्छा होगा। संगीत आदमी को कुछ बनाता है। जो लड़के-लड़कियाँ संगीत के मार्ग में जाते हैं उनके दर्शन, उनके आचार-विचार, उनके सिद्धान्त प्रभावित होते हैं। हर एक को चाहिये कि अपने बच्चों के लिये संगीत की अलग से व्यवस्था करे। अब जिनके बच्चे बड़े हो गये उनकी बात छोड़ दो, लेकिन जो छोटे बच्चे हैं, पाँच-छः साल के, उनसे तो जरूर कहना चाहिए, 'बेटा, चार बजे उठो, हाथ-मुँह धो लो, गला साफ करो, सा...रे...गा..।' इसी बहाने सुबह चार बजे तो उठेंगे।

– 1 जनवरी 1998, रिखियापीठ



अध्याय 2

आप में से कुछ लोग दक्षिण अफ्रीका से आये हो। भूविज्ञान कहता है कि पहले दक्षिण अफ्रीका और भारत एक था, जिसे आज गोंडवानालैंड कहते हैं। किसी वजह से ये गोंडवानालैंड दो भागों में बँट गया, तब अफ्रीका दक्षिण की तरफ होते गया, भारत दूसरी तरफ। यहाँ अभी भी अनेक जन-जातियाँ हैं जो अफ्रीकी मानसिकता की हैं, उनमें नृत्य और संगीत बहुत प्रचलित है।

स्थानान्तरण या माईग्रेशन हर देश की एक विशेषता है। अगर कोई संस्कृति अपने को शुद्ध आर्य या शुद्ध एंग्लो-सैक्सन या शुद्ध मंगोल कहती है तो गलत कहती है। पलायन और देशान्तरण एक यथार्थता है। अब अमेरिका को ही देख लो। वहाँ यूरोप से ही तो लोग गये हैं न? सारा अमेरीका तो बाहरी लोगों से भरा है न? बीस-तीस साल का ही इतिहास देखो, वीयतनाम से अमेरिका की ओर पलायन हुआ है, उसके पहले चीन से हुआ। पलायन और देशान्तरण तो होते ही रहता है, मगर इसका कारण केवल राजनैतिक नहीं होता, व्यापार भी एक कारण होता है। पंजाबी लोग अमेरिका में बैठे हुए हैं, सिन्धी लोग कहाँ-कहाँ चले गये, वे तो स्पेन, कैनरी आइलैंड, अमेरिका, हांगकांग, सब जगह मिलते हैं। यह व्यापार के कारण हुआ देशान्तरण है। अब तो अन्तरराष्ट्रीय शादियाँ और अन्तरजातीय सम्बन्ध भी हो रहे हैं। इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

हिन्दुस्तान से सबसे बड़ा पलायन जो हुआ, वह हम अन्दाज लगा सकते हैं कि महाभारत के समय हुआ। जब भी गृहयुद्ध होता है तो पलायन जरूर होता है। गृहयुद्ध तब होता है जब किसी मुल्क के अन्दर दो राजनैतिक पार्टियाँ बराबर अधिकार और बल रखती हैं। उन्नीस-बीस का ही फर्क होता है तो वहाँ

गृहयुद्ध होता है। जहाँ एक पार्टी बहुत मजबूत हो और दूसरी पार्टी कमजोर तो वहाँ गृहयुद्ध नहीं होता। महाभारत के समय कौरव और पाण्डव, ये दोनों पार्टियाँ मजबूत थीं, इसलिए गृहयुद्ध हुआ। उसमें कौरव हारे तो स्वाभाविक है कि एक बड़े समूह का पलायन हुआ और ये लोग वर्तमान आयरलैंड तक चले गये। वहाँ भी ये लोग मिलते हैं।

आठ-नौ सौ साल पहले जब उत्तर-पश्चिम से मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो रहे थे, उस वक्त भी बहुत बड़ा पलायन हुआ है। जितने भी कलाकार थे, नाचने वाले, सर्कस करने वाले, नौटंकी करने वाले, ये सब लोग भाग गये और यूरोप में अलग-अलग जगह पहुँच गये। आज उन्हें जिप्सी कहते हैं, पर इतिहास कहता है कि ये लोग मूलत: भारतीय हैं और आज तक वहाँ के लोगों ने इन्हें कहीं पर जमने नहीं दिया है। रोमानिया में बहुत बड़ी संख्या में हैं, रूस में हैं। रूस में शायद कहीं-कहीं पर जम गये हैं, उनकी कॉलोनी है जहाँ उनको आवासी अधिकार दिये गये हैं।

महाभारत के बाद जो पलायन हुआ वे लोग तो जम गये, फिर ये लोग क्यों नहीं जम पाये?

यह तो हाल की बात है न, सात-आठ सौ साल में क्या हुआ होगा? महाभारत के समय के लोगों ने स्थानीय धर्म को स्वीकार कर लिया, रोमन कैथोलिक हो गये, शादियाँ हो गयीं, आँखें नीली हो गयीं, अंतर खत्म हो गया। जबान भी बदल गई, तौर-तरीके बदल गये। वहाँ के अंत्येष्टि, शादी, तलाक आदि के कानून स्वीकार कर लिये, भेद खत्म हो गया। भेद क्यों होता है? जब कोई पलायन करता है तो अपने तरीके साथ ले जाता है। तुम मुर्दा जलाते हो तो उनकी समझ में नहीं आता कि तुम मुर्दा क्यों जलाते हो, जिन्दगी भर विरोध होते रहता है। सती-पतिव्रता, यह सब उनकी समझ में नहीं आता। उनके मूल्य और इनके मूल्य एक हो गये तो जम गये।

जिप्सियों के साथ यह अब तक नहीं हो पाया। कई शताब्दियों पहले उनके साथ बहुत बड़ा हत्याकाण्ड भी हुआ था, हिन्दू कुश पर्वतों में। कुश फारसी का शब्द है जिसका मतलब होता है कत्ल। हिन्दू कुश का मतलब होता है हिन्दुओं का कत्ल, उसी से उस पर्वत शृंखला का नाम पड़ा। उस हत्याकाण्ड के बाद ये लोग भागे हैं।

उसके बाद फिर पाकिस्तान बनने पर बड़े पैमाने पर पलायन और स्थानान्तरण हुआ। इसके और भी कई कारण हैं। आजकल लोग पढ़ाई के लिये या नौकरी-व्यापार के लिये अमेरिका जाते हैं, यह भी तो देशान्तरण है – एक जगह से उठकर दूसरी जगह जाना, अपनी जन्मजात संस्कृति को छोड़कर एक परायी संस्कृति में जाना और उनके तौर-तरीकों को अपना लेना। उनकी औरतें हाथ मिलाती हैं, यह उनकी संस्कृति है। जब तुम दूसरी जगह जाते हो और उनकी संस्कृति को स्वीकार नहीं करते हो तब तुम को समस्या होती है।

सब देशों में लोगों का आवागमन हुआ। भारत में तो बहुत हुआ है। शक, पारसी, मुगल, कितने ही तरह के लोग यहाँ आए हैं, क्योंकि एक समय हिन्दुस्तान की वही स्थिति थी जो आज अमेरिका की है। यह समृद्धि और सुनहरे अवसरों का देश था। यहाँ खाली जमीन थी, जहाँ पर सब तरह के लोगों को बसा दिया गया। केवल धर्म ने उनको एक किया। दक्षिण भारत और उत्तर भारत की सारी प्रणालियाँ अलग हैं, मगर धर्म जोड़ने से सब एक हो गये। उत्तर भारत में जितने भी यज्ञ इत्यादि शुभ कर्म होते हैं वे पूर्णमासी को होते हैं जबकि दक्षिण भारत में सब अमावस्या को होते हैं। मगर इस अन्तर को स्वीकार किया गया है। धर्म ने इस देश की अनेकता को एकता में जोड़ा है। भाषा या सरकार ने नहीं जोड़ा है, केवल धर्म ने एकता पैदा की है, और यह कितनी बड़ी एकता है! कश्मीर में नारियल होता है क्या? नहीं, मगर बिना नारियल के वहाँ पूजा नहीं होती। नारियल होता है दक्षिण भारत में। बिना नारियल-सुपारी के पूजा न कश्मीर में, न गढ़वाल में, न कुमाऊँ में, कहीं नहीं होती है। सब जगह तुम्हें नारियल मिलेगा और यह हमारे धर्म की उदार पद्धति का एक अंग है कि हमने उनके नारियल को स्वीकार किया है।

लोगों के स्थानान्तरण और मेल-मिलाप से आनुवंशिक ढाँचे पर असर पड़ता है। लोगों का आनुवंशिक ढाँचा, उनका जेनेटिक स्ट्रक्चर सही होना चाहिए। आनुवंशिक ढाँचे में गड़बड़ी होने से कितनी सारी बीमारियाँ होती हैं। जब कोई आदमी इस वजह से बीमार हो तो उसको ठीक नहीं किया जा सकता। हम तो शुरू से कहते आये हैं कि अपनी जाति में शादी करो मत, और अपने गाँव में तो शादी बिल्कुल ही मत करो। शादी वहाँ करो जहाँ कहीं

भी आपका खून मिले ही नहीं, यानि जहाँ भी तुम शादी करो उसके कुल में और तुम्हारे कुल में जरा भी कुछ मिलना नहीं चाहिये। तब जाकर जो संतान उत्पन्न होगी, वह नयी और बढ़िया किस्म की होगी।

आसाम, मणिपुर और त्रिपुरा की तरफ लोगों की आँखें और नाक चीनियों के जैसे होते हैं, इसका क्या आनुवंशिक कारण है?

हाँ, चीन से उनका सम्बन्ध होगा, उनकी जाति से मिश्रण होगा। भारतीय, चीनी, एंग्लो-सेक्सन, अफ्रीकन – ये अलग-अलग जातियाँ हैं, किसी की



आँखें छोटी और नाक चपटी रहती है। यह तो मंगोलिया से भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों तक दिखता है, बंगाल में भी थोड़ा-सा मिलता है। जाति का सम्बन्ध आनुवंशिकी से होता है। जाति संस्कृत के ज्ञाति शब्द से आया है, जिसका मतलब होता है पहचान। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये जातियाँ नहीं हैं, वर्ण हैं।

इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातों को समझना कठिन है। मनुष्य का जीवन एक रहस्य है, देखा जाए तो यह सारी सृष्टि ही एक रहस्य है। संतों-मुनियों-ज्ञानियों ने अपने ध्यान में बहुत अनुभव प्राप्त किये, मगर कहाँ तक वह सच है, कहाँ तक वह अन्तिम है, यह कहना बड़ा मुश्किल है। भगवान की माया का पार किसी ने नहीं पाया। थोड़ा बहुत जाना, उसके बाद कुछ बोल दिया। जिसने बोला वह क्या बोला, और जिसने समझा वह क्या समझा, यह कहना बड़ा कठिन है। इसने कहा कुछ और, तुमने समझा कुछ और। भगवान की माया क्या है? जिसने सूर्य, चन्द्रमा और सारा ब्रह्माण्ड बनाया वह कौन है? वह कोई शक्ति है या कोई आदमी है, एक-दो लाख हाथ वाला, या कोई चेतना है? अगर वास्तव में है तो कहाँ है? वह मरता क्यों नहीं? वह पैदा हुआ कि नहीं हुआ?

अब यह विचार कि वह पैदा ही नहीं हुआ, इसे मन में लाना ही मुश्किल है। कहते हैं कि सृष्टि का कोई आदि नहीं है। ठीक है, बोल तो दिया, मगर सोचो आदि का मतलब क्या होता है? कोई जवाब नहीं है। क्या देश और काल गणित के दायरे की चीज है? इसके पहले क्या था? और उसके भी पहले? सोचते-सोचते दिमाग पगला जाता है, समझ में नहीं आता है। ईश्वर की महिमा को समझना बहुत मुश्किल है। सबसे बड़ी चीज तो यह है कि सचमुच में यह सब हो रहा है या हमलोग स्वप्न देख रहे हैं। यह भी एक अवधारणा है। हमने तो वहाँ दिमाग लगाकर अब दिमाग को छुट्टी दे दी है। दिमाग से कहा, 'बेटा, अब तुम बैठो, खाली रामायण पाठ करो, भगवान का भजन करो, बाकी सब तुम्हारी समझ में आने वाला नहीं।' भगवान की माया अज्ञेय है, उनका पार नहीं पा सकते हैं। इसलिए सीधा भगवान का भजन करो। दो-चार दिन जो भगवान ने जिन्दगी दी है, उसमें खाओ, पियो, मन लगाओ और सो जाओ।

कई बार आदमी सोचता है कुछ, पर होता है कुछ और। ऐसा क्यों?

इसलिए कि आदमी अपने ढंग से सोचता है, लेकिन दुनिया में जो कुछ भी होता है वह संसार के अपने नियम और गणित के अनुसार होता है। अब जैसे कभी-कभी कोई महात्मा पशु योनि में भी प्रवेश कर लेते हैं। भगवान बुद्ध ने जन्म लेने के पहले अनेक जन्मों में अनेकों पशुओं के रूप में जन्म लिया। एक बार बैल बने तो एक बार हाथी। जिस-जिस योनि में जन्म लिया वहाँ उनको सब याद रहा और पशु योनि में भी वे एक बोधिसत्त्व की तरह व्यवहार करते थे।

हमने बहुत-से कुत्ते देखे हैं जिनका स्वभाव अलग किस्म का था। भागलपुर में एक कुत्ता देखा जो एकादशी के दिन भोजन नहीं करता था। जिस दिन वह मरा, हम तो वहाँ नहीं थे, एक दिन पहले उसने उपवास किया था, दूसरे दिन मन्दिर में गया जहाँ शिवलिंग था, वहीं जाकर मरा। इसका मतलब वह कुत्ता नहीं था, उसमें किसी महापुरुष की आत्मा थी। किसी वजह से महापुरुष पशु-योनि में पैदा होते हैं और कुछ वर्षों तक उसमें रहते हैं। काक-भुशुण्डी सर्प होकर पर्वत पर रहे, अन्त में ब्राह्मण होकर जन्मे। ऐसी घटनायें होती हैं, मगर सामान्य नहीं हैं।

सब पशु मूल प्रवृत्तियों के आधार पर ही काम करते हैं। वे सोच-समझ कर कुछ नहीं करते। जो भी जानवर हो, चाहे कीड़ा-मकोड़ा हो या पशु-पक्षी, वह बुद्धि का प्रयोग नहीं करता, बल्कि अपनी प्रवृत्ति के कारण ही उसको पता चलता है। मनुष्य के विकास के भी तीन स्तर होते हैं – मूल प्रवृत्ति, बुद्धि और अंतर्प्रज्ञा। पशु योनि मूल प्रवृत्ति की है, मनुष्य योनि बुद्धि की है और जो संत-महात्मा होते हैं वे अंतर्ज्ञानी होते हैं और उसी अंतर्ज्ञान के आधार पर काम करते हैं।

अंतर्ज्ञान का आधार बुद्धि नहीं, भावना है। जो साधक भावनाशील होते हैं उनको अंतर्ज्ञान प्राप्त होता है, और जिस साधक में भावना नहीं होती उसे चाहते हुए भी अंतर्ज्ञान प्राप्त नहीं होता। बुद्धि कुछ हद तक मदद करती है, मगर आगे जाकर मदद नहीं करती। महर्षि अरविन्द ने लिखा भी है – 'बुद्धि सहायक है और बाधक भी, इसके पार जाओ।'

– 2 जनवरी 1998, रिखियापीठ



अध्याय 3

धर्म कैसे बनते हैं? भारत में अनेक पंथ और सम्प्रदाय हैं जैसे राधास्वामी पंथ आदि, क्या वे सब भी एक दिन धर्म बन जायेंगे?

धर्म बनने के लिये निश्चित नियम होते हैं। सबसे पहले उसकी अपनी एक पुस्तक होनी चाहिये और वह पुस्तक उसी आदमी को बनानी चाहिये जो भगवान की आवाज सुन सकता हो जैसे मुहम्मद साहब। अब हम लिखेंगे तो लोग कहेंगे कि स्वामी सत्यानन्द जी ने किताब लिखी है, लेकिन मुहम्मद साहब तो पढ़े-लिखे आदमी नहीं थे, निरक्षर थे। भगवान ने उनसे कहा और उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। इसी तरह बाईबिल के बारे में भी कहते हैं कि वह उद्घाटित हुई है।

केवल कोई अच्छा प्रचारक हो, अच्छी व्यवस्था हो, उसी से कोई धर्म नहीं बनता। धर्म के कुछ सिद्धान्त होने चाहिये। जैसे वैदिक धर्म के सिद्धान्त हैं मूर्ति पूजा, पुनर्जन्म, विवाहादि संस्कार, ब्रह्मचर्य आदि। अब ईसाई मत में मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं, पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं, तलाक को शुरू से मानते हैं तो अलग धर्म हो गया। जब तुम नया धर्म बनाते हो तो उसमें कुछ नया स्रोत होना चाहिये। अब एक ही आम का संकरण करके दूसरा आम निकालो, नीलम निकालो, आम्रपाली निकालो, आखिर आम ही तो है वह, कोई नयी चीज थोड़े ही है। उसी तरह बौद्ध धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला, जैन धर्म भी वैदिक धर्म से ही निकला। बौद्ध धर्म को शुरू में राजाओं का आश्रय मिला, मगर बाद में हिन्दुस्तान में समाप्त हो गया। बाहर के देशों में इसको मान्यता मिली, आश्रय मिला तो वहाँ रह गया, सामाजिक व्यवस्था का अंग बन गया। धर्म को केवल एक दर्शन नहीं रहना चाहिए, बल्कि एक

ऐसी सामाजिक प्रणाली बनना चाहिए जिसका देश के लोग अनुसरण करें। तभी वह धर्म बनता है।

हर एक धर्म में कट्टरता होती है, पर हमारे धर्म में ज्यादा नहीं है। तुम कोई चीज मानते हो या नहीं मानते हो, तुम्हारे ऊपर है। हमारे धर्म में लचीलापन है। भारत के लोगों को पश्चिमी संस्कृति, भाषा, तौर-तरीके लेने में कोई परेशानी नहीं होती। यहाँ की लड़कियाँ सिर के बाल काट सकती हैं, सलवार-कमीज, साड़ी, जींस, कुछ भी पहन सकती हैं, लड़के-लड़कियों ने हाथ भी मिलाना शुरू कर दिया। अगर लड़की ने सिर के बाल काट दिये तो क्या हुआ? उसने क्या गलत किया? अगर सिर से पल्लू उतर गया तो क्या हुआ? अब जब लड़की कहती है कि सिर पर पल्लू नहीं रखेंगे तो नहीं रखेंगे। उसके व्यक्तित्व या चरित्र पर क्या बुरा असर पड़ा? अगर साड़ी के बदले जींस पहनकर चलती है तो क्या फर्क पड़ा?

हमारे यहाँ लोगों ने धर्म की परिभाषा बहुत व्यापक और उदार कर दी। कोई भी कपड़ा पहनना है तो पहनो, बस ढंग से पहनो। एक बिंदु तक, जहाँ तक मर्यादा है, उस मर्यादा के अन्दर रहना धर्म है। मर्यादा का मतलब होता है दूसरों का ख्याल रखना। यही असली धार्मिकता है। अब अगर तुम्हारा समाज कहता है कि लम्बे बाल रखो तो रख लो, क्या फर्क पड़ता है? भारतीय समाज जल्द बदल जाता है, मद्रास में लड़कियाँ कितनी पढ़ी-लिखी हैं, केरल की लड़कियाँ कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाती हैं! हिंदू धर्म में लचीलापन है, लेकिन जहाँ धर्म बहुत कट्टर हैं वहाँ यह सम्भव नहीं है।

राधास्वामी पंथ 'शब्द सुरत योग' है, हठयोग से निकला है। इसी तरह अलग-अलग पंथ होते हैं, ये धर्म नहीं हैं और न ही धर्म बन सकते हैं। कोई भी धर्म बिना काडर के, बिना संगठन के नहीं चल सकता है। हमलोगों का संन्यास सम्प्रदाय टिका है क्योंकि हमारा संगठन है, एक नियम है। भले ही कोई संन्यासी जाकर शादी कर ले, मगर संगठन तो है। इसी तरह सिक्खों में संगठन है, काडर है। ग्रंथी, रागी आदि अलग-अलग नाम होते हैं उनके संगठन में, उनकी उचित शिक्षा और प्रशिक्षण होता है, वे टिके रहेंगे।

सिक्ख धर्म का वैदिक धर्म से कोई दार्शनिक विरोध नहीं है। विचारक या आलोचक कभी भी वैदिक धर्म और सिक्ख धर्म के बीच झगड़ा करा नहीं सकेंगे, दार्शनिक आधार पर तो बिल्कुल नहीं। वहाँ भी मुर्दों को जलाते हैं,

हमारे यहाँ भी जलाते हैं। उनके यहाँ शादी होती है तो परिक्रमा होती है, घूमते हैं, हमारे यहाँ भी वैसा ही होता है। हम आग के चारों ओर घूमते हैं, वे गुरु ग्रंथ साहिब के चारों ओर घूमते हैं, क्या फर्क पड़ता है। उनके यहाँ भी स्त्रियों में शील पर, पति-पत्नी के सम्बन्धों पर जोर दिया जाता है, हमारे यहाँ भी उस पर जोर दिया जाता है। सिक्ख, जैन और वैदिक धर्मों में कोई खास फर्क नहीं है। नाम भी उनका हमारे जैसा है, कपड़े भी वैसे ही हैं, गाने का तरीका भी वैसा ही है। हमारी सामाजिक गतिविधियाँ और तौर-तरीके भी उनके जैसे हैं। वे भी गुरु को मानते हैं, जमीन पर बैठकर खाते हैं, माने सामाजिक तरीके एक ही हैं। इसलिये सिक्ख, जैन या वैदिक धर्म में झगड़ा नहीं होगा। यह झगड़ा तभी होगा जब कोई राजनीति बीच में आयेगी।

राजनीति के बिना झगड़ा नहीं होता। जैसे बौद्धों और हिन्दुओं का झगड़ा राजनीति की वजह से हुआ। अशोक बौद्ध बन गया और उसने बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया। झगड़ा हो गया। भारतीय मानसिकता कभी भी राष्ट्र को धर्म से जोड़ना नहीं चाहती। राजा का कोई धर्म नहीं होता है, उसे तो सब धर्मों को स्वीकार करना पड़ता है। अशोक ने यहाँ बौद्ध धर्म को राष्ट्रधर्म बनाया, उस अनुसार कानून बनाने शुरू किये, तब जाकर बवंडर उठा।

अगर आज कोई कहे कि इस देश का धर्म हिन्दू है, बाकी धर्म गौण हैं तो हंगामा मच जायेगा। कम-से-कम हमलोग तो इसको स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि देखा जाए तो वैदिक धर्म स्वयं में कोई धर्म नहीं है। यह तो विविध विचारों का एक विशाल विश्वकोश है। सभी तरह के विचार और मत उसमें रहते हैं। कोई देवी जी को मानता है तो मांस-शराब सब कुछ चलता है, कोई विष्णु जी को मानता है तो प्याज-लहसून तक घर में नहीं आता। कुछ लोग शिवजी को मानते हैं तो बमबम महादेव चढ़ाते हैं। कोई कहता है दाढ़ी बढ़ाओ, कोई कहता है दाढ़ी मुड़वाओ, कोई कहता है जटा रखो, कोई कहता है लाल टीका लगाओ, कोई कहता है चंदन लगाओ। पंजाब, बंगाल, मद्रास या बिहार के लोगों के अपने-अपने तरीके हैं। अनेकता में एकता ही इस देश का दर्शन है। हमारे देश का सिद्धान्त यही है कि आओ कोई भी धर्मी, आओ कोई भी पंथी, सब के लिये खुला है मन्दिर यह हमारा। केवल इतना है कि ऐसा काम मत करो जो असामाजिक हो।

– 3 जनवरी 1998, रिखियापीठ



अध्याय 4

मन को अपना काम करने दो और भावना को अपना काम करने दो, कोई फर्क नहीं पड़ता। असली बात यह है कि भगवान की कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। चाहे कितनी ही साधना करो, कितना ही जप करो, कितना ही ध्यान करो या कितना ही तीर्थ करो, भगवान चाहेगा तो नीच, अधम आदमी को भी दर्शन हो सकता है और भगवान नहीं चाहेगा तो पुण्यात्मा को भी कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन मनुष्य को इस सिद्धान्त से संतुष्टि नहीं होती है क्योंकि उसमें अहंकार है। इस अहंकार के कारण वह साधु-महात्माओं के पास जाता है और साधना खोज लेता है।

जप, ध्यान आदि जितनी भी साधनाएँ हैं, इन्हें मनुष्य अपनी संतुष्टि के लिए करता है। नहीं तो मन कहेगा, 'अरे! तू तो कुछ नहीं करता, खाली बैठा रहता है।' इसलिए मन की संतुष्टि के लिए यह सब करना पड़ता है। अगर कुछ भी नहीं करोगे तो भी चलेगा, जब उसकी इच्छा होगी तो सब हो जाएगा। 60-65 की उम्र के बाद केवल भगवान पर भरोसा रखो। जो रोज सबेरे समय पर सूर्योदय करता है, समय पर बरसात करता है, समय पर तुम्हारा खाना पचाता है, सुलाता है, वह तुमको दर्शन भी करा देगा, जिसका भी तुम दर्शन चाहोगे और यही है असली भक्ति। भक्ति का मतलब होता है, 'सब कुछ भगवान पर छोड़ देना।'

एक जरूरी बात और है कि केवल भगवान का भजन करने से, गुरु का नाम लेने से सब कुछ पूरा नहीं होता है। दुनिया में बहुत दुःख है। दुनिया में बहुत गरीब, भूखे और बीमार लोग हैं। वे भी तुम्हारी ही आत्मा हैं। तुमको

उनका ख्याल नहीं आता है क्या? जैसे तुम्हारा हाथ है, नाक है, कान है, वैसे ये सब भी तुम्हारे अंग हैं, विराट् पुरुष के अंग हैं सब। गुरु और भगवान का नाम लिया तो यह आधा काम हुआ। बाकी आधा काम दीन-दुखियों के लिए अपने दिल में करुणा और रहम पैदा करना है।

सब्जी बना दी पर नमक नहीं डाला तो सब्जी बेकार है। हलवा बना दिया, चीनी नहीं डाली, वह भी बेकार है। वैसे ही भगवान का नाम ले लिया, गुरु का नाम ले लिया तो स्वार्थ के लिए हुआ। यह केवल अपने लिए करते हो। भगवान के नाम से तो परमार्थ होना चाहिए और इसीलिए दुनिया में जितने भी लोग साधना कर रहे हैं किसी की उन्नति नहीं हो रही है। अगर जहर की बोतल को कॉर्क लगाकर सौ साल गंगा जी में डाल देते हो तो क्या होगा? जहर, जहर ही रहेगा, वह अमृत नहीं होगा। ऐसे हजारों-लाखों लोग हैं जो भजन-पूजन करते हैं, अरदास करते हैं, गुरुद्वारे जाते हैं, मंदिर जाते हैं, पर किसको मुक्ति मिली है? किसी को नहीं, क्योंकि वे आधा काम कर रहे हैं, पूरा नहीं। हलवा बना रहे हैं, चीनी नहीं डाल रहे हैं।

दूसरों के लिए करुणा होना बहुत जरूरी है। जैसा तुमको अपने माँ-बाप, भाई-बहन या बेटा-बेटी के लिए दिल में दर्द होता है, प्रेम होता है, वैसा ही दूसरों के प्रति भी होना चाहिए। उसमें फिर त्याग होना भी जरूरी है। त्याग का मतलब क्या होता है? छोड़ना, लेकिन क्या छोड़ना? किसी के पास रोटी नहीं है और हमारे पास चार रोटियाँ हैं तो चलो, दो उसके लिए छोड़ देते हैं।



इसको त्याग कहते हैं। दूसरों के लिए अपने हिस्से का कुछ निकालकर देना त्याग है। ऐसा करोगे तो साधना के सब अवरोध गायब हो जायेंगे, गुरुजी का फोटो अपने आप सामने आ जाएगा। बस दिल में रहम होना चाहिए।

हमारे नाना बोलते थे कि अगर जीना है तो दूसरे के लिए जीओ, मरना है तो अपने लिए मर जाओ। माँ कहती थी, मैंने यह किया, वह किया, ऐसा मत बोलो, जो भी अच्छा काम करते हो समुन्दर में डाल दो।

हाँ, इन सब बातों का ख्याल करो, तब रास्ता साफ है।

हम सोचते थे कि ध्यान करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे, लेकिन कुछ कर नहीं पाये तो मन में दुःख है। मन परेशान करता है।

आपका यह सोचना गलत है। दुनिया में जो होता है वह भगवान की इच्छा से होता है, आप की इच्छा से नहीं। मैं सोचूँ कि ऐसा हो वैसा हो, मगर भगवान चाहेंगे तभी होता है। भगवान ने चाहा कि फँसे रहो, तो फँसे रहो। भगवान मुक्त करेगा तो मुक्त हो जाना। और कोई बात नहीं है।

मेरे पति को बीमारी में देखना पड़ता था। एक दिन मेरे पति बोले, 'सोचा था पहले तुम जाओगी तो फूल वगैरह चढ़ाता, मगर अब तो मैं ही जा रहा हूँ।' मैंने कहा, 'भगवान की कृपा हुई तो मैं ही चली जाऊँगी, आप बैठे रहेंगे।' तो वे बोले, 'नहीं, मुझसे अब सहन नहीं होता, कृष्ण भगवान आ रहे हैं मेरे को लेने।' मैंने कहा, 'कृष्ण भगवान अकेले हैं क्या?' वे बोले, 'हाँ! राधा को नहीं लाये हैं।' उसके बाद मेरे से बात नहीं हुई। बच्चों से मिले, फिर चौबीस घंटे कोमा में रहे। गीता का पाठ करके मुँह में दो चम्मच गंगाजल डाला और उन्होंने शरीर छोड़ दिया। क्या सच में मेरे पति को अंतिम समय श्रीकृष्ण का अनुभव हो रहा था?

सबको ऐसा अनुभव नहीं होता है, केवल जिन्हें पूर्ण विश्वास होता है उनको ही ऐसा अनुभव होता है। जब मन में छल-कपट नहीं होता, मन शुद्ध होता है तब ऐसा होता है। मगर यही सोचकर चलो कि भगवान की ऐसी इच्छा थी। भगवान की इच्छा है तो मैं औरत बनी, भगवान की इच्छा है तो मैं मर्द बना। भगवान की इच्छा है तो मैं अमीर रहा या गरीब रहा। ईश्वर की इच्छा ही तुम्हारी

इच्छा होनी चाहिए। वही कर्म करता है, वही कर्म कराता है। दुःख-सुख वही देता है और दुःख-सुख वही भोगता है। असली बात यही है।

तुम हिन्दू हो या ईसाई हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म तो केवल एक संस्थागत ढाँचा है। असली चीज आस्था और श्रद्धा है, पर वह बहुत कम लोगों में होती है। जिनमें होती है वे सब कुछ साफ-साफ देख सकते हैं।

क्या ऐसे लोग विकसित आत्माओं के रूप में लौटते हैं?

ये सब बातें पूछने का क्या प्रयोजन? इन बातों पर चिंता नहीं करनी चाहिए। अगर तुम्हारी भगवान में आस्था है तो चिंता मत करो। बस यही काम की बात है। स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म या शाश्वत जीवन, ये सब बातें अब मेरी समझ में नहीं आतीं। अगर तुम्हें भगवान पर भरोसा है तो यही काफी है। भगवान तुम्हारा ख्याल रखेंगे। अगर तुम्हें स्वर्ग ले जायें तो ठीक, नरक ले जायें तो भी ठीक। तुम्हारा पुनर्जन्म अच्छा हो या बुरा, तुम्हें क्या फर्क पड़ता है? क्यों अनावश्यक चिंता करते हो? तुम अपने रुपये-पैसे, काम-धंधे, जूते-कपड़े, बीवी-बच्चों के बारे में चिंता करते हो, वह अपनी जगह ठीक है, लेकिन आध्यात्मिक जीवन के बारे में चिंता करना फिज़ूल है क्योंकि तुम उसके बारे में कुछ जानते ही नहीं। तुमने केवल किताबों में पढ़ा है, या धर्मों ने तुम्हें सिखलाया है। इस बात की क्या गारंटी कि धर्म सही और सच्चे हैं? धर्मों का संगठन राजनैतिक उद्देश्यों से भी तो हो सकता है। धर्म कभी विशुद्ध नहीं होता, राजा-महाराजा कई बार इसमें दखल देकर इसे विकृत कर देते हैं। इसलिए धर्मों और धर्मग्रन्थों पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता।

बेहतर यही है कि सब कुछ उस अदृश्य ईश्वर पर छोड़ दो। वह जो करना चाहे करने दो। उसने तुम्हें जन्म दिया, एक दिन मृत्यु भी देगा, यह सब उसी पर छोड़ दो। अगर कभी दिल से प्रार्थना करनी भी हो तो यही प्रार्थना करो कि हे प्रभु, मुझे रास्ता दिखाओ। आसन-प्राणायाम जैसे योगाभ्यास तो नासमझ लोगों के लिए हैं। अगर तुम्हारा लक्ष्य भगवान है तो फिर किसी और चीज के बारे में मत सोचो। किसी को अच्छा स्वास्थ्य चाहिए तो किसी को अच्छा मन, उसके लिए आसन, प्राणायाम, नेति, हठयोग वगैरह कर लो, लेकिन जहाँ तक भगवान का सवाल है, किसी तरह की चिंता मत करो। अगर भगवान राजी होंगे तो ये सब चीजें भी दे देंगे।

अपनी बात बोलूँ तो योग ने मेरी मदद नहीं की है। मैंने सभी साधनाएँ की हैं, कुछ नहीं हुआ। केवल ईश्वर में विश्वास काम आया है, यह विश्वास कि वे मेरे साथ हैं। तुम भी यह विश्वास करो कि वे तुम्हारे प्राण हैं, तुम्हारा जीवन हैं, तुमसे कर्म करा रहे हैं, तुम्हें सुख-दु:ख दोनों दे रहे हैं, तुम्हें एक अच्छा इंसान बनाया है, तुम्हें एक बुरा इंसान बनाया है, तुम जो कुछ भी हो उन्हीं की कृपा से हो। तुम गरीब हो तो यह ईश्वर की कृपा है, अमीर हो तो यह भी उनकी कृपा है। सुन्दर हो तो यह भगवान की कृपा है, बदसूरत हो तो भी कृपा ही है।

तुम लोग सोचते रहते हो कि मरने के बाद क्या होता है। ये सब व्यर्थ की बातें हैं, इन पर सोचने को कोई फायदा नहीं। मृत्यु के बाद क्या होता है, कौन जानता है, किसने देखा है? आत्मा को आखिर किसने देखा है? इसलिए ज्यादा चिंता न करो, बस एक मनुष्य के रूप में अपने धर्म को, अपने कर्तव्यों को निभाते जाओ। मैं तो यही कहता हूँ, 'भगवान! आपकी मर्जी पूरी हो, जैसा मुझसे चाहोगे, वैसा ही करूँगा।'

यह तो मेरे अपने बुरे कर्मों का फल ही है न कि आज मैं कष्ट भोग रही हूँ?

यह अच्छे या बुरे कर्मों का सवाल नहीं, बल्कि ईश्वर की इच्छा है कि तुम अच्छी औरत हो या बुरी, खूबसूरत हो या बदसूरत, अमीर हो या गरीब, गृहस्थ हो या संन्यासी। तुम ईश्वर की इच्छा का ही परिणाम हो। कर्म की चिंता मत करो। वह केवल दर्शन है, सिद्धान्त है, बुद्धि-विलास है। बुद्धि यथार्थ नहीं है, ईश्वर की इच्छा, ईश्वर की कृपा ही यथार्थ है। हो सकता है मैं बुरा आदमी हूँ, लेकिन एक अच्छा जीवन बिता रहा हूँ क्योंकि उसकी मर्जी है। हो सकता है मैं बहुत अच्छा आदमी हूँ, पर मेरा जीवन बहुत खराब है, परेशानी ही परेशानी है। यह भी उसी की इच्छा है।

सच्चाई यही है, लेकिन लोग इतने चंचल होते हैं, अहंकार से इतने ग्रस्त होते हैं कि वे कुछ-न-कुछ करना ही चाहते हैं। वे मंदिर जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, हर तरह का धार्मिक करतब करते हैं, लेकिन फिर भी संतोष नहीं होता क्योंकि उनकी भगवान में भक्ति और आस्था है ही नहीं। अगर तुम्हारे बच्चे को तुम पर विश्वास न हो तो वह हमेशा रोते ही रहेगा। लेकिन अगर विश्वास है तो फिर कोई परवाह नहीं, उसे मालूम है कि माँ थोड़ी देर में रोटी या मिठाई दे ही देगी। मेरे जीवन का तो यही अनुभव, यही निचोड़ है। मैं

जवान आदमी नहीं, करीब अस्सी साल का होने वाला हूँ, और इन सालों में एक ही चीज देखी है – *ईश्वरेच्छा बलीयसी।* कर्म, भाग्य, प्रारब्ध वगैरह के बारे में चिंता करना बेकार है। सब संत-महात्मा यही बोलते हैं – राम रजा, राम की रजा, तुम्हरी गति-मति, तुम ही जानो। जब आदमी का मन दुःखी हो जाय तो उसे यही सोचना पड़ता है कि 'भगवान! तुम्हारी इच्छा थी, इसलिए मन में दुःख आया।'

भगवान दिखते तो हैं नहीं।

तुम्हें गुस्सा दिखता है क्या? मगर अनुभव तो होता है न? काम, क्रोध, लोभ दिखता नहीं है, मगर अनुभव होता है। ऐसे ही भगवान दिखते नहीं हैं, पर उनका अनुभव होना चाहिए। भगवान का अनुभव ऐसा होता है जैसे भय। डर लगता है तो क्या होता है? शरीर में, दिल में अनुभव होता है न? बस ऐसे ही भगवान का भी अनुभव होना चाहिए। उन्हें देखने की चिंता मत करो। मानव जीवन की त्रासदी यही है कि वह भगवान से प्रार्थना तो करता है, मगर उनका अनुभव नहीं करता। भगवान की पूजा होती है, उनके बारे में बातचीत होती है, लेकिन अनुभूति नहीं होती।

आपने कहा कि भगवान की जो इच्छा है वही होवे, लेकिन इंसान को कोशिश तो करनी चाहिए न?

भगवान ने तुम्हें गृहस्थी दी, बाल-बच्चे दिये, काम, क्रोध, लोभ, मोह दिया, दुःख-सुख दिया, जन्म-मरण दिया। उससे भाग तो नहीं सकते, उसको मानना पड़ेगा ही तुम्हें, कोई दूसरा उपाय तो है नहीं। जीवन से पलायन तो सम्भव नहीं, लेकिन मैं किसी और चीज की बात कर रहा हूँ। मैं कहता हूँ, भगवान का अनुभव करो, बस इतना ही काफी है। अगला जन्म या पिछला जन्म, स्वर्ग या नरक, इस पर चर्चा करना बेकार है क्योंकि न तो तुमने स्वर्ग देखा है, न ही उसे साबित कर सकते हो। स्वर्ग आखिर है कहाँ? तुम चाँद पर जा चुके हो, मंगल ग्रह पर जा चुके हो, लेकिन स्वर्ग कहाँ है? उसके भी आगे? और नरक कहाँ है? स्वर्ग यहीं है, नरक भी यहीं है। सुखी मनुष्य स्वर्ग में है, दुःखी नरक में। मेरे विचार से यही अध्यात्म है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

– 28 फरवरी 1998, रिखियापीठ



अध्याय 5

हाल ही में विदेश में किसी कम्पनी ने हल्दी को पेटेन्ट कर लिया। तब भारत ने उसके लिए लड़ाई की और मामला ठीक भी हो गया। हल्दी पर विदेश में कई रोग-विषयक अनुसंधान किए गये हैं, विशेषकर जोड़ों के दर्द में जिसको ओस्टिओ अर्थराइटिज़ या गठिया कहते हैं। हल्दी तो हम लोगों के यहाँ शुरू से एक दवाई की तरह है। हिन्दू धर्म के पूजा-पाठ में आखिर कितनी सारी चीजें उपयोग में लायी जाती हैं। पूजा-पाठ का उतना महत्त्व नहीं है, बल्कि पूजा-पाठ के बहाने लोगों से यह सब कराते हैं, नहीं तो कौन उनका उपयोग करेगा? गाँव के लोग विज्ञान या चिकित्सा के बारे में ज्यादा तो नहीं जानते, लेकिन घाव या चोट लगने पर हल्दी बाँध देते हैं। चाहे हल्दी हो या तुलसी हो, पूजा की जितनी चीजें हैं सब स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। गुजराती लोग तो हल्दी फाँक लेते हैं। विदेश में आठ-दस साल के अंदर हल्दी का बाजार बहुत अच्छा होने वाला है।

इसी तरह नीम पर भी प्रयोग हो रहे हैं। विदेशों में नीम से प्राकृतिक गर्भनिरोधक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। चैत्र के महीने में नीम के नये पत्ते निकलते हैं। चैत्र में एक महीना पूरा सबेरे नीम के पत्ते खा लो, साल भर कोई बीमारी नहीं होती। अब नीम को भी विदेश में पेटेन्ट करना चाहते हैं और वे करेंगे ही, क्योंकि हम लोगों का समाज मुक्त-समाज नहीं है, बंधन वाला समाज है, जबकि पाश्चात्य समाज उन्मुक्त, पढ़ा-लिखा और व्यावहारिक समाज है। वे दो नाव पर सफर नहीं करते, बल्कि एक ही नाव पर सफर करते हैं जो है पैसा। हम लोगों की एक नाव है पैसा और दूसरी नाव है परिवार, फिर दोनों डूब जाते

हैं। उनको परिवार की आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं, 'क्या करेंगे परिवार का अगर पैसा नहीं है तो?' उनकी परिवार के बारे में कोई ठोस विचारधारा है ही नहीं। जो पारिवारिक विचारधारा हिंदुस्तान में है, वहाँ नहीं है।

विदेशों में पारिवारिक अवधारणा बहुत व्यावहारिक है। बीवी इटली में रहती है, मर्द पैसा कमाने के लिए अमेरिका चला जाता है। क्या करेंगे? वह यहाँ तलाक दे देगी और अपनी दूसरी शादी कर लेगी। आदमी भी दूसरी शादी कर लेगा। हिंदुस्तान में हमलोगों के लिए यह बहुत बड़ी चीज हो जाती है। आखिर यहाँ जो नौकर खाना बनाते हैं, घर की सफाई करते हैं, वे आठ-दस महीने मालिक के घर में रह जाते हैं न? कई महीनों तक परिवार से मिलने नहीं जाते, मगर पत्नी गाँव में इंतेजार करती रहती है। विदेश में कहते हैं कि जीवन चलाने के लिए, पैसा कमाने के लिए व्यावहारिक अवधारणा की आवश्यकता है। अगर व्यावहारिक नहीं हो तो पैसे की बात ही मत करो।

उन लोगों के पास पैसा है, वे अनुसंधान कर लेंगे किसी-न-किसी रूप में। हल्दी और नीम पर किया है, इसके अलावा और बहुत-सी चीजें धीरे-धीरे उनकी नजर में आ रही हैं। अभी तक तो उन्होंने हमारे विश्वासों को धार्मिक विश्वास समझकर नजर अंदाज करके रखा था। जैसे अपने यहाँ हमलोग तुलसी को देवी मानकर पूजते हैं। उनका धर्म कहता है कि भगवान तो निराकार है जबकि तुलसी तो मात्र एक पौधा है। अब उनकी समझ में आ रहा है कि तुलसी को इसीलिए पूजते हैं कि उसमें औषधीय गुण हैं। पेनीसिलीन नामक एन्टीबायोटिक तुलसी से बनता है। हरिद्वार में हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक के लोग हजारों एकड़ जमीन में तुलसी उगाते हैं और उससे पेनीसिलीन बनाते हैं। तुलसी का तेल भी बहुत उपयोगी होता है।

इसी तरह अब स्वमूत्र याने आदमी के अपने पेशाब पर प्रयोग हो रहे हैं। उसमें से लोगों ने यूरीकोज़ नाम का रसायन निकाला है जो हृदयाघात में बहुत प्रभावशाली होता है। कई देशों में अब लोग पेशाब इकट्ठा करते हैं और वहाँ बिकता है। हमलोगों के शास्त्रों में, विशेषकर डामर तंत्र में अमरोली क्रिया का वर्णन है। अपना पेशाब कैसे पीना चाहिए, कैसे शरीर पर लगाना चाहिए, कैसा बर्तन होना चाहिए, कौन-सा मंत्र बोलना चाहिए, किस वक्त लेना चाहिए, क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए – यह सब विस्तार से लिखा है। अब विदेशियों ने इसे अपनाया है, जबकि हमलोग अपना पेशाब नहीं पी पाते

हैं क्योंकि उस से दुर्गन्ध आती है। वे लोग कहते हैं, ठीक है बास आती है, पर उससे क्या फर्क पड़ता है, रसायन में तो कोई गंध है नहीं। अब कैप्सूल के बाहर चमकते हुए खोल को ले लो, वह क्या चीज है? वह जानवरों की हड्डी से बनता है। इन्सूलिन कैसे बनता है? सूअर से। जब इनसे परेशानी नहीं तो पेशाब से परेशानी क्यों? हमारे पेशाब में अमोनिया होता है जो डिटर्जेन्ट की तरह काम करता है। पीने से आँतों को साफ करता है, बदन पर मालिश करो तो बदन साफ होता है, पुरानी त्वचा निकल जाती है।

लहसुन गठिया और अर्थराइटिज़ के लिए अच्छा है। यूरिक एसिड एक रसायन है जो जोड़ों में इकट्ठा हो जाता है, फिर वहाँ दर्द होता है। लहसुन से यूरिक एसिड की मात्रा घटती है। गठिया वाले लोगों को दूध पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। दूध में कैल्शियम बहुत होता है। उसके बदले दही, छेना या मठ्ठा ले लेना चाहिए। दही खून के कॉलेस्ट्रोल को काटता है। सादा दही अच्छा है, मीठा दही कफ को बढ़ाता है। सबसे अच्छा तो है कि दही में थोड़ा नमक, थोड़ा भूंजा हुआ जीरा डाल कर ले लो। मेथी भी जोड़ों के लिए अच्छी है, मगर गरम होती है।

मेथी पाइल्स के लिए भी अच्छी है क्या?

पाइल्स के लिए सबसे अच्छा है, मट्ठा या छाछ। दूसरी चीज है, गुलाब की पंखुड़ियाँ पकते हुए चावल में डाल दीजिए फिर उसको खाइए। पाइल्स कोई स्वतंत्र बीमारी तो है नहीं, यह कब्ज से होती है। हमलोग बचपन में जब मेडिकल पढ़ते थे तो एक ड्रामा करते थे – 'मिस्टर कॉन्सिटिपेशन एंड मिसेस पाइल्स', ये दोनों मियाँ-बीबी हैं। जहाँ कब्ज होगा, वहाँ पाइल्स होगा। पाइल्स को दूर करना है तो कब्ज को दूर कीजिए। कब्ज को दूर करने के लिए बहुत-से उपाय हैं। जिन लोगों के पास गुलाब हैं वे गुलकंद भी बनाकर खा सकते हैं, बहुत फायदा करता है।

महिलाओं की शिक्षा और उत्थान

विदेशों की लड़कियाँ लड़कों के ही बराबर हैं। वे जब आश्रम आती हैं तो आने के एक घंटे बाद सारा काम कर लेती हैं। उनको किसी प्रशिक्षण की जरूरत नहीं पड़ती। ऑफिस का काम, कम्प्यूटर का काम, गाड़ी-ट्रक चलाने

का काम, बैंकिंग का काम – सब कर लेती हैं, उनको बतलाने की जरूरत नहीं पड़ती। स्वामी सत्संगी भी विदेश में रही है, उसके लिए कोई भी काम असम्भव नहीं है। ऐसी संस्कृति अच्छी है, जबकि हिंदुस्तान में हमलोगों का एक पैर ठीक है और एक पैर लंगड़ा है। औरत बहुत कमजोर हो गई है, वह अपने को सम्भाल नहीं सकती है। औरत को मजबूत करना होगा। हमसे लोग पूछते हैं, 'यहाँ गरीबी क्यों है?' हम कहते हैं, 'तुम्हारा एक पैर तो लंगड़ा है। क्या काम करोगे?' यहाँ की औरतें नौकरानी की तरह घर में रहती हैं। शहरों



में जो नया मध्यम वर्ग है, वह तो देहातियों से भी बदतर है। देहाती औरतें तो मजदूरी के लिए जाती हैं, पाँच-छ: सौ रुपया महीने का कमा लेती हैं, पर शहरी औरतें तो घर में अचार-चटनी ही बनाती रहती हैं।

पढ़ी-लिखी लड़कियाँ बाहर में जाकर पाँच-छ: हजार रुपया कमायें, तब जाकर परिवार का स्तर बढ़े। पर लोग डरते हैं कि समाज क्या कहेगा। अरे! समाज नाम की कोई चीज नहीं है। समाज तो हमारी सनक है, हमारा भय है। आखिर समाज करेगा क्या? ज्यादा-से-ज्यादा चार-पाँच दिन तक तुम्हारे बारे में कुछ बोलेगा, और क्या? समाज तुमको खिलाता-पिलाता नहीं, कुछ तो नहीं करता। आज हम करेंगे तो कल तुम भी करोगे। स्त्री को पढ़ाना चाहिए। उसको उपार्जन योग्य बनाना चाहिए क्योंकि कलियुग का पुरुषार्थ है अर्थ और काम। धर्म और मोक्ष इस युग के पुरुषार्थ नहीं हैं। पैसे के बिना आदमी आज एक कदम भी आगे नहीं चल सकता है।

हिन्दुस्तान के गाँवों में, खास करके इस रिखिया क्षेत्र में बीमारियाँ ज्यादा नहीं हैं। एक ही बीमारी है, टी.बी.। माँ-बाप को, बच्चों को, प्रायः सबको यही बीमारी है। इसका तो निश्चित इलाज है, कुछ खास करने की जरूरत नहीं है। यहाँ तीन-चार सौ लोगों को टी.बी. था, दवा से बहुत अच्छा परिणाम मिला है। बाकी बीमारियाँ पेट खराब होना, खुजली, फोड़ा, बुखार आदि हैं। कहने का मतलब कि बहुत बड़ी बीमारियाँ इन लोगों को नहीं हैं। साफ-सफाई तो ज्यादा है नहीं इनके यहाँ, और भोजन की भी दिक्कत है क्योंकि रोजी मिलती नहीं है और यदि रोजी मिलती भी है तो उसमें से ज्यादा हिस्सा आदमी शराब पी जाता है। टी.बी. केवल भारत में ही नहीं, अमेरिका में भी है। यहाँ टी.बी. का मुख्य कारण है कुपोषण। अमेरिका में लोग खूब खाते हैं, उनको भी टी.बी. होता है। क्यों होता है? इसका कारण आनुवंशिक भी है।

हिन्दुस्तान के गाँवों में जो मजदूर वर्ग है, निम्न वर्ग है, इसके पास साधनों की बहुत कमी है। शौच के लिए इनको दूर खेत में जाना पड़ता है, नहाने के लिए दूर नदी-तालाब जाना पड़ता है और पानी लेने के लिये कुएँ जाना पड़ता है। बहुत गंदगी में रहते हैं, हम तो इन लोगों के बीच बहुत रहे हैं। इनके जब बच्चे पैदा होते हैं तो साफ-सफाई न होने के कारण संक्रमण हो जाता है। जीवन के साधन इनके पास नहीं हैं, इसीलिए इनके यहाँ ज्यादा बच्चों की प्रथा है, दस में से दो तो बचेंगे।

दूसरी बात यह कि ये लोग लड़की की शादी में बहुत पैसा खर्च कर देते हैं। सोचते हैं कि लड़की को घर से जल्दी हटाओ, सिर का बोझ समझते हैं। यह नहीं समझते कि लड़की को लड़के की तरह प्रशिक्षण दिया जा सकता है, उसको पढ़ाया जा सकता है। दूसरे के घर में जाकर क्या करेगी? नौकरानी की तरह काम ही तो करेगी। वास्तविकता क्या है? वह एक दासी है, उसको सबकी बात सुननी पड़ती है। लेकिन स्त्री भी तो एक जीव है, तुम्हारी और मेरी तरह। उसके अपने सपने होने चाहिए, उसके भी अपने कुछ अरमान होंगे। वह भी कुछ चीजों को देखकर ललचाती होगी। इन सब चीजों को ये लोग देखते नहीं हैं। बस अपनी लड़कियों को जल्दी घर से निकालना चाहते हैं, सोचते हैं पता नहीं क्या हो जाएगा।

पूरे एशिया में जो गरीबी, भूखमरी, अंधकार और अशिक्षा है, उसका मुख्य कारण स्त्री की हालत है। अमेरिका इतनी जल्दी क्यों उठा? इसलिए कि उन लोगों के पास कोई विकल्प ही नहीं था। वहाँ तो वे लोग उपनिवेश के लिए गए थे। उनकी औरतों को, उनके लड़के-लड़कियों को काम करना पड़ता था। इसलिए वे जल्दी उठ गए। अगर आदमी के दोनों पैर मजबूत हो गए तो वह ज्यादा आगे बढ़ेगा और एक पैर से लंगड़ा होगा तो कम दौड़ेगा, वहीं पड़ा रहेगा।

स्त्री और पुरुष परिवार के दो पहिए होते हैं। दोनों के आधार पर चलता है परिवार। अब औरत को घर में बैठाकर रख लिया तो क्या करेगी वह बेचारी मन लगाने के लिए? दिनभर कभी आम का अचार बनाएगी, कभी आम का मुरब्बा बनाएगी, कभी आम का पापड़ बनाएगी। दिन तो काटना है, मन लगाना है, दाल-भात बनाने में तो दस मिनट लगते हैं। मैं अपना खाना खुद बनाता हूँ। मेरे को रोटी, सब्जी, दाल और चटनी, ये चार चीजें बनाने में आधा घंटा लगता है। उसमें चार-पाँच जन भी खा सकते हैं। मगर यदि समय काटना होगा तो दिनभर कुछ-न-कुछ करते रहना होगा – करेले को छिलेंगीं, तो उसे गरम करेंगीं, उसमें कुछ ठूँसेंगीं, इस तरह दिनभर अपना टाइम पास करती हैं। अब पढ़ी-लिखी लड़कियों से यह नहीं हो पाता है। जो बी.ए. या एम.ए. पास हैं उनके लिए यह सब कुछ दिन तक ही चलेगा। फिर दो-तीन साल में उनका मन भर जाता है। उसके बाद नीरसता और बोरियत शुरू हो जाती है जिसकी वजह से उनको अवसाद होने लगता है। अवसाद होने से कभी सिर में दर्द है

तो कभी पैर में दर्द है तो कभी कमर में दर्द है। यह सब अवसाद की वजह से होता है, ऐसी मनोवैज्ञानिकों की राय है।

जो पढ़ी-लिखी लड़की है, जिसने शेक्सपीयर पढ़ा हो, दुनियाभर का इतिहास जानती हो, भूगोल और राजनीति जानती हो, जो बात कर सकती है, अखबार पढ़ती है, उसके लिए कितना मुश्किल हो जाएगा? दो-तीन साल घर में निकाल सकती है, लेकिन उसके बाद मुश्किल होती है। जो औरतें बड़े शहरों में रहती हैं, वे बागवानी में लग जाती हैं, कोई सामाजिक कार्य करती है, कोई लाइब्रेरी में जाती है, कोई गाँव-गाँव जाकर सेवा करती है, कोई महिला सभा में चली जाती है। इस तरह से वे अपना वक्त गुजार लेती हैं। आखिर उनके भी दिल और दिमाग में वही सपने और अभिलाषायें हैं जो एक पुरुष में हैं।

जब वे देखती हैं कि एक तरफ तो धर्म कहता है पति और सास-ससुर की सेवा करो और दूसरी तरफ समाज कहता है सिर पर पल्लू रखना चाहिए, टीका लगाना चाहिए, गले में एक कंठी रहनी चाहिए, तब वे सोचती हैं कि इस परिवेश में मुझे नहीं रहना है, मुझे यह सब पसंद नहीं है, मैं ऐसी जिंदगी नहीं जी सकती। तब जाकर अवसाद होता है। लड़कियों को जो अवसाद होता है उससे प्राय: उनकी माहवारी अनियमित हो जाती है। इसका असर संतान पर, स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों पर पड़ता है। तब पुरुष शादी के बाहर सम्बन्ध जोड़ता है या शाम के क्लब का मेम्बर बन जाता है। क्लब का मेम्बर क्यों बनता है? बीवी के साथ मन लगता ही नहीं है। वह तो जानता नहीं है कि बीवी के साथ मन क्यों नहीं लगता, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण नहीं किया है।

इसलिए स्त्रियों को घर से बाहर निकलना चाहिए, सार्वजनिक जीवन में रहना चाहिए और अपने मन को किसी सकारात्मक, रचनात्मक दिशा में लगाना चाहिए। चाहे वे लेख लिखें, कविता लिखें, गाना गायें, सार्वजनिक कार्यक्रम में जायें, नृत्य सीखें या बैंक-कॉलेज में नौकरी करें। मुम्बई में तो लड़कियाँ टैक्सी-ड्राइवर का काम भी करती हैं। विदेशों में तो लड़कियाँ सब काम करती हैं, गाड़ी चलाती हैं, पुलिस में भी हैं, पेट्रोल भराने जाओ वहाँ भी हैं, दुकान-कारखानों में, सब जगह लड़कियाँ हैं। वहाँ आदमी और औरत में सामाजिक स्तर पर कुछ अंतर नहीं है, दोनों समान हैं।

– 2 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 6

वेदांत में जो दर्शन है वह सत्य तो है, मगर केवल बोलने से काम नहीं चलता। अब यहाँ बैठकर पानी-पानी बोलोगे, प्यास तो बुझेगी नहीं। उसी तरह से *अहं ब्रह्मास्मि* बोलने से कुछ नहीं होता। मन का शांत होना जरूरी है। भक्ति उपाय है, योग उपाय है, केवल ब्रह्म-ब्रह्म बोलने से कुछ नहीं होगा। गीता पढ़ना भी एक उपाय है। गीता में लिखा है कि हर प्राणी को कर्म करना चाहिये, मगर उससे आसक्ति नहीं होनी चाहिये। आसक्ति से ही सुख-दुःख होता है। कोई बीमार पड़ जाता है तो दुःख होता है, वह ठीक हो जाता है तो सुख मिलता है, यह स्वाभाविक है। मगर हमें सुख-दुःख नहीं होता है क्योंकि हमारा तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अनासक्ति है।

गृहस्थ भी अनासक्ति विकसित कर सकता है। बच्चों की सेवा करो, लड़का-लड़की को पढ़ाओ, जो भी करो, केवल अपना कर्तव्य समझकर करो, उसको आसक्ति से मत करो। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, उनको खिलाओ-पिलाओ, पर बाल-बच्चों को अपने मनोरंजन का साधन मत बनाओ। यही गीता का सिद्धान्त है। निष्काम कर्मयोग गृहस्थ के लिये है। गृहस्थ निष्काम कर्मयोग किस प्रकार करे? जो गृहस्थ व्यवसाय करता है, जिसके बाल-बच्चे हैं, जमीन-पैसा है, इन सबके प्रति कैसा दृष्टिकोण होना चाहिये? डॉक्टर की तरह। डॉक्टर कितने बीमारों को देखता है, लेकिन उस पर कोई असर नहीं पड़ता है। सबकी नब्ज देखता है, सबको दवाई देता है, सबको चंगा करता है, क्योंकि मरीजों के साथ उसकी कोई आसक्ति नहीं है। वह अपना काम पूरा करता है और अपना पैसा वसूल करता है। मगर जब उसका अपना बेटा

बीमार हो जाता है तब उसका असर उस पर पड़ जाता है। गीता का यही सिद्धान्त है, जैसे एक डॉक्टर मरीज को देखता है, वैसे ही गृहस्थ को जीना चाहिए, वैसे ही माँ-बाप को बाल-बच्चों को देखना चाहिये।

अक्सर होता क्या है? घर में लड़का-लड़की हैं, माँ-बाप उनके बारे में सपने देख रहे हैं। सपना पूरा नहीं होने से निराशा होती है। अठारह साल के बाद, लड़का हो या लड़की, उसे स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये। माँ-बाप की कामना और महत्त्वाकांक्षा तो रहती ही है, मगर हमेशा बच्चे के बारे में सोचते रहना ठीक नहीं है। बेटा-बेटी के लिये जिन्दगी भर भागते रहोगे क्या? हमारे यहाँ कहा गया है कि पचास साल के बाद वानप्रस्थ आश्रम में रहना चाहिये और पचहत्तर साल में संन्यास लेना चाहिये। सनातन धर्म में चार आश्रम हैं, पहले पचीस साल पढ़ाई-लिखाई के लिए, फिर पचीस साल संसार बसाने के लिए। तीसरा आश्रम है एकान्त में रहना पचीस साल और चौथा आश्रम है संन्यास, पचीस साल।

आसक्ति का मतलब होता है, दिल से लगाना। आसक्ति आंतरिक विषय है, बाह्य नहीं। हम तुम्हारे साथ रह सकते हैं, फिर भी आसक्ति नहीं हो सकती, जबकि हम और तुम अलग-अलग रह सकते हैं, फिर भी आसक्ति हो सकती है। आसक्ति का साथ रहने या दूर रहने से कोई मतलब नहीं है। अनासक्ति के लिये घर से दूर चले जाना या बाल-बच्चों को छोड़ देना जरूरी नहीं, घर में ही रहकर आदमी अनासक्ति का अभ्यास कर सकता है। जब तक तुमको जीने का कोई दूसरा उपाय नहीं मिलेगा तब तक आसक्ति नहीं जाएगी। आसक्ति तो जीने का सार है। तुम्हारा मन संगीत या किसी हॉबी में लग जाए तो अपने आप बच्चों से हट जाएगा। तुम बच्चों को कहते रहते हो, 'यह मत करो, वह मत करो।' उसको बोलना चाहिये, 'जो चाहो करो।' बच्चों के साथ यही दिक्कत हो जाती है। मन को पकड़ने के लिये कोई रस्सी चाहिये, अभी तुम्हारे बाल-बच्चे हैं उसमें मन लगा हुआ है, अगर तुम्हें दूसरा कुछ मिल जाए तो मन उसी तरफ जायेगा।

लेकिन बच्चों को पढ़ाने के लिये पैसा तो लगाना ही पड़ेगा।

ज्यादा-से-ज्यादा अठारह साल तक, उसके बाद वह खुद कमाए और पढ़े। अठारह साल के बाद बोलना चाहिये, 'बेटा, कमाओ और खाओ।' हम लोग

अपने बच्चों पर बहुत अधिक पैसा खर्च करते हैं, जो हमें नहीं करना चाहिये। धर्म शास्त्र के अनुसार सामान्य समाज में सोलह-अठारह साल के बाद बच्चे को कहना चाहिये, अपनी पढ़ाई तुम खुद सम्भालो, अपना पैसा तुम खुद कमाओ। यह उसको पहले ही मालूम होना चाहिये कि ऐसा होने वाला है।

हमारे गाँवों में बाप कहता है, 'कमाओ, नहीं तो मेरे घर में मत आओ।' देहात में तो बच्चों को पढ़ाते ही नहीं हैं। कुछ पैसा माता-पिता को वृद्धावस्था के लिये रखना चाहिये। ऐसा नहीं करोगे तो वृद्धावस्था में उन पर निर्भर रहना पड़ेगा। वृद्धावस्था में बच्चों पर निर्भर रहना अच्छा नहीं है, क्योंकि लड़का तुम्हारा है, मगर बहू तुम्हारी नहीं है। वह दूसरे घर की है और आजकल की बहू पति को अपने अंगुलियों पर नचाना चाहती है।

प्राकृतिक परम्परा क्या है? चिड़िया अंडा पैदा करती है, उसे सेंकती है, बच्चे की संभाल रखती है, बच्चे को उड़ना भर सिखा देती है उसके बाद 'सटक सीताराम' हो जाती है। उसके बाद कोई मतलब नहीं। यह प्राकृतिक नियम है। कुत्ता-कुतिया है, बच्चे को चाटती है, दूध पिलाती है, उसकी दूसरे कुत्ते से रक्षा भी करती है, पर जहाँ वे बच्चे भोजन करने लग जाते हैं, छोड़ देती है। कुतिया और उसका बच्चा कभी चार साल के बाद मिलते हैं तो उसे यह याद नहीं रहता कि यह मेरा बच्चा था। गाय, भैंस, चिड़िया, बिल्ली या कुत्ता हो, सभी में यह प्रकृति ने नियम बनाया है ताकि नियंत्रण हो।

मनुष्यों में प्राकृतिक नियम यही है कि जब बच्चा सोलह साल का हो जाए तो वह तुम्हारा बेटा नहीं है, वह तुम्हारा दोस्त हो जाता है। मनुस्मृति में कहा गया है –

पंचवर्षाणि पालयेत् दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे मित्रमिव समाचरेत् ॥

जब संतान सोलह साल की हो जाय तो उसके साथ पुत्र की तरह नहीं, मित्र की तरह व्यवहार करना चहिए। यह नियम प्रकृति से आया है – कौआ, घोड़ा, हाथी, कुत्ता, बिल्ली और हम। हम दो पैर वाले जानवर हैं, वे चार पैर वाले जानवर हैं, इतना ही फर्क है। वे हाथ से नहीं पकड़ सकते हैं, मुँह से पकड़ते हैं। दो पैरों पर नहीं चलकर चार पैरों पर चलते हैं। पशु योनि उत्तम योनि है, वह प्रकृति के नियमों के मुताबिक चलती है, जबकि हम लोगों ने

प्रकृति का नियम तोड़ा है। इसलिये बच्चे को पच्चीस साल तक पालते हैं, फिर उसकी शादी करते हैं, फिर नाती-पोतों की देखभाल करते हैं।

बच्चों को अठारह साल में छोड़ो, अपना अलग रहने को बोलो। तब तुम्हारा लड़का, तुम्हारी लड़की जिन्दगी में कुछ रहना सीखेंगे। नहीं तो लड़की कभी बाहर जायेगी तो फँस जायेगी। तुम्हारा लड़का अगर बाहर जायेगा तो फँस जायेगा क्योंकि उसको तो कुछ मालूम ही नहीं है। मगर यह प्रथा हो तो कोई फँसा नहीं सकेगा। अपने बच्चे को हमने बहुत कमजोर कर दिया है।

आदिकाल में पंद्रह साल में तो शादी हो जाती थी।

नहीं, कभी पंद्रह साल में शादी नहीं होती थी। तुम चार-पाँच सौ साल पहले की बात कर रहे हो। आदि काल में लड़की की शादी अठारह साल के पहले होती ही नहीं थी। बारह साल तक तो वह कन्या है, उसके बाद वह किशोरी है, अठारह साल के बाद वह युवती है, पच्चीस साल के बाद वह स्त्री है, पचास साल के बाद वृद्धा है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है। हमारे यहाँ अठारह साल से पहले विवाह की प्रथा नहीं थी। विज्ञान भी कहता है कि स्त्री का गर्भाशय अठारह साल के पहले तैयार नहीं होता है। कच्ची सब्जी खाओगे तो पेट खराब होगा, और कच्चे गर्भ में बच्चा आयेगा तो बीमार रहेगा, ताकत नहीं रहेगी, उसका वजन भी कम होगा। स्त्री का गर्भाशय, जिसमें हम सब पले हैं, वह अठारह साल में तैयार होता है। गर्भाशय का स्वस्थ रहना जरूरी है, नहीं तो कई बार औरत मर जाती है या बाद में बीमार रहती है। वह बीमार क्यों रहती है, यह सब सोचना पड़ेगा। आप सब सभ्य समाज में रहते हैं, पढ़े-लिखे हैं, अपने बच्चों को यह सब सिखाएँ। शादी ठीक ढंग से होनी चाहिये, ठीक समय पर होनी चाहिये और यह कोई जरूरी नहीं कि उसी जाति में होनी चाहिये।

मगर दहेज वगैरह के कानून सबके अलग-अलग होते हैं।

दहेज तब होगा जब सिंधी, सिंधी से शादी करेगा और गुजराती, गुजराती से शादी करेगा। जब इतने अरबों लोगों में से किसी लड़की की किसी लड़के से शादी होगी तो दहेज खत्म हो जायेगा। माल का दाम कब कम होता है? जब सामान मार्केट में पड़ा हुआ है। पाँच अरब लोग पड़े हैं, मगर तुमको तो सिंधी से ही शादी करनी है। सिंधी से करोगे तो सीमित माल मिलेगा ही।

रीति-रिवाज भी तो अलग-अलग हैं न?

रिवाज तो समाज ने बनाया है, इन्सान ने बनाया है, राजा ने बनाया है, भगवान ने रिवाज नहीं बनाया है। रिवाज होना चाहिये, लेकिन समझकर बनाना चाहिये। समाज को चलाने के लिये रीति-रिवाज जरूरी है, लेकिन यह रीति-रिवाज, यह परम्परा समय के मुताबिक चलती है। आज का रीति-रिवाज क्या है? पहले, जमीन पर बैठकर खाते थे, अब कुर्सी-टेबुल पर बैठकर खाते हैं। पहले लोग प्रातः चार बजे उठते थे, अब छ: बजे उठते हैं। समय के मुताबिक जैसी जरूरत होती है, उसके अनुसार रीति-रिवाज बदलते हैं। पंजाब में जाते हो तो सलवार-कमीज पहनते हो, यूरोप में जाते हो तो वहाँ के कपड़े पहनते हो। जैसा देश वैसा रीति-रिवाज चलता है।

लड़की यदि दूसरी जाति में विवाह करेगी तो वहाँ के रीति-रिवाज में समायोजन करना पड़ेगा न?

क्यों करना पड़ेगा? लड़की ही क्यों समायोजन करेगी, लड़का क्यों नहीं करेगा?

भाषा में भी फर्क पड़ जाता है।

भाषा में कुछ फर्क नहीं पड़ता है। आखिर सिंधी क्या है, आधी तो हिन्दी है। यह सब हमारी खोपड़ी का कूड़ा-कचरा है। मोटर-कार में चार पहिये होते हैं। एक साथ रखोगे तो गाड़ी चलेगी नहीं, अलग-अलग रखना पड़ेगा। पुरुष और स्त्री अलग-अलग प्रकृति के होने चाहिये, बस उनमें पटरी बैठनी चाहिये। आखिर ऐसा हो ही कैसे सकता है कि पति और पत्नी एक तरीके से सोचें? तब तो मोटर के दोनों पहिये एक तरफ हो गये, गाड़ी चलेगी ही नहीं। दायाँ पहिया दायीं तरफ हो, बायाँ पहिया बायीं तरफ। एक सरीखे का होना जरूरी नहीं है और यहीं हम लोग गलती करते हैं।

लड़की भगवान की बनायी हुई है और लड़का भी। दोष होता है माता-पिता का। माता-पिता के लिये बच्चे खिलौने की तरह मनोरंजन के साधन होते हैं। गीता में कहा है कि अपना कर्तव्य समझकर सब करो। तुम्हारा कर्तव्य क्या है, उतना करो। अब अठारह साल के बच्चे को अंगुली पकड़कर चलाते हो, वह ठीक नहीं है। स्वामी सत्संगी कहती है कि उसके माता-पिता राधास्वामी पंथ के हैं, इसलिये उसने यहाँ संन्यास लिया। वे रोज कहते, 'ब्रश किया क्या?

स्नान किया कि नहीं?' उसने सोचा, हमारे माता-पिता पर तो सनक सवार है। इसलिए वह अलग हॉस्टल में रहती थी, घर नहीं जाती थी। बोलती थी, फिर वे लोग यही कहेंगे, 'ब्रश कर लिया क्या? उस लड़के से बात मत करो, वह अच्छा नहीं है, लड़कियों को ऐसा नहीं करना चाहिए, वैसा नहीं करना चाहिए।' बड़ी परेशान रहती थी, कहती थी कि हम घर जायेंगे ही नहीं। यहाँ आकर खुश हो गई क्योंकि मैं कुछ नहीं कहता। मैं तो उसे बोलता हूँ कि जो कुछ करना है करो, हमारी दाल-रोटी पहुँचा दो बस।

लड़की हो या लड़का, माता-पिता की नुक्ताचीनी बहुत होती है। मजे की बात यह कि अगर तुम यह नुक्ताचीनी छोड़ दोगे तो बच्चा सोचेगा, माता का मेरी तरफ से दिल टूट गया है! इसलिए उसको शुरू से ही ऐसी ट्रेनिंग देनी चाहिये। हिन्दुस्तान में गरीबी ज्यादा इसलिए है कि बुढ़ापे में माता-पिता के पास पैसा नहीं रहता है। सब बच्चे की शादी में, पढ़ाई में खर्चा कर देते हैं और बुढ़ापे में लड़के से आशा करते हैं, मगर वह क्या करेगा?

साठ-सत्तर साल के बाद तुम्हारा एक ही कर्तव्य है। दिनभर या तो भगवान का भजन करो या गीता पढ़ो, रामायण पढ़ो, दान-धर्म-परोपकार का काम करो, या थोड़ा साधु-महात्माओं का चक्कर मार लो, तीर्थ करो। इसका मतलब अपने परिवार के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है। जो भी तुम कर सकते हो दूसरे के लिए करो और अपनी आत्मा के लिये करो। चाहे घर में रहकर करो, चाहे कहीं ओर रहकर करो।

मेरे बेटा-बहू दोनों काम पर चले जाते हैं, पीछे बच्चे रह जाते हैं, उनका खाना बनाना, उनकी देखभाल तो करनी पड़ती है।

तुम यह सब क्यों करोगे? किसी खाना बनाने वाली को रख लो, या फिर बहू क्यों नहीं खाना बनाती है? तुम क्यों खाना बनाओगे? यह अपनी कमजोरी है जो तुम उन पर लादते हो। हम तो साफ-साफ बोलते हैं, हमने 1983 में संस्था से इस्तीफा दिया, उस वक्त हमारी उम्र साठ साल होगी। उसके बाद एक-दो साल हम इधर-उधर घूमे, तब से यहाँ बैठे हैं, कुछ सोचते भी नहीं। यहाँ के काम से कोई मतलब नहीं, चुप बैठे रहते हैं। किसी को यहाँ आने नहीं देते, कोई आता भी नहीं है। हमारे पास जो कुत्ता है न, हिम्मत नहीं किसी को आने की। स्वामी आत्मानन्द सुबह यहाँ सफाई करने आती है तो पहले कुत्ते

को बन्द करना पड़ता है। यहाँ सबको काटा है, इसलिये यहाँ मेरे पास कोई आता नहीं है।

मैं हमेशा खुश रहता हूँ। आखिर एक दिन तो चुप होना है, अपने कर्तव्य थोड़े ही अपने साथ ले जाने हैं। मेरा कर्तव्य खत्म हो गया। आखिर कर्तव्य क्या है? कर्तव्य मनुष्य की अपनी माया का बहाना है। आश्रम बनाना, पैसा जमा करना, दीक्षा देना, यह माया है, प्रपंच है। जिसके अन्दर माया है वही यह सब करता है। साधु तो भगवद्-भजन करता है और परोपकार के लिये जिन्दा रहता है क्योंकि उसके पास और कोई काम नहीं है। भगवान का भजन करना और दूसरों की सेवा करना, हम अब यही करते हैं। मगर पहले हमें मालूम नहीं था। पैसा इकट्ठा करना, बाहर देशों में जाना, किताब लिखना, किताब बेचना, सब प्रपंच किये। यह बहाना है। उस समय ऊर्जा थी तो क्या करते।

अब हम अपना खाना खुद बना लेते हैं। यही तुम लोगों को भी करना चाहिये। हम शाम को चना या मूँग जैसी चार-पाँच दालें भिगा देते हैं और सबेरे उसमें सेंधा नमक, हल्दी, धनिया पाउडर डालकर प्रेशर-कुकर में बंद करके चूल्हे पर चढ़ा देते हैं। पांच मिनट में तैयार, उसके बाद जब ठण्डा हो जाता है तो पंचफोरन से छोंक दे देते हैं। लहसुन-प्याज कुछ नहीं। किसी दिन चार रोटी बना लेते हैं और अगर किसी दिन सब्जी हो तो सब्जी भी बना लेते हैं।

शाम को कुछ खाना है नहीं, कभी खीर बनती है तो खा लेते हैं, या कभी स्टीम्ड सब्जी खा लेते हैं। आलू नहीं खाते हैं, मैदा नहीं लेते हैं। अब उम्र नहीं है, शरीर को भी तो चलाना है न ताकि यह पुरानी गाड़ी खराब न हो। पालक, मिर्ची, टमाटर जैसी सब्जियाँ भी नहीं लेते क्योंकि हमें मालूम है इस उम्र में कौन-सी चीज नहीं खानी चाहिये। पालक में ऑक्ज़ेलिक एसिड होता है, टमाटर में भी होता है जिससे गुर्दे में पत्थरी हो सकती है। हाँ, पालक उसके लिये अच्छा है जिसके खून में लाल कोशिकाओं की कमी है, मगर हमारी उम्र वालों के लिए नहीं क्योंकि हमारी उम्र में मशीन धीरे काम करती है। 75 साल में धीरे काम करने वाली मशीन में जो रस इकट्ठा होता है वह कम हो तो ठीक है। इसका मतलब यह नहीं कि कभी नहीं खाते हैं, दो-चार महीने में एक बार खा लेते हैं।

जिस दिन चावल बनाते हैं उस दिन और कुछ नहीं, केवल अरहर की दाल और घी ले लेते हैं। सरसों का तेल एक हफ्ता और मूँगफली का तेल एक हफ्ता। 75 की उम्र में शरीर में भोजन पचाने वाले रस-रसायन कम हो जाते है। यह तो प्रकृति का धर्म है। आखिर बाल भी तो सफेद होंगे ही। जब आदमी की उम्र हो जाए तो उसे आगे के सफर की तैयारी करनी चाहिये। मान लो हम यहाँ हैं और हमें कलकत्ता जाना है तो हमें कलकत्ता की तैयारी करनी होगी, देवघर की थोड़े ही करनी होगी। इसी तरह आगे के जन्म की तैयारी है। मनुष्य जब शरीर छोड़ता है तो अन्तिम क्षणों में जिस चीज को याद करता है उसी योनि को प्राप्त करता है। अब अन्तिम क्षणों में तुम किसको याद करोगे? अभी तो कहोगे, 'भगवान को याद करेंगे' मगर भगवान से तो तुम्हारा कोई रिश्ता है नहीं। तुम्हारा रिश्ता है अपने लोगों से, बेटा-बेटी, पोता-पोती, वही याद आयेंगे, फिर दुबारा आकर यहीं फँसना। अन्तकाल में वही विचार आता है जिसका तुमने अभ्यास किया हो। अब जीवन भर माया का विचार किया तो मरते वक्त ब्रह्म का विचार कभी आयेगा क्या? नहीं, कभी नहीं। जैसे तोते को कितना ही राम-राम सिखाओ मरते वक्त टें-टें ही कहता है।

संसार से मुक्त होने के दो ही उपाय हैं, पहला – भगवान का किसी-न-किसी रूप में स्मरण, प्रार्थना के द्वारा, भजन के द्वारा, कीर्तन के द्वारा। दूसरा



उपाय – दूसरों का भला करना। अगर यह न कर सको तो संसार में गरीबों के बारे में सोचना, दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझना। मान लो हम बहुत गरीब आदमी हैं, हम तुम्हारी मदद तो नहीं कर सकेंगे, पर इतना तो जरूर सोच सकते हैं, 'हे भगवान! उसका दुःख दूर करो।' दूसरे के उपकार की बात सोचना, दूसरों का यथासम्भव उपकार करना, उसमें भी जो भूखे हैं, बीमार हैं, नंगे हैं और कंगाल हैं, पैसा हो तो पैसे से, कपड़ा हो तो कपड़े से, नहीं कुछ हो तो प्रार्थना से, यही सब तुम्हारे काम आयेगा, बाकी कुछ नहीं। तुम्हारे बेटा-बेटी, पोता-पोती, कोई काम नहीं आने वाले। सारा पैसा घर में रह जायेगा, कार गैरेज में रह जायेगी, पति और पत्नी हों तो घर के दरवाजे तक साथ देते हैं, सम्बन्धी लोग श्मशान तक साथ देते हैं, शरीर चिता तक साथ देता है, आगे नहीं जाता। मनुष्य का जन्म सुधारने के लिए केवल दो चीजें काम आती हैं – भगवान की भक्ति और दूसरे के कल्याण की कामना।

हर लड़की में समाज में अकेले रहने की शक्ति होनी चाहिये, अपना घर बसाने की ताकत होनी चाहिये, पैसा कमाने की ताकत होनी चाहिये। ऐसे बच्चे माता-पिता को कभी भूलेंगे नहीं। संसार में बच्चे कभी माता-पिता को भूलते नहीं हैं। उनको माता-पिता के प्रति ख्याल जरूर आता है। ये सब बातें अपने बच्चों के दिमाग में डालनी चाहिये और जहाँ तक अपना सवाल है, अपने लिये भजन करो, भागवत-गीता-रामायण रख लो, गुरुग्रंथ साहब रख लो, सुबह में कुछ पढ़ो, कहीं भजन-कीर्तन-सत्संग हो रहा हो वहाँ जाओ। भोजन नियम-संयम से करो। दो सब्जी के बदले एक ही सब्जी खाओ न! पहले घरों में औरतों को काम तो था नहीं, इसलिए गाजर का हलवा बन रहा है, तो गाजर की सब्जी बन रही है, तो गाजर का आचार बन रहा है। उन लोगों ने अपना काम बढ़ा दिया। भोजन भोग के लिये नहीं किया जाता है। भोजन शरीर के लिये पेट्रोल माफिक ईंधन है, जो तुम खाते हो उससे तुम्हारे शरीर की गाड़ी चलती है। इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दोगे तो वृद्धावस्था में ज्यादा समस्या नहीं आयेगी।

– 3 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 7

घर-गृहस्थी में रहते हुए भी मैं कुछ हासिल करना चाहती हूँ, इसलिये बी.एड. कोर्स की पढ़ाई शुरू की है। पर मन में संदेह बना रहता है कि क्या यह गृहस्थाश्रम के अनुकूल है, घर-परिवार और समाज वालों की क्या प्रतिक्रिया रहेगी?

गृहस्थाश्रम जीवन का लक्ष्य नहीं, बल्कि एक उपाय है। हम मकान में रहते हैं, मकान हमारे जीवन का एक आधार है, पर लक्ष्य नहीं। मनुष्य को सोचना चाहिये कि उसे क्या करना है जिससे उसके मन को, उसके बिगड़े हुए स्वप्नों को अभिव्यक्त होने का रास्ता मिले। तुम जो स्वप्न देखती हो वे आखिर क्या हैं? वे मन में कहीं पर पड़े हुए विचार होंगे, कुछ मनोरथ होंगे, कुछ दिवास्वप्न होंगे। किसी व्यक्ति का दिल टूटता है, किसी के विचार टूटते हैं, किसी के सपने टूटते हैं। व्यक्ति को काम निकालना आना चाहिये। घर में बैठकर करना है तो उसका भी रास्ता है, घर के बाहर रहकर करना है तो उसका भी रास्ता है।

दूसरी बात यह कि समाज किसी वस्तु का नहीं, बल्कि एक अवधारणा का नाम है। आज से दो हजार साल पहले भी समाज था, और यह समाज बदलता रहता है। आज का समाज प्रत्येक व्यक्ति से आशा करता है कि वह कर्म में लीन रहे। भोजन बनाना या कपड़ा धोना तो यांत्रिक कार्य है, कोई नौकरानी भी छः-सात सौ रुपये में कर सकती है। एक पढ़ी-लिखी लड़की को न केवल अपने मन को किसी काम में लगाना चाहिए, बल्कि उसे धन का उपार्जन भी करना चाहिये। आखिर हमलोग कलियुग में हैं और कलियुग का पुरुषार्थ ही अर्थ और काम है।

आज पानी भी बिना पैसे के नहीं मिलता, मिट्टी भी बिना पैसे के नहीं मिलती। किसी जमाने में दूध बिना पैसे के मिलता था। मेरे कहने का अर्थ है कि युग के मुताबिक पुरुषार्थ करना पड़ता है। अर्थ और काम आज के पुरुषार्थ हैं। आज कोई भी आदमी महात्मा के पास जाए, मन्दिर जाए, तीर्थ जाए, वह काम के लिये ही जाता है, मोक्ष के हेतु नहीं। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में पुरुषार्थ बाँटा गया है। कलियुग में धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ नहीं हैं। अगर धर्म चलता है तो वह भी अर्थ और काम के हेतु ही होता है। यदि कोई सत्य, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन भी करेगा तो अर्थ और काम के हेतु ही करेगा।

आज साधु-महात्माओं को भी देखिये, सब बदल गये हैं। साधु हो, संन्यासी हो, कुछ भी हो, सब कलियुग में पैदा हुए हैं और कलियुग में पैदा होने से कलियुग का पुरुषार्थ ही करना पड़ेगा। पहले साधु-महात्मा जंगलों में रहा करते थे, लंगोटी पहनकर रहते थे, अपने पास कुछ नहीं रखते थे, लेकिन अब घर बनाना शुरू कर दिया, आश्रम बनाना शुरू कर दिया। क्यों? इसलिये कि अर्थ और काम का नियम है। जब बरसात हो रही हो तो छाता रखना ही पड़ेगा, जब जाड़े का मौसम आता है तो स्वेटर पहनना ही पड़ेगा, ऐसे ही कलियुग आया तो अर्थ और काम सामने आ ही गये।

युग की अवहेलना संत-महात्मा भी नहीं करते, चाहे वे स्वामी विवेकानन्द जी हों, चाहे स्वामी रामतीर्थ हों, चाहे हमारे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी हों। स्वामी विवेकानन्द जी ने अंग्रेजी में लिखा, स्वामी शिवानन्द जी ने भी अंग्रेजी में लिखा। महर्षि महेश योगी अच्छी हिन्दी बोलते थे, लेकिन अंग्रेजी में लिखा। स्वामी भक्तिवेदान्त प्रभुपाद ने अंग्रेजी में लिखा। क्यों? जैसे तुम मौसम को पहचानते हो, वैसे ही युग को और युग के धर्म को पहचानना पड़ता है।

धर्म का पालन न तो गेरूवस्त्र धारण करने से होता है, न बाल बड़ा या छोटा करने से होता है, न कण्ठी धारण करने से होता है। जीन्स पहनने वाली लड़की भी धर्मात्मा हो सकती है, फ्रॉक पहनने वाली लड़की भी धर्म पालन करने वाली हो सकती है। शास्त्र पढ़ने के लिये सलवार-कमीज पहनना, यह करना, वह करना, ऐसा कहीं नहीं लिखा है। सामान्य समाज शास्त्र में लिखा हो सकता है पर धर्म शास्त्र में नहीं लिखा है। जिस समाज में लड़कियाँ कमजोर रहती हैं, वह समाज कभी श्रीमंत नहीं हो सकता, कभी सुरक्षित नहीं रह सकता, कभी कुशल-मंगल को प्राप्त नहीं कर सकता।

इसलिये व्यक्ति को खाली नहीं रहना चाहिये, हमेशा कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। मनुष्य में तीन गुण विद्यमान होते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। जैसे सीमेंट, लोहे और ईंटे से मकान बना होता है, उसी तरह यह मन भी तीन गुणों का संयोजन है और उसमें रजोगुण ज्यादा रहता है। अगर रजोगुण नहीं रहेगा तो तुम सक्रिय नहीं रहोगी, न तुम्हारा घर में मन लगेगा, न ही नौकरी में।

लेकिन इस बात को लेकर कभी-कभी पति से टकराव भी होता है।

पति-पत्नी में जो टकराव होता है, वह कोई बुरी चीज नहीं है, वह तो प्राकृतिक और नैसर्गिक है। अगर पति-पत्नी के विचार एक समान हो जाएँ तो पॉजिटिव और नेगेटिव खत्म हो जायेगा। ये दो करेंट होते हैं, दोनों की भिन्नता से बिजली पैदा होती है। वैसे ही यदि पति और पत्नी समान विचार वाले हो जायेंगे तो घर-गृहस्थी में मजा नहीं आयेगा, जीवन में नीरसता और बोरियत आ जायेगी। इसलिये पति-पत्नी के बीच कभी नोंक-झोंक हो जाये, कभी पति गुस्सा हो जाये, कभी पत्नी गुस्सा हो जाये, यह जीवन के विकास के लिये जरूरी है। इस बात को हमेशा याद रखना, हम तो यह बात सभी को बोलते हैं।

अपने आप को आगे बढ़ाना हो तो एक जैसा चलना चाहिये न?

कोई जरूरी तो नहीं है। पति और पत्नी दो अलग-अलग जीव हैं। दोनों के गुण, जन्म, कर्म और धर्म अलग-अलग हैं। शरीर, विचार, वासनाएँ, व्याधियाँ, सब अलग हैं। समाज ने परिवार को चलाने के लिये बोल दिया है कि तुम लोगों को समान ढंग से चलना चाहिये। गलत बात है। समाज शास्त्र चाहता है कि पति-पत्नी एक तरह के हों, ताकि घर-गृहस्थी अच्छे से चले, मगर मनोविज्ञान इस बात से इंकार करता है। वह कहता है कि पति और पत्नी, पुरुष और स्त्री दो अलग-अलग शक्तियाँ हैं और दोनों में अंतर रहना जरूरी है।

पुरुष और स्त्री, दोनों के मस्तिष्क के वजन में फर्क है। पुरुष को दिल का दौरा होता है, स्त्री को कभी नहीं होता। स्त्री और पुरुष के मस्तिष्क की अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग होती हैं। स्त्री में विवेक विशेष होता है। हमारे देश में अगर आधे नेता स्त्री हो जायें तो भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा। स्त्री गलती करती है, मगर उसमें विवेक रहता है। *किं कर्तव्यं किमकर्तव्यम्* अर्थात् क्या

करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, स्त्री में यह विवेक शक्ति होती है। दूसरी चीज, स्त्री में सहनशक्ति बहुत रहती है। अगर प्रकृति कहे पुरुष को कि अब तुम को बच्चा होगा और उसे एक बच्चा हो जाए तो बोलेगा, दूसरा नहीं। पर स्त्री तो चार-चार, पाँच-पाँच बच्चा पैदा करती जाती है और दर्द सहन करती जाती है। इतनी सहनशक्ति होती है औरत में। औरतों की प्रज्ञाशक्ति भी बहुत तेज होती है। इसलिये स्त्री और पुरुष समान चलें, यह संभव नहीं है।

पुरुष को स्त्री के भिन्न स्वभाव के साथ समन्वय करना चाहिये, और स्त्री को भी यह समझना चाहिये कि वह पुरुष के भिन्न स्वभाव से समन्वय करे। जब नट और बोल्ट को जोड़ा जाता है तो दोनों में भिन्नता रहती ही है। उसी तरह से स्त्री और पुरुष परिवार के दो अलग-अलग सर्किट हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि शिव पुरुष हैं और पार्वती शक्ति हैं। पुरुष जीवन के एक ध्रुव को दर्शाता है और स्त्री दूसरे ध्रुव को। दोनों का समान होना जरूरी नहीं। हम संस्थाओं में रहे हैं, हमारे यहाँ लड़के-लड़कियाँ दोनों रहते हैं, आये दिन कुछ-न-कुछ झगड़ा हो ही जाता है। हम कहते हैं, कोई बड़ी बात नहीं, केवल इतना ही देखना चाहिये कि स्त्री और पुरुष के झगड़े में कहीं कोई गलत कदम न उठा ले। बाकी लड़ाई-झगड़े में कुछ नहीं है, थोड़ा-सा



गुस्सा होना, थोड़ा-सा रूठना, थोड़ा-सा बात नहीं करना, यह सब चलना चाहिये, अच्छी चीज है।

आगे जाकर परिवार में पत्नी की अगर अलग नौकरी हो जायेगी, पति की अपनी अलग नौकरी रहेगी तो फिर अनावश्यक झगड़ा और तनाव नहीं होगा। तुम अपने काम में व्यस्त हो जाओगी, वह अपने काम में व्यस्त हो जायेगा, फिर एक-दूसरे से ज्यादा मतलब नहीं रहेगा। बीच में एक दीवार पड़ जायेगी, काम और व्यस्तता की। अभी कमी है तो केवल व्यवसाय और व्यस्तता की। तुम इस मर्ज को झेलने वाली अकेली नहीं हो, सब घरों में यही हाल है।

जब मैं शादी करके ससुराल आई थी तब मैंने सर्विस करने के लिए बोला था। उस समय मुझे बोल दिया गया कि अम्माजी ने की है, देखो कितनी तकलीफ होती है, घर बिखर जाता है। अब इतने साल घर में रहने के बाद लगता है मेरा दिमाग काम ही नहीं करता।

तुम्हारे घर के लोग मानें या न मानें, हम तो सीधी बात बोलते हैं। हर स्त्री को दाल-रोटी बनाने के अलावा दूसरा काम भी करना चाहिए।

सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, यह बहुत कुछ कर सकती है। घर से बाहर जाने की भी जरूरत नहीं।

यह सब गलत बात है। तुम्हारी सास कुछ भी कहे, लेकिन अगर तुम ही कपड़े धोने का काम करोगी, तुम ही सिलाई-बुनाई करोगी तो दूसरों को काम कैसे मिलेगा? तुम्हें बाहर जाकर चार-पाँच हजार रुपया कमाना चाहिये और एक हजार नौकरों को बाँट देना चाहिये। इस तरह रोजगार पैदा करना चाहिये। तुम ही कपड़े सिलो, तुम ही स्वेटर बुनो, तुम ही सब कुछ करो, ये समाजवाद की बातें छोड़ो। अभी पूँजीवाद की बात करो क्योंकि आज के जमाने में समाजवाद की बात करना व्यर्थ है।

बहू को नौकरी करनी है तो करे, लेकिन तीन सौ रुपये की नौकरी में क्या फायदा? तीन सौ रुपये के लिए घर की अवहेलना करना उचित है क्या?

तीन सौ रुपये नहीं, आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियों को बैंकों में, स्कूलों में बहुत अच्छी नौकरी मिल सकती है। कम पैसा देने वाले लोग भी हैं, इसलिये

अच्छी नौकरी तो ढूँढनी पड़ेगी। लेकिन मुख्य चीज नौकरी या पैसा नहीं, मन की व्यस्तता है। इससे इसका स्वास्थ्य अच्छा होगा, बाल-बच्चों और परिवार पर अच्छा असर पड़ेगा। नौकरी होने से इसकी मनोवृत्ति बदलेगी, नहीं तो हीनभावना आ जाती है। अगर ढूँढोगे तो निश्चित रूप से अच्छी नौकरी मिलेगी।

हम पुरुषों से एक ही बात कहते हैं कि स्त्रियों के रास्ते में खड़े मत होना। हिन्दुस्तान में इतने साधु-महात्मा हैं, उनमें सबसे सफल हम रहे हैं। क्यों? इसलिये कि हमने स्त्री जाति को हमेशा सम्मान के साथ रखा है, स्नेह और विश्वास के साथ रखा है, उन्हें पद-प्रतिष्ठा देकर रखा है। स्त्री के रास्ते में पुरुष को आना ही नहीं चाहिये। फिर वह खुद अपना रास्ता निकाल लेगी। तीन सौ रुपये का हिसाब हमें समझ में नहीं आता, क्योंकि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ आज के जमाने में आराम से चार-पाँच हजार रुपये या उससे ज्यादा भी कमा सकती हैं।

घर पर रहकर भी अपना कुछ कमा सकती हैं?

घर पर तभी कमा सकती हैं जब एक बार शुरुआत हो जाये। आजकल सब आत्मविश्वास पर चलता है। स्त्री कभी घर से बाहर तो निकली नहीं, अपने पर विश्वास नहीं है। कल कहीं बैंक में नौकरी करेगी या किसी दफ्तर में काम करेगी, घर से बाहर निकलेगी, रिक्शे में जाएगी-आएगी, लोगों से मिलेगी तो विचार आयेंगे, आत्मविश्वास बढ़ेगा। जब आत्मविश्वास बढ़ेगा तो व्यक्ति घर में भी कुछ कमाने की व्यवस्था कर सकता है। आत्मविश्वास के बिना अपना व्यापार या व्यवसाय चलाना सम्भव नहीं। व्यापार तो एक जुआ है, उसके लिए बहुत आत्मविश्वास और अनुभव की जरूरत पड़ती है। इन बातों पर थोड़ा सोचो, यह मत सोचो कि लड़ाई-झगड़ा क्यों हो रहा है। इसको तुम निपटा नहीं सकोगे। अगर भगवान भी तुम्हारे बीच सुलहनामा करने आयेंगे तो नहीं कर पायेंगे, बल्कि यही कहेंगे कि अच्छा है!

शिव-पार्वती में भी तो नोंक-झोंक होती है न? आखिर अजनबी से कोई झगड़ता है क्या? रास्ते में चलती किसी लड़की से झगड़ते हो क्या? जो अपना होता है उसी के साथ तो झगड़ा होता है। संस्कृत में कहते हैं – *अतिपरिचयात् अवज्ञा,* मतलब बहुत ज्यादा घनिष्ठता होने से अवज्ञा या तिरस्कार होता है। यह झगड़ा अवज्ञा का परिणाम है। तुम्हारे पति को तुम्हारे प्रति अवज्ञा है, तुम्हें उसके प्रति अवज्ञा है। उसके मन में जो आता है, वह बोल देता है, तुम्हारे

मन में जो आता है, तुम बोल देती हो। हम नहीं बोल सकते क्योंकि घनिष्ठता नहीं है। यह सब अति-घनिष्ठता के कारण ही होता है।

घर-गृहस्थी में सबसे बड़ी गलती यही होती है कि पति पत्नी पर अपना अधिकार समझता है। यह गलत है, यह सामाजिक चिंतन का परिणाम है। स्त्री एक अलग जीवात्मा है जो अपना कर्म, अपनी अनुवांशिक संरचना लेकर आई है। तुम्हारा और इसका पूर्वजन्म, तुम्हारे और इसके माता-पिता की संरचना, दोनों अलग हैं। पति-पत्नी एक हो ही नहीं सकते, दोनों एकदम अलग हैं।

हमारे ससुराल में बोलते हैं कि तुम्हीं लोग ऐसे हो जो लड़ते हो, हमारे यहाँ तो कोई नहीं लड़ता।

लगता है वे अपने दिन भूल गये, अपना सब भूल जाते हैं! खैर इन सब चीजों का एक ही उपाय कहा जा सकता है। तुम अपने मन को एकदम व्यस्त कर दो, मधुमक्खी की तरह। तुम अपनी बी.एड. की पढ़ाई कर रही हो, पढ़ने के बाद अच्छी नौकरी मिलेगी या फिर कोई दूसरी ट्रेनिंग ले लेना जैसे कम्प्यूटर में विशेष ट्रेनिंग। फिर नौकरी ढूँढो, चाहे ससुराल की मदद से, चाहे मायके की मदद से, चाहे अपने दोस्तों के माध्यम से। जैसे चोर चोरी करने के लिए रास्ता निकालता है, उसी तरह हर एक व्यक्ति को रास्ता निकालना पड़ेगा। सबेरे अपना खाना बनाओ, फिर थोड़ी साफ-सफाई करो, फिर अपने काम पर जाओ।

पुरुष-स्त्री साथ में रहते हैं, उनके बच्चे होते हैं तो उनके माने जाते हैं, इससे समाज चलता है। मगर पति पत्नी को पराधीन समझे और उसे नियंत्रण में रखना चाहे, यह गलत है क्योंकि दोनों मित्र हैं। पति मालिक नहीं हो सकता, न पत्नी मालिक हो सकती है। न पति गुलाम है, न पत्नी गुलाम। तुम दोनों मित्र हो और मित्रों में अनबन तो होती ही है। जैसे बादल गरजते-बरसते चले जाते हैं फिर आसमान साफ हो जाता है, वैसे ही मित्रों के बीच होता है। यह विचार रखना कि पति और पत्नी का सात जन्मों का साथ है, तर्कसंगत नहीं है, इसे कोई प्रमाणित नहीं कर सकता। यह भी नहीं मानना कि पत्नी दासी है और पति की सेवा करना उसका धर्म है। यह आज के युग की मर्यादा ही नहीं है। हम तुम्हारे दोस्त हैं, तुम्हारे लिये कभी चाय बना देते हैं तो नौकर थोड़े ही बन गये। तुम बाहर जाते हो, यह खाना बना देती है, शौचालय साफ कर देती है तो वह तुम्हारी नौकरानी थोड़े ही बन गई! इन सब पुरानी मर्यादाओं को अब छोड़ो।

वह तुम्हारी मित्र है, तुम उसके मित्र हो। इस मित्रता में नोंक-झोंक, तू-तू मैं-मैं चलने दो। मगर एक मित्र दूसरे मित्र को आगे बढ़ने में मदद करे। तुम नौकरी के लिए जाते हो, यह एक-दो परांठा बना देती है, तुम वहाँ टिफिन में ले जाकर खाते हो। ठीक है, यह मित्र का कर्तव्य है। अब इसको अगर नौकरी पर जाना है तो तुम मोटर साईकिल पर पहुँचा दो, यह तुम्हारा कर्तव्य है। औरत पर पुरुष का कोई अधिकार नहीं है, केवल कर्तव्य है, और न ही पुरुष पर स्त्री का कोई विशेष अधिकार है। मित्र का मित्र पर आखिर क्या अधिकार है? स्नेह सूत्र ही तो है। दो लंगोटिया यार शाम को चाय की दुकान में बैठते हैं। उनके बीच क्या समानता है? बस एक-दूसरे के साथ बैठकर चाय पीना या दांव-पेच मारना अच्छा लगता है। इसी तरह पति-पत्नी भी एक-दूसरे को मित्र मानें।

हमलोगों के समाज में जो पुराना विचार है, वह किसी जमाने की सभ्यता रही है। उस समय किसी कारण से यह सब कहना भी पड़ा। आज भी समाज में ऐसे स्थान हैं जहाँ औरतें गँवार हैं, उनको पुरुषों की रक्षा की आवश्यकता पड़ती है। औरत अनपढ़ है तो नौकरी थोड़े ही करेगी, घर में रहकर गोबर उठाती है, उसके लिये ठीक है। मगर एक विदुषी, सुशिक्षिता लड़की के साथ पुरुष के सम्बन्ध का आधार दूसरा होना चाहिए।

तुम आधे नहीं, वह आधी नहीं। तुम्हारा एक अस्तित्व है, उसका दूसरा अस्तित्व है, यह व्यावहारिक सिद्धान्त है जिससे घर में सामंजस्य होगा। दूसरी चीज, तुम्हारे घर में सब काम औरत पर छोड़ दिये जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। अगर वह रसोईघर में बैठकर खाना बना रही है तो तुम अपना शौचालय साफ कर दो, या तुम रसोईघर देखो और वह बिस्तर लगा देगी, कपड़े धो देगी।

जब हम लोग साथ में रहते हैं तो हमें दूसरों के दोषों को नहीं, उनके गुणों को देखना चाहिए। दूसरा व्यक्ति मेरे कितने काम आता है यह देखना पड़ता है। उसके साथ रहकर मैं कितना सुखी हूँ, यह देखना पड़ता हैं। मान लिया जाये कि स्वामी सत्संगी यहाँ नहीं रहे तो मेरे को कितनी दिक्कत होगी, यह भी सोचना पड़ता है। पति अगर घर में नहीं रहेंगे तो तुमको कितनी दिक्कत होगी और तुम अगर घर में नहीं रहोगी तो तुम्हारे पति को कितनी दिक्कत होगी, इस तरह से अपने सोचने का ढंग थोड़ा बदलना चाहिये।

– 5 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 8

यहाँ हम किसी से मिलते नहीं हैं। हमारा नियम है, न हम मिलते हैं, न ही उपदेश देते हैं और न ही किसी से कुछ लेते हैं। हम एकान्त में कुटिया बनाकर रहते हैं। यह हमारा आश्रम नहीं है। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो यह आप की गलतफहमी है। उधर कोने में हमारी एक कुटिया है जिसमें हम रहते हैं। यह बैठकी है इन लोगों की, हम आकर बैठ जाते हैं कभी-कभी। मगर मिलने का हमारा कोई रिवाज नहीं है।

हमारा मन ही नहीं करता है किसी से मिलने का। आप लोगों के साथ चालीस-पचास साल रहते-रहते बहुत निराशा हुई है। आप लोग एक तरफ से मुँह साबुन से साफ करते हैं, फिर काला करते हैं, फिर साफ करते हैं। हृदय को शुद्ध तो कोई करता नहीं, सोचने का तरीका कोई बदलता नहीं, रहने का तरीका कोई बदलता नहीं, खाने का तरीका कोई बदलता नहीं और फिर भी सब कुछ ठीक-ठाक चाहते हैं। वह नहीं हो सकता। कुत्ते की पूँछ टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी, इसलिए हम कहते हैं कि टेढ़ी ही रहने दो। अपने को सीधा करने का कोई प्रयत्न नहीं करता है। अब हम यहाँ एकान्त में आ गए हैं और किसी को आध्यात्मिक पथ का मार्गदर्शन नहीं देते हैं, लौकिक मार्ग का भी नहीं। हम किसी से मिलते भी नहीं हैं। हमने ठान लिया है कि हमें किसी को कुछ समझाना ही नहीं है, क्योंकि कुछ फर्क पड़ने का नहीं है।

पहले की बात अलग थी, उस वक्त हम संस्था के अध्यक्ष थे। जब हम संस्था के अध्यक्ष थे, उस वक्त हमें संस्था का दायित्व निभाना पड़ता था, एक कर्तव्य था। जब तुम किसी विभाग में काम करते हो तो वहाँ का काम-

काज तुम्हें करना पड़ता है, क्योंकि तुम्हारा कर्तव्य है। अभी हमें संस्था से कोई मतलब नहीं है। स्वतंत्र रूप से रहते हैं, न कोई आश्रम है, न शिष्य। कुछ सिखाते भी नहीं हैं। हम क्या सिखायेंगे? उम्र तो हो ही गयी है। अब एकान्त में रहते हैं।

दुनिया को, आदमी को कोई बदल नहीं सकता। मनुष्य को कुछ प्राप्त करना है तो खुद अपने प्रयत्न से ही करना होगा। मनुष्य चाहे तो अपने को बदल सकता है, चाहे भक्ति से, ज्ञान से, त्याग से या किसी और साधन से। कोई दूसरा मदद नहीं कर सकता। कुत्ते की पूँछ टेढ़ी है, वह टेढ़ी ही रहेगी। कुत्ता चाहे तो सीधा कर सकता है, दूसरा उसको सीधा नहीं कर सकता। हमने पचास साल तक करने के बाद सब छोड़ा। हमने कहा, 'नहीं, बेकार में क्यों सिर मारो इन लोगों के साथ। कोई तो बदलता नहीं है।'

आप जैसे योगी के यहाँ रहने से हमारा भारतवर्ष तो धन्य हो गया।

यह सब हम नहीं जानते। हम न योग सिखाते हैं, न वेदान्त। हम तो हिन्दुस्तान के अस्सी करोड़ लोगों में से एक हैं जो यहाँ एकान्त में रहते हैं। हमें अपने बारे में कोई भ्रम नहीं है। हम आप जैसे आदमी हैं। जैसे आप माँ के पेट से पैदा हुए, हम भी माँ के पेट से पैदा हुए। जैसे आप एक दिन दुनिया छोड़कर चले जायेंगे, वैसे हम भी एक दिन दुनिया छोड़कर चले जायेंगे। जैसे आप खाना खाते हैं, वैसे हम भी खाना खाते हैं। जैसे आप सोते हैं, वैसे हम भी सोते हैं। जैसे आप बोलते हैं, वैसे हम भी बोलते हैं। जैसे आप दो पैरों पर चलते हैं, हम भी दो पैरों पर चलते हैं। कोई फर्क नहीं है। बस इतना फर्क है कि हमने ज्यादा किताबें पढ़ी हैं, आपने कम पढ़ी हैं। और कोई फर्क नहीं है। इसलिए जो कुछ प्राप्त करना है अपने अन्दर से खुद प्राप्त करो।

काकभुशुण्डि ने कलियुग के गुण-अवगुण बतलाते हुए कहा है कि कलियुग में दो गुण हैं – पहला तो यह कि भक्ति से भगवान सरलता से मिलते हैं और दूसरा, मानसिक कर्म का कोई फल नहीं होता। तो जो हम मन में सोचते हैं, उसका असर क्या सतयुग और त्रेतायुग में पड़ता था?

देखिये, कलियुग में कोई भी आदमी अच्छी बात तो सोचता ही नहीं। हमेशा चिंता, पैसा, शादी, तरक्की, बीमारी, बदनामी, लोभ, काम और क्रोध ही

चलता है। चौबीस घण्टे जब मन में वही रहता है तो भगवान ने कानून बदल दिया होगा। जो आदमी चौबीस घण्टे गलती करता रहे उसे तो बहुत बड़ी सजा हो जायेगी। इसलिये कलियुग में कानून बदला है कि मनुष्य अगर मन में कुछ बुरा चिंतन या पाप करता है तो उसका कोई फल नहीं होता। '*मानस पुण्य होहिं नहीं पापा*' – कलियुग में मन में जो भी तुम अच्छा या बुरा विचार करते हो, उसमें पुण्य भी नहीं, पाप भी नहीं। जैसे काले कपड़े पर कितना भी धब्बा डाल दो, दिखता नहीं है, वैसे ही यह कलियुग भी काला कपड़ा है।

सतयुग सफेद कपड़े की तरह है। उसमें एक भी दाग लग गया तो दिखाई देता है। सतयुग और त्रेतायुग में मानसिक पाप-पुण्य का फल मिलता था, पर कलियुग में मानसिक पाप-पुण्य का फल नहीं मिलता। ये सब हम सामान्य ढंग से कह रहे हैं, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान में कहा गया है कि आदमी जैसा विचार करता है, वैसे ही उसके अवचेतन मन में संस्कार बनते हैं, वैसी ही उसके अन्दर रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। जैसे तुम अगर डरोगे तो तुम्हारी एड्रीनल ग्रन्थियाँ रस बहायेंगी। मन में चिंता होगी नौकरी की, पैसे की, बेटे की, बेटी की, तो तुम्हारी एसीडिटी बढ़ेगी। यह मानसिक प्रक्रिया की स्वत: होने वाली शारीरिक प्रतिक्रिया है, इसको विज्ञान में बहुत विस्तार से बतलाया गया है।

काम, क्रोध, लोभ आदि के मन में आने से शरीर में क्या-क्या परिवर्तन आते हैं? मनोविज्ञान कहता है कि असर जरूर होता है। मनुष्य पर विचारों का, चाहे वे अच्छे विचार हों या बुरे विचार, उसके शरीर और मन पर असर पड़ता है। उसके व्यवहार पर भी उसका असर होता है। जैसे एक लड़का पढ़ता है तो सोचता है कि कलेक्टर बनेंगे, कमिश्नर बनेंगे, फिर ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे, लेकिन बी.ए. में फेल हो जाता है। दूसरी बार भी फेल हो जाता है तो उसे नर्वस ब्रेकडाऊन हो जाता है। ऐसा क्यों हुआ उसको? इसलिए कि उसने बहुत लम्बी छलांग लगाने के बारे में सोचा, जबकि वह चल भी नहीं सकता था। जो आदमी बहुत ज्यादा इच्छा करता है, उसे बहुत ज्यादा निराशा होती है और निराशा का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। मस्तिष्क अवसाद में चला जाता है। अवसाद का मतलब होता है कि मस्तिष्क का वोल्टेज डाउन हो जाता है। उसी की वजह से हृदय पर असर पड़ता है, फिर सारे शरीर पर उसका असर पड़ता है।

अवसाद बहुत लोगों को होता है। आजकल वे एंटी-डिप्रेशन की दवाइयाँ लेते हैं। बहुत लोग शराब पीते हैं, किसी की कुछ और बुरी आदत होती है। मनुष्य के विचारों का तो असर होता ही है, अच्छे का भी और बुरे का भी। दान-पुण्य करने का विचार करोगे तो उसका भी असर होगा और पाप करने का विचार करोगे तो उसका भी असर होगा। फर्क यही है कि किसी विचार या इच्छा का परिणाम अवसाद होता है।

मन में हम जो कुछ सोचते-करते हैं, उसका शरीर पर तो असर पड़ता है, पर उस कर्म का फल यहीं पर मिल जाता है क्या?

आज किये गये कर्म का फल आज या कल ही मिलेगा, यह कोई जरूरी तो नहीं है। आज के कर्म का फल कल भी मिल सकता है, दस साल बाद भी या अगले जन्म में भी मिल सकता है। आज अगर तुम पालक और कटहल लगाओ तो पालक डेढ़-दो महीने में मिल जाएगी, पर कटहल को आने में दो-तीन साल लगेंगे। हर कर्म के पकने की अवधि अलग रहती है। किसी कर्म का फल तुरन्त मिलता है, किसी कर्म का फल देरी से, और कर्म के फल भी एक सरीके नहीं होते।

कुछ कर्मों का फल सामाजिक और आध्यात्मिक, दोनों होता है। एक आदमी ने चोरी की, उसे छः महीने या एक साल के लिए जेल में डाल दिया गया। वह भी तो फल ही है, मगर वह सामाजिक परिणाम है, आध्यात्मिक नहीं। एक आदमी ने किसी से उधार लिया, नहीं चुकाया तो मामला दर्ज हुआ, जुर्माना हो गया, नहीं अदा कर पाया तो जेल में डाल दिया। एक-डेढ़ साल वह जेल में रहा, उससे उसके कर्म का फल पूरा नहीं हुआ। वह तो उसने एक सामाजिक गलती की थी, उसका फल मिला है। मगर उसने जिस व्यक्ति से कर्जा लिया था और नहीं चुकाया था, वह व्यक्ति किसी अगले जन्म में कर्जा वसूलने उसका बेटा या बेटी बनकर आयेगा।

बेटा-बेटी या पति-पत्नी जैसे जो बहुत नजदीक के सम्बन्ध हैं, ये पूर्व जन्मों के हैं। असल में ये सब अपना-अपना हिसाब-किताब बराबर कर रहे हैं। ये पूर्व जन्म के कर्जदार हैं जो अपना कर्जा बरोबर करने के लिए आते हैं। अब बेटा क्या है? बाप ने कर्ज लिया है और अब दे रहा है बेटे को, दस हजार, बीस हजार, तीस हजार, चालीस हजार, पचास हजार। वह बदमाशी

करता है, तब भी दे ही रहा है। इसलिए बड़े-बूढ़े कहते हैं कि बेटा अपना कर्जा वसूल रहा है। इस तरह कर्म का आध्यात्मिक फल अगले जन्म में भी मिल सकता है और इस जन्म में भी, मगर जो सामाजिक परिणाम है वह तो तुम सामने देखते ही हो।

जैसा अन्न वैसा मन, इस बात में कितना सत्य है?

देखिये, बंदर शाकाहारी होता है, लेकिन बड़ा चंचल होता है। बंदर में कोई गुण नहीं है, किसी के काम नहीं आयेगा, खाली मदारी के काम आता है। सब गड़बड़ करेगा, यहाँ कुछ रखोगे तो तोड़ देगा। दूसरी ओर कुत्ता होता है मांसाहारी, पर सब गुण हैं उसमें। वह स्वामीभक्त और समझदार होता है, गंध से आदमी को पहचान लेता है, चोर-डाकू को पकड़ लेता है, आदमी के विचारों तक को सूंघ लेता है, कितना मेधावी होता है! साथ ही बड़ा संतुष्ट रहता है, जो दोगे खा लेगा। इसलिए जैसा खाना खायेंगे, वैसा ही मन बनेगा, यह कोई जरूरी नहीं है।

हमारे यहाँ हिन्दुस्तान में बहुत शाकाहारी हैं और यूरोप में सब मांसाहारी हैं, लेकिन जितना सामाजिक न्याय या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता वहाँ है, उतनी हमारे यहाँ नहीं है। वहाँ जो बेरोजगार हैं, उनकी सरकार मदद करती है, समाज मदद करता है। वे पैसे के बारे में ज्यादा नहीं सोचते। पैसा उनके यहाँ कोई बड़ी चीज नहीं है, जबकि हमारे यहाँ पैसे को दांत से पकड़ते हैं। पैसे के बारे में जो भावना हमारे मन में है, वह उनके मन में नहीं है। उनके यहाँ लड़के-लड़कियाँ आपस में मिलते-जुलते हैं, घूमते-फिरते हैं, मगर कभी मर्यादा भंग नहीं होती। अपने यहाँ के लड़के-लड़की दो घण्टे साथ बैठें तो मर्यादा भंग हो जाती है। नियंत्रण ही नहीं है। तब कैसे कह सकते हो कि मांसाहार से शाकाहार श्रेष्ठ है?

घोड़ा शाकाहारी है और साथ ही स्वामीभक्त एवं उपयोगी भी। हम किसी पक्ष की तरफदारी नहीं कर रहे हैं, अनुभव पर आधारित व्यावहारिक बात बोल रहे हैं। इस विषय को सही दृष्टिकोण से देखना होगा। देखा जाए तो मांसाहार मानव स्वास्थ्य और शरीर के लिए अच्छा आहार नहीं है। शेर, चीता, बाघ और तेंदुआ जैसे जितने भी मांसाहारी जानवर हैं, ये शुद्ध मांसाहारी जानवर हैं। ये कभी भी किसी दूसरे मांसाहारी जानवर को नहीं खायेंगे। केवल उस जानवर का माँस खायेंगे जो शाकाहारी हो, क्योंकि शाकाहारी जानवर का

शरीर शुद्ध रहता है, विषरहित होता है। जो मनुष्य शाकाहारी भोजन करता है, उसके शरीर में विषाक्त पदार्थ और जीवाणु नहीं होते। यदि होते भी हैं, तो बहुत कमजोर होते हैं। इसलिए मांसाहारी जानवर केवल शाकाहारी जानवर का ही भोजन करेंगे, जैसे खरगोश, हिरण, ऊँट, बकरी आदि। कोई शेर मरा हो तो दूसरा शेर उसको छुएगा तक नहीं, क्योंकि वह विषाक्त है। मांस खाने से शरीर में विष अधिक होता है, ऐसा अनुभव से लगता है।

केवल दो-तीन जीव ही ऐसे हैं जो निषिद्ध मांस का सेवन करते हैं – कौआ, गिद्ध और सियार। इसलिए इन सबको लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कौए को चंडाल पक्षी कहते हैं, महा गंदे माने जाते हैं क्योंकि वे अखाद्य मांस भी खाते हैं। मांसाहारी जानवर जब मर जाता है तो वह अखाद्य हो जाता है। शाकाहारी जानवर जब मर जाता है तो वह खाद्य रहता है। शाक-सब्जी से शरीर में विपरीत अवस्थायें और रोग कम पैदा होते हैं।

अब रही बात मनुष्यों में मांसाहार की। हमारे प्राचीन ग्रंथों और शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि हमारे समाज का जो सबसे ऊँचा वर्ग था, ब्राह्मणों का, वह मांसाहार करता था। जब-जब यज्ञ होते थे उनको बुलाया जाता था, तब मृगमांस रांधा जाता था। ये कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्र जी जब जंगल गये तो वहाँ मांसाहार करते ही थे, यह तो नहीं लिखा है, मगर इतना तो लिखा है कि वे आखेट करते थे।

कहने का मतलब यह कि हमलोगों को इस बात पर लकीर का फकीर नहीं होना चाहिए कि मांसाहार से मनुष्य की वृत्ति बदल जाती है। सरदार लोग मांस खाते हैं, पर देखो कितनी भक्ति है उन लोगों में! हर एक सरदार जी नियम से गुरुद्वारा जायेगा, उसके लिए अलग से पैसा निकालेगा, भगवान की भक्ति करेगा। विदेशों में हम जाते थे, सरदार लोगों को पता चलता था तो दौड़कर आते थे साधु-महात्मा की संगत करने। इसलिए हम कहते हैं कि मांस का मनुष्य की वृत्ति पर कोई सीधा असर देखने को नहीं मिलता है। जापान के लोग सब मछली खाते हैं, पर वे अपने धर्म पर कायम रहते हैं। पूजा-पाठ उनका सब चलता है। हिन्दुस्तान में भी जितने मैथिल ब्राह्मण हैं, प्राय: सब मांसाहारी हैं। आसाम में भी बहुत मांसाहारी हैं।

मांसाहार का शरीर पर असर पड़ता है, यह हम मानने के लिए तैयार हैं, परन्तु मन, स्वभाव और आचरण अलग बात है। यूरोप में तो मांस के अलावा

कुछ खाते ही नहीं हैं, मगर उनकी जीवनशैली देखो, स्त्रियों के प्रति उनका भाव देखो, धन के प्रति उनका भाव देखो, समाज-सेवा के प्रति उनका भाव देखो, निःसंदेह श्रेष्ठ है। हमलोगों ने आज तक अपनी औरतों को आजादी नहीं दी, यह सोचकर कि रसोई और घर कौन देखेगा। हम शोषण कर रहे हैं महिलाओं का, पर उन लोगों ने अपनी महिलाओं को स्वतंत्र किया है। औरत तुम्हारा घर चलाने के लिए नहीं बनी है, उसे भी स्वतंत्र रहने का पूरा अधिकार है। स्त्री की उतनी ही पहचान है जितनी पुरुष की। दोनों एक समान हैं। यदि दोनों समान हैं तो उसे स्वतंत्र भी होना चाहिए, उसके लिए समान अधिकार और कानून होने चाहिए। हिन्दुस्तान में ऐसा कहाँ है? कहीं नहीं है। गाँवों में जाओ, सब पंडित और पुरोहित लोग बैठे हैं, और घर के अंदर अपनी औरतों से नौकरानी की तरह काम कराते हैं। पुरुषों को समझ में ही नहीं आता। ऐसे में शाकाहार से कोई परिवर्तन होगा क्या? मनुष्य की वृत्ति का उसके भोजन से उतना सम्बंध नहीं होता, जितना उसके विचार, उसकी संगत से होता है। उसका धर्म ऊँचा होना चाहिए। अंध-विश्वास वाला धर्म नहीं होना चाहिए, बल्कि धर्म में स्पष्टता होनी चाहिए।

अगर तुम हमसे पूछते हो कि कौन-सा भोजन बेहतर है तो हम हमेशा कहेंगे कि शाकाहारी भोजन अच्छा है, खासकर भारत के लिए क्योंकि हमारा देश गरम है। ठण्ढी भी होती है तो कितने दिन होती है? एक-डेढ़ महीना होती है, बाकी समय तो तापमान 30-35 डिग्री रहता है। इसकी वजह से माँस खाने में एक और समस्या है, यह सड़ता जल्दी है। ऊपर से दिखता नहीं है, लेकिन बहुत जल्दी सड़ता है। उससे बीमारी हो जाती है, जिसे फूड पॉइज़निंग या भोजन विषाक्तता कहते हैं। भारत में जितने फूड पॉइज़निंग के केस होते हैं वे ज्यादातर मांसाहार के कारण होते हैं। हवाई जहाज में तो मछली परोसते नहीं हैं, अनुमति ही नहीं है। मछली बहुत तेजी से सड़ती है। दुनिया में कहीं पर भी हवाई जहाज में मछली परोसने की अनुमति नहीं है, क्योंकि इसमें फूड पॉइज़निंग की सौ प्रतिशत सम्भावना रहती है। कितने ही हवाई जहाजों में पायलट को फूड पॉइज़निंग हुआ। तब कौन हवाई जहाज चलाएगा? समस्या आ जाती है। इसलिए दुनिया की किसी भी एयर लाइन में मछली परोसने की अनुमति नहीं है।

रही बात यूरोपीयन देशों की, वहाँ तो इतनी ठण्ढ रहती है कि वहाँ तो दूध फटता ही नहीं है, उसको फ्रिज में रखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। वे लोग मांस

खाते हैं, फिर उसके दुर्गुण को समाप्त करने के लिए शराब पीते हैं। वहाँ शराब की खपत बहुत ज्यादा है, वहाँ एक दिन में जितनी शराब की खपत होती है, उतनी दुनिया में साल भर में भी नहीं होती होगी। यह आज से नहीं, शताब्दियों से चल रहा है। ग्रीनलैंड और अलास्का जैसे स्थानों में एस्किमो लोग सील मछली को रायफल से मारकर लाते हैं और छत में डाल देते हैं। उनका छत तो 'डीप-फ्रीज़' है। जब जरूरत पड़ती है छूरे से काटकर लाते हैं और धुएँ के ऊपर पकाकर खाते हैं। एस्किमो लोगों का मकान पत्थर का थोड़े ही होता है, वह बर्फ का बना होता है। उनके मकान के खम्भे बर्फ के होते हैं, पत्थर जैसे कड़े होते हैं। ऐसे स्थानों में मांस का कोई बुरा असर होगा, हम नहीं मानते।

मांस का जो बुरा असर होता है, वह गरम देशों में होता है। मेडिटेरेनियन, ट्रॉपिकल और सब-ट्रॉपिकल देशों में ज्यादा होता है, जहाँ सड़ने की सम्भावना ज्यादा होती है। ठण्डे देशों में मांस सड़ता नहीं है, वहाँ तो छत पर पूरी सील मछली तीन-चार साल के लिए डाल देते हैं। जैसे तुम लोग 'डीप-फ्रीज़' में कुछ खाने की चीज डाल देते हो, वहाँ का तो पूरा वातावरण ही 'डीप-फ्रीज़' की तरह होता है। यहाँ भारत में सबेरे दाल बनाओ तो शाम को उसमें बास आ जाती है। उसे ज्यादा चलाना है तो फ्रिज में रखना पड़ेगा। हमारे यहाँ तो गरीब लोग हैं, ज्यादा-से-ज्यादा पांच-सात प्रतिशत के यहाँ फ्रिज होगा। ऐसी असुरक्षित परिस्थिति में मांसाहार करना खतरनाक है।

हमारी परिस्थितियाँ असुरक्षित हैं जबकि विदेशों के कसाईखानों में मांस काटा जाता है तो पहले जानवरों को इंजेक्शन दिया जाता है ताकि उनका मांस सड़े नहीं। फिर जब मांस कसाईखाने से बाहर आता है तो उनकी सारी गाड़ियों में 'डीप-फ्रीज़'होता है और मांस को हाथ से छूते नहीं हैं। दुकानों में भी पूरा रेफ्रिजरेशन होता है, वहाँ मांस टंगा रहता है। वहाँ बाँटने वाले भी हमेशा उसका निरीक्षण करते रहते हैं। फ्रान्स में हम जहाँ रहते थे, वहाँ बगल में कसाईखाना था। हमने कई जगह के कसाईखाने देखे हैं। वैसे हमने पढ़ा भी है, हमारा तो विषय था। इसलिए हम मानते हैं कि उनका मांस रखने का तरीका हमारे हिन्दुस्तान से अच्छा है। हिन्दुस्तान के लोगों को मांसाहार नहीं करना चाहिए। यहाँ का सर्वोत्तम भोजन है शाकाहार, दूध, दही, मेवे आदि, मगर ये सबके लिए उपलब्ध नहीं हैं। गाँव का आदमी यह सब खा सकता है आज?

प्याज भी मांसाहार में आता है क्या?

नहीं, प्याज मांसाहार में नहीं आता है। मांसाहार का तात्पर्य किसी जानवर के शरीर के मांस से है। अब जहाँ तक जीवन का सवाल है, यह तो सबमें है, लौकी में है, पालक में है, कंद-मूल, फल-फूल में है। प्याज को कंद कहते हैं। लहसून, आलू, मूली, गाजर, मिश्रीकंद, ये सब कंद हैं, जमीन के नीचे निकलते हैं। कंद माने गोल, मूल माने लंबा, कंद-मूल जमीन के नीचे होते हैं, फल-फूल ऊपर होते हैं। फल-फूल को अधिक मात्रा में सूर्य-किरणें मिलती हैं, वे ज्यादा शुद्ध होते हैं। कंद-मूल में अधिक मात्रा में माइक्रोब या जीवाणु होते हैं, इसलिए जैन लोग जमीन से नीचे की चीजें नहीं खाते हैं। जीवाणु का मतलब छोटे जीव, ये जीवन के सूक्ष्मतम कण होते हैं।

प्याज एक औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और करना चाहिए, उसमें गंधक होता है, पर साथ ही उसमें दुर्गुण भी है। उसी तरह से लहसुन अच्छी चीज है, मगर दुर्गुण भी हैं उसमें। प्याज, लहसुन, मिर्ची, लौंग, काली मिर्च, ये खाद्य भोज्य नहीं हैं। ये औषधियाँ हैं, सब्जियाँ नहीं, इन्हें सब्जी में डाला जाता है। कुछ बीमारियों में प्याज मना करते हैं, लेकिन प्याज खराब चीज नहीं है।

धार्मिक लोग प्याज क्यों नहीं खाते हैं?

देखिये, हमारे धर्म के बहुत स्रोत हैं। यहाँ धर्म बहुत तरफ से आया है। अफ्रीका से लोग अपना धर्म लाये, सुदूर पूर्व से लाये, उत्तर-पश्चिम से लाये। जो जहाँ से आया अपना धर्म लेकर आया, अपने रीति-रिवाजों और विश्वासों को लेकर आया। हिन्दुस्तान एक नस्ल तो है नहीं, अलग-अलग नस्लें हैं। आसाम के लोग पूर्व की तरफ से आये, पंजाब के लोग उत्तर-पश्चिम से आये। सब जगह से यहाँ लोग आए तो अपना पूजा-पाठ, खान-पान साथ लेकर आए। भारत के लोगों ने सोचा कि जब बाहर से लोग आ रहे हैं तो उनके रीति-रिवाजों में हम हस्तक्षेप क्यों करें। तुम आसामी हो, देवघर में आते हो, मछली खाते हो, हम नहीं खाते, तो खाने दो, आसामी है। आसाम का रीति-रिवाज आसामी का होगा, हमको उससे क्या मतलब?

हिन्दुस्तान की यही विशेषता है कि हमने किसी के रीति-रिवाजों के साथ हस्तक्षेप नहीं किया, न मुसलमानों के साथ किया, न ईसाइयों के साथ, न वैष्णवों के साथ, न शैवों के साथ, न शाक्तों के साथ, किसी के साथ नहीं। हमें सबको

संरक्षण देना है, क्योंकि मुल्क किसी का नहीं है। यह मुल्क आसामियों का नहीं है, पंजाबियों, बंगालियों, मद्रासियों या उड़िया लोगों का नहीं है, यह मुल्क हिन्दुस्तानियों का है, जो यहाँ रहते हैं, जिनकी यह मातृभूमि है। जिनके पूर्वज यहाँ रहते आये हैं यह उनका मुल्क है। तुम अमावस्या को यज्ञ करते हो या पूर्णमासी को, शादी के वक्त तुम्हारी स्त्री बायीं तरफ बैठती है कि दाहिनी तरफ, तुम्हारी स्त्री सिंदूर लगाती है कि नहीं, तुम्हारी स्त्री साड़ी पहनती है या सलवार-कमीज या जीन्स, इस सबसे हमको क्या मतलब है? दूसरों के रीति-रिवाजों के साथ, उनके धर्म के साथ किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

रीति-रिवाजों के साथ हस्तक्षेप केवल जनमत के माध्यम से होना चाहिए। जैसे यहाँ विधवाओं को पति की चिता पर जला देते थे, पर वह बंद किया गया। उनको घर से अलग कर देते थे, अमंगल बोलते थे, पर धीरे-धीरे जन-चेतना जागी, जनमत जागा, अब उनकी भी एक सामाजिक हैसियत बन रही है। यहाँ जो भी होगा जनमत से होगा। अगर एक पंजाबी कहे कि देश सिर्फ मेरा है, कोई आसामी कहे है कि देश हमारा है तो क्या वास्तव में देश उनका हो गया? नहीं, यह देश किसी का नहीं है। जैसे आप आसामी हो, बरौनी रिफाइनरी में काम करते हो तो क्या वह रिफाइनरी आसामियों की हो गयी? नहीं, वह तो एक संस्थान है, कोई भी आकर उसे चला सकता है। उसी तरह से यह देश सबका है। यह इस देश का बहुत पहले से सिद्धान्त रहा है।

बीच-बीच में दूसरे किस्म के लोग भी आए हैं। मुसलमान आये, सबको मुसलमान बनाने की कोशिश की, ईसाई आये, सबको ईसाई बनाने की कोशिश की। विरोध हुआ उसका, क्योंकि यहाँ दूसरों के धर्म या रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने की परम्परा नहीं है। लेकिन यूरोप में चले जाओ, वहाँ तुमको मन्दिर नहीं मिलेगा, वे बनने नहीं देते। वे अखण्ड, एकरूपी समाज चाहते हैं। फ्रांस जाओ तो वहाँ सब जगह केवल फ्रेन्च ही पढ़ाई जाती है, कोई दूसरी भाषा पढ़ाई नहीं जाती। उनके यहाँ जितनी भी जनजातियाँ हैं उनकी भाषा नहीं पढ़ाते, उन्हें दबाते हैं। हम लोगों के यहाँ ऐसा नहीं है। आसामी भी पढ़ायेंगे, बंगाली भी पढ़ायेंगे, जहाँ जो ठीक है। हमारे संविधान में सभी भाषाओं को मान्यता दी गई है। इसलिए आसामियों का जो भोजन है वह आसामियों के लिए ठीक है। अगर तुम मछली खाना चाहते हो तो चलेगा।

इसका मतलब आसाम में हम मछली खा सकते हैं, लेकिन बिहार में आकर हमें मछली नहीं खानी चाहिए?

ऐसी बात नहीं है। हर आदमी को खुद अपनी आत्मा से प्रश्न करना चाहिए। इसका जवाब हर आदमी को समझदारी से स्वयं सोचना चाहिए। हमसे पूछोगे तो हम एक जवाब देंगे, उनसे पूछोगे तो वे दूसरा जवाब देंगे। हर आदमी अलग-अलग जवाब देगा। हरेक आदमी को अपनी आत्मा से पूछना चाहिए कि हम गरम देश में आए हैं, हमें मांसाहार करना चाहिए कि नहीं, हम ठण्डे देश में हैं, हमको सुरापान करना चाहिए कि नहीं। हर एक का रीति-रिवाज, भोजन, सभ्यता, संस्कृति अलग है।

अभी हिन्दुस्तान की ही बात बोल रहा हूँ, पर यहाँ एक बड़ी विचित्रता है। आसामी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, मराठी, मद्रासी – सब अलग-अलग होने पर भी उनमें एक बात समान है, सबने वैदिक रीतियों को स्वीकार किया। वैदिक का मतलब जो वेदों में लिखा है। वेद हमारे मूल ग्रंथ हैं, परन्तु साथ ही वेदों ने कहा, हर जाति की अपनी लोक-रीति होती है, उसको रहने दो। इसलिए आसाम में जो शादी होगी, वैदिक रीति से होगी, मगर उसमें आसाम की लोक-रीति भी रहेगी। वैष्णवों में शादी होगी तो वैदिक-रीति से होगी, मगर उनकी अपनी लोक-रीति भी रहेगी। यहाँ शादी में ताल-मखाना गिराते हैं, तुम्हारे यहाँ शायद चावल गिराते हैं, यह सब लोक-रीति में आता हैं। वेदों में नहीं लिखा है ऐसा।

हम लोगों का धर्म वैदिक-धर्म है और हमारी जो रीतियाँ हैं, वे लोक-रीतियाँ हैं। हर कौम का अपना-अपना तरीका है। हमारे यहाँ पूर्णमासी को शुभ कर्म होते हैं, जबकि दक्षिण-भारत में अमावस्या को मंगल कर्म होते हैं। उत्तर-भारत में ममेरा-फुफेरा भाई-बहनों में शादी नहीं हो सकती, दक्षिण-भारत में ममेरा-फुफेरा में सम्बन्ध हो जाता है। इसका मतलब जो आदमी जिस सभ्यता से आया, उसको वैसा ही रहने दो। अगर उसकी रीति गलत है, तो दूसरे को उसको सही करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। वह जाति स्वयं विचार करे और उसको ठीक करे। अगर विधवाओं का पुनर्विवाह होना है तो हम क्यों बोलेंगे? उस गाँव के, उस कौम के लोग खुद निर्णय करें कि पुनर्विवाह होना है कि नहीं होना। समाज सुधारक की जरूरत नहीं है, समाज खुद अपना सुधार करे।

एक बार मैं गाड़ी से गाँव गया था, रास्ते में एक महिला घूंघट डाल कर सड़क पार कर रही थी। यदि मैं तेज रफ्तार में होता तो उसको धक्का लग जाता। कितना खतरा है! हिन्दू समाज में बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है न?

इसे कहते हैं रूढ़िग्रस्त समाज, जो बदलता नहीं है। हमारे समाज में घूँघट लगाने की कभी प्रथा नहीं रही है। वैदिक परम्परा में घूँघट की अवधारणा ही नहीं है। घूंघट लगाने की प्रथा मुसलमानों के समय आई। उनके यहाँ बुरका प्रथा थी, तो उन्होंने यहाँ भी बुरका पहनाया। बुरका नहीं पहना तो पल्ला सिर पर कर लिया। उनके यहाँ बुरके का मुख्य कारण है कि अरब क्षेत्र में तेज आंधियाँ चलती हैं। बुरका नहीं लगाओगे तो रेत तुम्हारे चेहेरे में लगेगी और वह रेत 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम होकर आती है, चिंगारी की तरह। चेहरे पर दाग आ जाता है। वह रेत बहुत गरम होती है, उसमें थोड़ी दूर भी नंगे पैर नहीं चल सकते। इसलिए उन्होंने औरतों के लिए बुरका प्रथा कर दी, उनको गरम रेत से बचाने के लिए। उन लोगों ने उस प्रथा को यहाँ आकर भी लगाना शुरू किया। नासमझी में सोचा कि यहाँ भी बुरका लगाना जरूरी है। अब बुरके का मतलब हो गया औरत के चेहरे को छिपाना। औरत के चेहरे को छिपाने से क्या होगा? उसको टी.बी. होगा, एनीमिया होगा, कई तरह की बीमारियाँ होंगी।

ध्यान की अवस्था में किस तरह का आहार लेना चाहिए?

ये जोखिम भरे अभ्यास हम अब नहीं सिखाते हैं। हर आदमी को अपना एक व्यक्तिगत गुरु बनाना चाहिए और उसी से ध्यान सीखना चाहिए। व्यक्तिगत गुरु वह है जो शिष्य के लिए हमेशा उपलब्ध हो, जो हमेशा मार्गदर्शन कर सके। जैसे स्कूल मास्टर होता है, रोज तुमको बतलाता है कि तुमको क्या करना चाहिए। हम तो आज मिल गये, फिर पता नहीं कभी मिलेंगे कि नहीं। इसलिए हम ध्यान जैसे अभ्यास सिखाते नहीं हैं। गुरु का काम है शिष्य के साथ हमेशा सम्पर्क में रहना। हमारे साथ पहली बात तो यह कि हम उपलब्ध नहीं हैं, और दूसरी चीज, हमको गुरु बनना अच्छा नहीं लगता है। साधी-सी बात है।

आपको इतनी निराशा किसलिए हो गई है?

निराशा? हमें निराशा नहीं है। हमें संस्था का जो दायित्व दिया गया उसे हमने अच्छे से पूरा किया। आपको अगर किसी संस्था का अध्यक्ष बनाएँगे तो आप नहीं बनियेगा? हमको अध्यक्ष बना दिया, हमने मन लगाकर काम किया। जब रिटायरमेन्ट हुआ तो रिटायर्ड हो गये, उसमें क्या है? हमको अब इन सब कर्मों में रुचि नहीं है। मगर हाँ, जब तक हमारी ड्यूटी थी, हमने वे सारे कर्म किये।

– 9 मार्च 1998, रिखियापीठ





अध्याय 9

एक बात याद रखनी चाहिए, मनुष्य हाथ-पैर बहुत मारता है, मगर उसे मिलेगा वही जो उसके भाग्य में होगा। पालक, कितना भी बदलना चाहे, वह पालक ही रहेगी। मनुष्य के साथ भी ऐसा ही है। हर एक का अपना भाग्य होता है, व्यक्ति थोड़ा भी इधर-से-उधर नहीं कर सकता है, चाहे कितना ही पुरुषार्थ करे। इसलिये मनुष्य को सांसारिक चिन्तन ज्यादा नहीं करना चाहिये। पैसे के बारे में, मोह-माया के बारे में ज्यादा चिन्तन नहीं करना चाहिये, मगर यह होता है। इसलिये इससे निपटने के लिये खाली समय में अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिये, संत-महात्माओं की किताबें पढ़नी चाहिये, जिसको स्वाध्याय कहते हैं। एक-दो घण्टा समय निकाल लिया और चाहे रामायण हो या गीता हो, बहुत-सी ऐसी आध्यात्मिक पुस्तकें हैं जिनका अध्ययन कर सकते हो। मेरे कहने का मतलब यही कि मन का स्तर ऊँचा रहना चाहिए, मन योग में स्थित रहना चाहिए। पर वास्तव में हमलोगों के मन का स्तर क्या रहता है? हमेशा चिन्ता लगी रहती है, बेटी की शादी करनी है, लड़का अच्छा मिलेगा या नहीं, क्या करेंगे, कैसे करेंगे, यही सब न मन में लगा रहता है।

स्वामीजी, मन स्वस्थ नहीं रहता।

मन स्वस्थ होगा भी नहीं। आप कहते हैं मन स्वस्थ होगा तो तन स्वस्थ होगा, मगर हम कहते हैं कि सबसे पहली चीज है मनुष्य को अपनी पूरी गाड़ी की ओवरहॉलिंग करनी पड़ेगी। जैसे आप अपनी गाड़ी को गैरेज में भेजते हैं, वहाँ उसकी पूरी ओवरहॉलिंग होती है, अगर नहीं करेंगे तो गाड़ी ठीक से

नहीं चलेगी। इसी तरह से अगर आपको पता चले शरीर में क्लेश है, मन में चिन्ता है तब आपको जानना चाहिये कि आपकी गाड़ी में खराबी है, उसकी ओवरहॉलिंग होनी चाहिये। इसके लिए संत-महात्माओं ने जो बताया है, संतों का जो ज्ञान भरा साहित्य है, उसे पढ़ना चाहिए। जिस साहित्य में संसार की बातें कम, ज्ञान की बातें अधिक हों, उसको आध्यात्मिक साहित्य कहते हैं, और जिसमें ज्ञान की बातें कम, संसार की बातें अधिक हों, उसको भौतिक साहित्य कहते हैं। आध्यात्मिक साहित्य पढ़ने से क्या होगा? आपका मन बदलेगा, मन पर सकारात्मक असर पड़ेगा।

दूसरी चीज, आसन-प्राणायाम कीजिये, शाम को आधा घण्टा टहलिये, समय मिले और भजन में मन लगे तो किसी मन्दिर में बैठकर भजन कीजिये। रोग को दूर करने के लिये दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

संसार में एक बहुत बड़ी शक्ति है जिसको हमने भगवान नाम दिया है। उसका वैसे कोई नाम नहीं है, यह हमने एक नाम दे दिया क-ख-ग, और वह शक्ति तुम्हारे अन्दर है, हमारे अन्दर है, फिर भी हम मन्दिर जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि मन्दिर मत जाओ, मगर वह केवल मन्दिर में ही है, तुम्हारे अन्दर नहीं है, तुम्हारे घर में नहीं है, ऐसी बात नहीं है। वह घट-घट वासी है। एक और बात याद रखो, हर मनुष्य अपना कर्म भोगता है। सबका कर्म अलग-अलग है। तुम्हारा कर्म तुम्हारी स्त्री के कर्म से अलग है, तुम्हारी माँ का अलग है, तुम्हारे पिताजी का अलग है। कर्म सब को भोगना पड़ता है। रामकृष्ण परमहंस इतने बड़े महात्मा थे, उन्होंने भी कर्म भोगा। स्वामी विवेकानन्द जी इतने बड़े संत थे, उनको भी कर्म भोगना पड़ा। राम जी भगवान के अवतार थे, उन्होंने दुःख क्यों भोगा? जो भी मनुष्य शरीर धारण करके आया है, उसके ऊपर कर्मों का एक कानून लागू हो जाता है।

इन चीजों पर थोड़ा सोचो। भले ही संसार में रहो, पैसा कमाओ, मगर याद रखो यह जीवन का लक्ष्य नहीं है। यह तो करना पड़ेगा, मजबूरी है। खाना-पीना, पैसा कमाना, नौकरी करना, बच्चा पैदा करना –यह तो मजबूरी है, इसलिये थोड़े ही पैदा हुए हैं। यहाँ से तुम कलकत्ते जा रहे हो, ट्रेन में कुछ खाओगे, यह तुम्हारी मजबूरी है जबकि लक्ष्य तुम्हारा कलकत्ता है। इसी तरह मनुष्य के जीवन का लक्ष्य केवल एक ही है – भगवान की स्मृति। मनुष्य को भगवान की याद हमेशा बनी रहे, जैसे प्रेमी को प्रेमिका की याद बनी रहती

है। मनुष्य जीवन का प्रयोजन केवल यही है, नौकरी-चाकरी तो मजबूरी है। जब संसार में आए हो तो दो रोटी तो कमानी पड़ेगी, घर तो चलाना पड़ेगा। काम, क्रोध, लोभ इत्यादि तो हैं ही, बच्चे और स्त्री तो हैं ही, तब क्या करेंगे, सब भूखे मरेंगे क्या? सांसारिकता तो निभानी पड़ती है, मगर वह जीवन का लक्ष्य नहीं है। कहावत भी है न – *आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।* ऐसे ज्ञान की बहुत जरूरत है और वह ज्ञान अपने अन्दर पैदा होना चाहिये।

स्वामीजी, जब जप करते हैं या ध्यान करते हैं, उस समय मन कहीं और लगा रहता है, उसके लिये क्या करें?

उसके लिये कुछ नहीं कर सकते, वह तुम्हारे हाथ में नहीं है। मन को वश में करना मनुष्य के हाथ में नहीं। तुम ध्यान करते जाओ, तुम अपना काम करो, मन अपना काम करेगा। जैसे माँ खाना बनाती है तो बच्चे पर नजर रखती है, वह भागते रहता है, उसी तरह मन भागते ही रहेगा, मन को वश में करना संसार का सबसे कठिन काम है। जिसने मन को वश में कर लिया वह मनुष्य नहीं, भगवान है। जिसने मन को पकड़ लिया वह आदमी नहीं, वह तो साक्षात् ईश्वर का रूप है।

इसलिये ध्यान के वक्त अगर तुम्हारा मन चंचल भी रहता है तो भी अपना अभ्यास मत छोड़ो। गीता पढ़ रहे हो तो गीता पढ़ो, जप करते हो तो जप करो, पाठ करते हो तो पाठ करो, कीर्तन करते हो तो कीर्तन करो, पूजा करते हो तो पूजा करो, यह नहीं सोचना कि मेरा मन तो मेरे साथ है ही नहीं, कोई फायदा नहीं। फायदा होगा, क्योंकि भगवान के पास पहुँचने के लिए दो ही रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह जो तुम कह रहे हो, योग का और दूसरा रास्ता है विश्वास का। मन को एकाग्र करके एक बिन्दु पर लाना एक मार्ग है, और दूसरा मार्ग है विश्वास याने भक्ति। एक मार्ग को हमलोग कहते हैं पिप्पिलिका मार्ग, जिस पर चींटी की तरह धीरे-धीरे चलते हैं, और दूसरा है विहंगम मार्ग, जिसमें चिड़िया की तरह उड़कर जाते हैं। विहंगम मार्ग उन लोगों के लिये है जो त्याग में, तप में निपुण हो सकते हैं, जिनके रास्ते में मोह-माया नहीं पड़ती, जिनको स्त्री, पुत्र, बहू से कोई मतलब नहीं है। सब को फेंककर चले जाते हैं, जैसे भगवान बुद्ध या शुकदेव। सब कुछ छोड़ दिया, जिसको जीना है, जिए, जिसे मरना है, मरे। ऐसा त्याग पूर्वजन्म का कर्म होता है, यह बहुत

लोगों में नहीं होता, किसी विरले में होता है बस। ऐसा व्यक्ति योग मार्ग का अधिकारी होता है।

योग मार्ग में आप जैसे व्यक्ति जाना चाहेंगे तो मन वश में नहीं आयेगा, सीधी बात बोलता हूँ, पर हाँ, वह थोड़ा-सा अनुशासन जरूर लाता है। परन्तु असली रास्ता है भक्ति का, विश्वास का। भक्ति भगवान के प्रति एक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए होती है। जैसे पत्नी के साथ एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, या पिता के साथ पुत्र का सम्बन्ध होता है, या नौकर के साथ तुम्हारा एक सम्बन्ध है, या दोस्त के साथ तुम्हारा एक रिश्ता है, वैसे भगवान के साथ अपना एक सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है, जैसे वे तुम्हारे पिता हैं या माँ हैं या भाई हैं।

तुम राम को पूजो या देवी को, किसी को भी पूजो, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम पेड़ा खाओ या रसगुल्ला या बर्फी, सब दूध का बना है, क्या फर्क पड़ता है? यही बात भक्ति पर लागू होती है। भक्ति का मतलब होता है कि तुम भगवान के साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लो। भगवान का कोई भी रूप हो, साकार या निराकार, यह सब मन का खेल है, अन्दर तो सब एक ही चीज है। चाहे तुम पंखा चलाओ, चाहे फ्रिज चलाओ, चाहे हीटर चलाओ, अन्दर में तो एक ही बिजली है। इसलिये अपने मन को ज्यादा भ्रमित नहीं करना चाहिये।

भगवान के साथ जो सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, उसमें सबसे उत्तम सम्बन्ध है कि वही सब कुछ करने वाला है और मैं उनके हाथ का उपकरण हूँ, माध्यम हूँ। वे ही सब कुछ मेरे द्वारा कराते हैं। पुरुषार्थ भी मेरे द्वारा कराते हैं और अगर आलस्य है तो वह भी वही कराते हैं। मैं महाबदमाश आदमी हूँ तो वे मेरे से बदमाशी करवाते हैं। माने तुम्हारे जीवन की जो सारी-की-सारी अभिव्यक्ति है, वह सब उसकी माया है। अपनी तरफ से असंतुष्ट नहीं होना चाहिये कि मैं अच्छा नहीं हूँ। तुम जो हो, ठीक हो क्योंकि उसने तुम्हें वैसा बनाया है। अब जैसे मूर्तिकार ने मूर्ति बनाते समय उसके पैर तो बना दिये, पर हाथ नहीं बनाए तो मूर्ति सोचती है, अरे मेरे हाथ तो बनाए नहीं। जब हाथ-पैर सब कुछ बना दिये तो मूर्ति कहती है, देखो न, मेरी आँख ही नहीं है। हमेशा असंतुष्ट।

मनुष्य को उस मूर्ति की तरह अपने जीवन से असंतुष्ट नहीं होना चाहिये। तब मन शांत होता है। इसका मतलब यह हुआ कि तुम इस बात को मानकर



चलो कि मेरे जीवन का सूत्रधार भगवान है, मेरे मन का प्रेरक भगवान है, मेरी नियति का निर्देशन भी भगवान ही कर रहा है। मेरे मन में अच्छे-बुरे विचार जो आते हैं, वे भी भगवान ही कर रहे हैं। दया, सुख, दुःख, करुणा, सेवा – यह सब भगवान की लीला समझ कर करो, मन में केवल प्रवृत्ति की इच्छा रखकर मत करो।

जीवन में सब सुखमय हो, सब शुभ हो, इस इच्छा को रखकर नहीं चलना चाहिये क्योंकि ऐसा सम्भव नहीं है। अगर सम्भव भी हो तो परेशानी ही आयेगी। कितने धनवानों को हमने देखा है, बड़े दुःखी हैं, नींद ही नहीं आती है। अपने को उस सुख से, उस पैसे से, उस बड़े बंगले और मोटर-गाड़ी से,

उस सुन्दर बीवी से क्या करना, जब नींद ही न आती हो और गोली खाकर सोना पड़ता हो, खाना ही नहीं पचता हो और हाजमे की दवाई लेनी पड़ती हो, डॉक्टरों को देखना पड़ता हो। यह भी तो दुःख है न? आखिर दुःख किसको कहते हैं और सुख किसको? कोई बड़ा आदमी बन गया, बंगला-बीवी हो गया, पैसा हो गया, क्या यह कोई सुख है? यदि सुख है तो रोते काहे को हो?

असल में इतना जानना है कि सुख-दुःख भगवान ने सबको दिया है। घर में कोई पैदा भी होता है और मरता भी है, कोई बात मानता है तो कोई बात नहीं भी मानता है, प्रेम भी होगा और झगड़ा भी होगा, नहीं होता है क्या? सब के घरों में होता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है। अगर केवल दिन हो, रात हो ही नहीं तो आदमी परेशान हो जायेगा। भगवान श्रीराम को देखो, राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिल गया, पैदल चले जंगल में और फिर औरत का किसी ने अपहरण कर लिया। उसे वापस जीत कर आए तो बदनामी हो गई और उसे छोड़ना पड़ा। एक महापुरुष के जीवन के दुःख का हाल देखिये, उन्होंने अपने ऊपर ये आपदाएँ क्यों लाईं जबकि वे अवतार थे? श्रीकृष्ण को देखिये, पैदा होने से पहले ही कंस की हिट-लिस्ट में थे और जिन्दगी भर भागते रहे, मथुरा से द्वारिका भागना पड़ा। मरने के पहले उनके सारे यादव कुल का नाश हो गया था।

दुःख-निराशा-असफलता और सुख-आशा-सफलता, ये हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं। घर में कभी बच्चा जन्मता है, कभी आदमी मरता भी है। मगर जब कोई मरता है तब उसके दुःख का असर ज्यादा होता है। अगर तुम्हारे घर में आज कोई बच्चा जन्मे, और आज ही कोई मर जाए तो रोओगे या हँसोगे? आदमी जरूर रोयेगा।

इसलिये जीवन को नये तरीके से देखो। भगवान ने जो कपड़ा दिया है, धन दिया है, स्वीकारो। जीवन को आध्यात्मिक मार्ग में ही चलाना, उससे क्या होगा? सुख-दुःख कम होगा, और यदि वह कम नहीं हुआ तो दुःख का प्रभाव जरूर कम होगा। रामकृष्ण परमहंस को रोग था, पर रोग का प्रभाव नहीं था, क्योंकि वह उनके मन का स्वभाव ही नहीं था। दुःख हो, लेकिन उस दुःख का प्रभाव मन पर नहीं पड़े तो दुःख पचास प्रतिशत कम हो जाता है।

– 10 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 10

हमारे शास्त्रों में वर्णित ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्र वास्तव में क्या हैं?

पहले के समय में ब्रह्मास्त्र आदि होते थे, आज के जमाने में वे मिसाइल्स होते हैं। शिव जी का बनाया हुआ पाशुपतास्त्र, विष्णु जी का बनाया हुआ नारायणास्त्र और ब्रह्मा जी का बनाया हुआ ब्रह्मास्त्र – ये बड़े अस्त्र माने जाते हैं। ब्रह्मास्त्र सबको नहीं दिया जाता है और उसका उपयोग भी नहीं किया जाता है। वह केवल डराने के लिये दिया जाता है। जैसे एटम-बम का प्रयोग नहीं होता है। हम तुमको डराते हैं, तुम हमको डराते हो। हम कहते हैं, 'खबरदार! नहीं तो तुम्हारा देश नष्ट कर देंगे,' मगर अणु-बम छोड़ते नहीं हैं। अगर एटम-बम छोड़ने लग जायें तो सारी दुनिया दो मिनट में चौपट हो जायेगी। इसी तरह से ब्रह्मास्त्र का भी उपयोग नहीं होता है। जब लक्ष्मण जी ब्रह्मास्त्र का उपयोग करने जा रहे थे तो राम जी ने उनको रोक दिया था। ब्रह्मास्त्र का उपयोग अगर कोई करे तो दूसरे आदमी को अपना अस्त्र हाथ से छोड़ देना चाहिये। मेघनाद ने जब ब्रह्मास्त्र छोड़ा तो लक्ष्मण जी ने नमस्कार करके अपना अस्त्र छोड़ दिया।

पहले के जमाने में लोगों का मन बहुत मजबूत था। वे मन्त्र-सिद्ध होते थे, मन्त्र से अस्त्र का आवाहन करते थे। आजकल लोगों का दिमाग कमजोर हो गया है और वे मन्त्र-सिद्धि भी नहीं कर पाते हैं, बहुत-सी बाधाएँ हैं। मन्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र का आवाहन आज कोई नहीं कर सकता। इसलिये इन लोगों को एटम-बम इत्यादि बनाना पड़ता है। पहले के जमाने में मन्त्र के द्वारा अस्त्र का आवाहन किया जाता था, मिसाइल की तरह नहीं रखा जाता था। धनुष

के बिना सन्धान हो सकता था, धनुष की भी जरूरत नहीं पड़ती थी, जैसे राम जी ने एक घास के तिनके को मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इन्द्र के पुत्र, जयन्त पर छोड़ दिया और फिर जयन्त भागते फिरा।

कहते हैं कि मन्त्र के द्वारा दूसरों को वश में किया जा सकता है, यह सत्य है क्या?

हो सकता है, मानते हैं, लेकिन आज अपनी मानसिक स्थिति को देखिये। आप जानते हैं कि खैनी ठीक नहीं है, पर नहीं छूटती है। खैनी या चाय जैसी छोटी-छोटी चीजें हैं, जानते हैं कि खराब है, फिर भी नहीं छूटती हैं। मन इतना कमजोर है। मन्त्र-सिद्धि के लिये मन का एकाग्र होना आवश्यक है। उस समय दिमाग में दूसरी चीज आनी नहीं चाहिये। मन जब इतना एकाग्र हो जाये तो मन्त्र-सिद्धि प्राप्त कर सकते हो। लेकिन मन को एकाग्र करना बहुत मुश्किल है। क्यों मुश्किल है? इसलिये कि शरीर मन पर आश्रित है। मन को एकाग्र करोगे तो तुम्हारे शरीर पर इसका असर जरूर पड़ेगा। हृदय पर असर पड़ेगा, रक्तचाप पर असर पड़ेगा, दिमाग पर असर पड़ेगा। विषाद में चले जाओगे। कितने साधु हमारे जान-पहचान के हैं जिनको विषाद हो गया।

मैं एक बार मध्य-प्रदेश में चातुर्मास कर रहा था। एक सेठ जी के यहाँ रहता था जिनका रसोईया एक बार का खाना लेकर मेरे पास आता था। उसे मेरे से बड़ी प्रेरणा मिली, सब कुछ छोड़कर चला गया। छः साल के बाद आया तो समझो कि एकदम खाक हो गया था। कोई भी चीज उसको समझ में नहीं आती थी। ऐसा क्यों हुआ? उसने कोई साधना की होगी। अब साधना करने के लिये शरीर को भी प्रशिक्षण देना बहुत जरूरी होता है। शरीर और मन शुद्ध होना चाहिये। फिर तीसरी बात है डी.एन.ए. फैक्टर। आजकल के लोगों की क्वालिटी बहुत निम्न स्तर की है। जैसे आप सस्ती मशीन बनाते हो तो निम्न क्वालिटी की होती है, उसी तरह से हमलोगों के बच्चे सब निम्न क्वालिटी के हैं। यह सब डी.एन.ए. फैक्टर के अन्तर्गत आता है। बच्चा पैदा होने के बाद भी माता-पिता का व्यवहार, भोजन आदि उसे प्रभावित करता है। माता-पिता एक-दूसरे पर क्रोध करें और चाहें कि उनका बच्चा एकदम होनहार हो, यह नहीं हो सकता। इस देश में क्या होते रहा है? कई सौ सालों से लड़ाइयाँ हो रही हैं, आक्रमण होते हैं, स्त्रियों का अपहरण होता है, बलात्कार

होता है, सन्तानों का वर्णसंकर होता है। हजारों-लाखों की संख्या में हुआ है, अपनी आँखों के सामने तो देखते ही हो कि क्या हालत होती है।

हम अच्छे आदमी हैं और हमारी सन्तान अच्छी होगी, यह कोई जरूरी तो नहीं है, क्योंकि हम भागे जा रहे हैं यहाँ से वहाँ, न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना। पाकिस्तान में क्या हो रहा है, पंजाब में क्या हो रहा है, बंगलादेश में क्या हो रहा है, रूस में क्या हुआ, बोसनिया में क्या हुआ, वीयतनाम में क्या हुआ, सब जगह देखते ही हैं। गीता में श्रीकृष्ण के आगे अर्जुन ने सबसे पहली समस्या यही रखी कि युद्ध होने से वर्णसंकर सन्तानें होंगी और वे कुल की परम्पराओं को नहीं मानेंगी, कुल का नाश करेंगी।

मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि तुम एकाग्रता का प्रयास करोगे भी तो उसका तुम्हारे शरीर पर जो प्रभाव पड़ेगा उसको सहन नहीं कर सकोगे। हमलोगों ने ऐसा देखा है कि जब मस्तिष्क को डेल्टा या थीटा तरंगों के बाद अल्फा तरंग में लाया जाता है तो रक्तचाप बहुत गिर जाता है। रक्तचाप गिरने का मतलब होता है कि डिप्रेशन या विषाद की अवस्था आती है। जब मनुष्य का मन विषाद की अवस्था में होता है तो उस वक्त वह कुछ सोच ही नहीं सकता है। आँखें केवल देखती रहती हैं, चलने में दिक्कत होती है, श्वास तेज चलने लगती है। इसलिए कलियुग एकाग्रता का युग है ही नहीं। थोड़ा बहुत मन एकाग्र कर लिया, उतना ठीक है। कलियुग में दो ही रास्ते हैं, पहला – भगवान का नाम लिया और दूसरा – दूसरे का जितना भला हो सके उतना करो। बाकी सब भूल जाओ, कलियुग में तीसरा रास्ता नहीं है।

आपने एक बार कहा था कि पचास साल की उम्र के बाद व्यक्ति के निर्णय ज्यादातर गलत होते हैं, लेकिन राजनीतिज्ञों को देखें तो कई राजनेता पचास के ऊपर हैं। ऐसे में वे लोग कैसे निर्णय लेते हैं?

आप किस प्रकार जानते हैं कि उनके निर्णय ठीक ही हैं। उनके निर्णय गलत भी हो सकते हैं, शायद इसीलिए सब जगह इतनी समस्याएँ हैं। हर समाज, संस्कृति और सभ्यता अपने अतीत का परिणाम है, निरंतर विकास का परिणाम है। किसी भी संस्कृति को, चाहे वह भारतीय हो या पाश्चात्य या चीनी, रातोंरात बदलना सम्भव नहीं क्योंकि मनुष्य स्वाभाविक ही मानसिक असुरक्षा से पीड़ित है, चाहे वह बाल-बच्चों के बारे में हो या नौकरी-पेशे के

बारे में। लोग चाहते हैं सब कुछ बढ़िया हो, उनकी मर्जी के अनुसार हो, पर क्या यह सम्भव है? सृष्टि की रचना तीन गुणों से हुई है। सत्त्व प्रकाशात्मक है, रजस् गत्यात्मक है और तमस् आलस्य है। कभी रजस् ज्यादा होता है तो कभी तमस् तो कभी सत्त्व। ये गुण जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त हैं।

आज तुम भ्रष्टाचार की बात करते हो, उसका कारण पूछते हो, लेकिन जरा सोचो कि राम और सीता ने अवतार क्यों लिया? ईसा मसीह ने जन्म क्यों लिया? मोहम्मद क्यों आये? इसलिए कि पाप बहुत अधिक हो गये थे। आधुनिक भाषा में इसे ही भ्रष्टाचार कहते हैं। भ्रष्टाचार की परिभाषा यही है कि परिस्थिति को अपने लाभ के लिए मोड़ना, वह लाभ चाहे नैतिक हो या राजनैतिक।

भ्रष्टाचार का जन्म तो आदम और हौवा के साथ हुआ था। आज जिनके पास बैंक में करोड़ों रुपये हैं वे भी भ्रष्ट हैं, कुली भी भ्रष्ट हैं, क्योंकि पिछली दो-तीन शताब्दियों में रुपये-पैसे का महत्त्व बहुत बड़ गया है। पहले रुपया-पैसा इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, वस्तु ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी। तुम्हारे पास एक भैंस है, दो गायें हैं, घोड़े हैं, घोड़ा गाड़ी है, इतना पर्याप्त था। पर जबसे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार शुरू हुआ तो वस्तु के बनाम पैसा आ गया। यह चीज 5 रुपये की है, यह चीज 10 रुपये की है, जिसे आप उस वस्तु की कीमत कहते हैं। पहले वस्तु की कीमत किसी दूसरी वस्तु से ही होती थी, पर अब वस्तु की कीमत पैसा है, क्योंकि पैसा ऐसी चीज है जिसे आप जहाँ भी चाहे रख सकते हैं। लेकिन तुम 20 बैलगाड़ियाँ नहीं रख सकते और न ही उन बैलगाड़ियों से कुछ खरीद ही सकते हो। हाँ, पैसे से जो चाहे खरीद सकते हो।

पिछली शताब्दियों में मुद्रा का बाजार तेजी से बड़ा है, पिछले साठ सालों में तो यह बहुत बड़ा है। मुझे याद है बचपन में मेरे पिताजी की तनखाह 18 रुपये महीना थी। उस समय एक रुपये में 6 किलो आटा, 6 किलो घी आ जाता था। जब मैं ऋषिकेश में था तब एक दिन की मजदूरी 3 रुपये थी क्योंकि उस समय पैसा इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था।

भ्रष्टाचार खत्म होने वाला नहीं है, यह बात ठीक से समझ लो। शास्त्रों ने साफ-साफ कहा है कि कलियुग में अर्थ और काम ही पुरुषार्थ है। यही आज के समाज की संरचना है। इस दुनिया में यदि तुम भ्रष्टाचार का साथ नहीं देना चाहते हो तो अपने बचाव का रास्ता निकाल लो। हम तो कहते हैं कि अपने को भ्रष्टाचार के साथ एडजस्ट करना है, उसमें भाग नहीं लेना है और वही



हम लोग करते आये हैं। हम जब ऋषिकेश या मुंगेर में थे तो कुछ लोगों से मिलते ही नहीं थे। कलेक्टर वगैरह से, और दूसरा, राजनीति वालों से बहुत सावधान रहते थे। ये लोग आते भी थे तो अपनी मर्जी से आते थे, हम कभी नहीं बुलाते थे। कभी भी उद्घाटन वगैरह के लिए आमंत्रित नहीं करते थे। इतना जरूर है कि इससे काम में थोड़ी देरी होती है, मगर हम किसी तरह काम चला लेते थे, अपने ढंग से करा लेते थे। पैसा हमारे पास था, हम दे सकते थे, मगर नहीं, संन्यासी को भ्रष्टाचार में भाग नहीं लेना चाहिये।

हमारे जीवन का एक सिद्धान्त है कि जब कोई आदमी डूब रहा हो तो उसको जरूर बचाना, मगर एक सीमा तक। यदि तुम ही डूबने लग जाओ तो

उसको छोड़ दो, क्योंकि अभी तो एक ही आदमी डूबेगा तब तो दोनों डूबेंगे। एक बार कुछ काम करने के लिये एक सरकारी ऑफिसर ने स्वामी सत्संगी से कहा, 'आप मुझे एक गाय दे दीजिये।' स्वामी सत्संगी मेरे पास आयी तो मैंने कहा, 'अरे! हमारे यहाँ तो गाय दान तब करते हैं जब घर में कोई मरता है।' जब स्वामी सत्संगी ने उससे कहा तो वह ठण्डा पड़ गया, कहा, 'मरने का हिसाब-किताब नहीं चाहिये, मुझे दान नहीं लेना।'

आदमी जो दूसरे का भला करता है वह दूसरे की भलाई के लिये नहीं, अपनी भलाई के लिए करता है, यह शास्त्र का सिद्धान्त है। दूसरे का भला तुम इसलिये करते हो क्योंकि इससे तुम्हारा भला होता है। तुम अपने पिता से जो प्रेम करते हो वह उनके लिए नहीं, बल्कि अपने लिए है। तुम अपनी पत्नी से प्रेम करते हो तो वह उसके लिए नहीं, अपने लिए है। व्यक्ति जो कुछ भी करता है वह उसके पास लौटकर आता है। अच्छा-बुरा, सब तुम्हारे पास वापस आता है। जो सेवा करता है वह अपने लिये करता है। मैं तो सबसे कहता हूँ, 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, अपने लिये कर रहा हूँ, क्योंकि मुझको पता चला है कि इसको करने से अपना आध्यात्मिक उत्थान होता है।' यह बात अच्छी तरह समझ लो। दूसरों का क्या भला करोगे तुम? लंगड़ा लंगड़ा रहेगा, पाजी पाजी रहेगा, उल्लू उल्लू रहेगा, कुछ फर्क नहीं पड़ने का। हम जो भी काम करते हैं या तुम लोगों को करने को कहते हैं, उसके पीछे यही सिद्धान्त है कि तुम्हारा कर्म तुम्हारे पास लौटकर आता है।

दूसरों को भोजन देकर तुम अपना पोषण करते हो, दूसरों की मदद करके तुम अपनी मदद करते हो, यह अटल नियम है। दूसरे से घृणा करके तुम अपने से ही घृणा करते हो, दूसरों से प्रेम करके अपने से ही प्रेम करते हो। ऐसा मत कहो कि मैं अपने पिता से प्रेम करता हूँ क्योंकि वे मेरे पिता हैं या मैं अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ क्योंकि उसको जरूरत है। नहीं, तुम अपने लिए उससे प्रेम करते हो। आधुनिक मनोविज्ञान भी कहता है कि यह तुम्हारा अहं ही है। तुम सिर्फ अपने से प्रेम करते हो। जो भी तुम करते हो वह दया या करुणा के कारण नहीं, बल्कि स्वयं के लिए करते हो।

– 13 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 11

वैदिक मत के अनुसार स्त्री परिवार की वरिष्ठ सदस्या मानी जाती है। पहले के जमाने में परिवार मातृमूलक होते थे, पुत्र का नाम माता से ही जुड़ा होता था – विनता का पुत्र वैनतेय, अंजनी का पुत्र आंजनेय, देवकी के पुत्र देवकीनन्दन। उस समय मातृमूलक सभ्यता थी, बच्चे की जात माँ के नाम से जानी जाती थी। मगर हर देश में सभ्यताएँ आती हैं और जाती हैं। आक्रमण होते हैं, राजा बदलते हैं, तो समाज भी बदलता है। फिर पितृमूलक सभ्यता आई। पारसी, मुसलमान और ईसाई – ये पितृमूलक हैं, इनके यहाँ भगवान ही होते हैं, भगवती नहीं होतीं।

हम लोगों के यहाँ भगवान और भगवती, दोनों होते हैं। देवी भागवत में ऐसा लिखा है कि इस सृष्टि का निर्माण करने वाली आद्याशक्ति है। उससे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश पैदा हुये हैं। उस शक्ति को जगत्-जननी बताया गया है, जगत् को पैदा करने वाली। आखिर हमको पैदा करने वाली माँ ही तो है न, बाप तो नहीं है। बाप तो निमित्त है। प्रजनन तो माँ करती है। इसलिये आद्याशक्ति को जगत्-जननी कहकर पुकारा गया, और उस शक्ति के क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, ये तीन रूप होते हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति से तीन देवताओं को पैदा किया। देवी भागवत पढ़ लेना, उसमें एकदम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। देवी भागवत एक पुराण है, उसमें सब विद्या लिखी है। पूजा की विधि लिखी है, भस्म बनाने की विधि लिखी है, यज्ञ करने की विधि लिखी है, पंचाग्नि की विधि लिखी है। हम जो पंचाग्नि करते थे, देवी भागवत के अनुसार करते थे।

मातृमूलक के बाद पितृमूलक समाज आया, सब कुछ बाप पर चलने लगा, स्त्रियों के अधिकार कम हो गए। दो सौ साल पहले तक यूरोप के लोग महामूर्ख थे। इनके यहाँ औरतों को बाहर नहीं जाने देते थे। हम लोगों के यहाँ कम-से-कम औरतें बाहर घूमने तो जाती हैं, मजदूरी करती हैं, उनके यहाँ तो बाहर जाने ही नहीं देते थे। दो सौ साल पहले इनके समाज का भी यही हाल था। फिर चार बड़ी घटनाएँ हुईं जिसकी वजह से उनकी स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो गईं।

पहली चीज, ये लोग वहाँ से अमेरिका चले गये। दूसरी चीज, पहला विश्वयुद्ध हुआ जिसमें लाखों जवान लड़के मरे और लड़कियाँ विधवा हो गईं। सारा देश उनको खुद चलाना पड़ता था। दूसरे विश्वयुद्ध में करोड़ों मरे, सब अठारह-बीस-पचीस साल के लड़के। लड़कियाँ विधवा हो गईं, अपने को संभालना पड़ा। और चौथी चीज, सिग्मण्ड फ्रॉयड की मनोवैज्ञानिक विचारधारा। इन चार वजहों से इनकी सभ्यता में लड़कियाँ स्वतन्त्र हुईं।

अभी यूरोप में जो समाज है यह प्राचीन ईसाई समाज नहीं है। पहले यूरोपियन समाज ऐसा नहीं था। वहाँ तो लड़कियाँ गलत ढंग से चलें तो पत्थर से मारते थे। उनके यहाँ विधवाओं को काला कपड़ा पहनाते थे, वे किसी दूसरे आदमी से बात नहीं कर सकती थीं। काला कपड़ा पहनी किसी विधवा को किसी लड़के से बात करते हुये देख लिया तो गाँव के लोग उसको मैदान में लाकर पत्थर से मारते थे। केवल दौ सौ सालों में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया। अमेरिका में गये, वहाँ समाज का कोई अंकुश था नहीं। उन लोगों ने वहाँ जाकर नया समाज बनाया। आज की जो पाश्चात्य सभ्यता है उस पर ईसाई धर्म का कोई खास असर नहीं है। उन पर सबसे ज्यादा असर है वैदिक सभ्यता का। गीता, उपनिषद्, भगवद्-भजन – यही सब करते रहते हैं वे लोग।

उनकी तुलना में यहाँ स्त्री का दर्जा कभी भी पिछड़ा नहीं रहा। स्त्री की अपनी अलग सम्पत्ति थी, जो आज स्त्रीधन के नाम से जानी जाती है। दो सम्पत्तियों पर स्त्री का अधिकार माना जाता था। पिता के घर से जो लाती थी वह स्त्रीधन होता था। ससुराल में जो था उस पर भी बराबर अधिकार था। केवल पुरुष कर्ता नहीं था, पत्नी भी कर्ता होती थी। यह संहिताओं में लिखा हुआ है। सन्तान पर उसका अधिकार था। वैदिक धर्म के अनुसार 24 प्रकार की सन्तान होती हैं। उनको सन्तान के रूप में कानूनी दर्जा दिया गया है। एक सन्तान तो है औरस, जैसे तुम हो, इसके अलावा अलग-अलग ढंग से सन्तान

पैदा होती है, उन सब सन्तानों को कितना-कितना अधिकार था, इसके नियम बने हुए थे। शास्त्रों में पढ़ लेना। स्त्रियों को इतनी स्वतन्त्रता थी उस समय।

विवाह में भी स्वतंत्रता थी। स्वयंवर की प्रथा रही है। स्वयंवर का मतलब क्या होता है? खुद चुनना। लड़की चुनती थी अपना पति। पौराणिक काल में सुकन्या नाम की राजकुमारी हुई। उसने च्यवन ऋषि से शादी की थी जो बूढ़े थे, उसकी उम्र से कम-से-कम 70 साल बड़े थे। पर उसने निर्णय ले लिया। तब च्यवन ऋषि ने औषधि बनाई, अपने शरीर को पुष्ट किया। वही औषधि आज च्यवनप्राश के नाम से जानी जाती है।

आधुनिक मनोविज्ञान

आज के युग में मनोविज्ञान की विभिन्न धाराएँ हैं। एक धारा फ्रॉयड के विचारों पर चलती है। उनके बाद हुए कार्ल युंग और उनके ही समकालीन थे पावलोव रूस में। ये मनोविज्ञान की अलग-अलग धाराएँ हैं। युंग अधिकतर हमारे भारतीय वैदिक विचारों से प्रभावित था, जबकि फ्रॉयड शुद्ध भौतिकवादी, पदार्थवादी था। अन्तर दोनों में यह है कि फ्रॉयड का मनोविज्ञान केवल यौन सम्बन्धों पर ही आधारित था, जबकि युंग बोलता था कि मनुष्य के अन्दर पवित्रता भी है। फ्रॉयड कहता था, मनुष्य के अन्दर सब कुछ गन्दा है, सब कचरा है और कार्ल युंग कहता था, नहीं, कचरा भी है और अच्छा भी है। मनुष्य के अन्दर कीचड़ भी है, कमल भी है। यह मौलिक अन्तर था दोनों में।

कर्मों का सिद्धान्त

घर में जितनी भी बिजली की चीजें हैं, चाहे बल्ब हो, हीटर हो, पंखा हो, सब एक ही जगह से, एक ही बिजलीघर से जुड़ी हैं। वहाँ बिजली बंद तो सब जगह बंद, वहाँ चालू तो सब चालू। उसी तरह से एक ईश्वर, एक आत्मा सब में है। बस तुम्हारा सर्किट अलग है, इनका अलग है, सबका सर्किट अलग है। मगर आत्मा की जो धारा सब जीवों में, सब प्राणियों में जाती है, वह तो एक है। एक ही तत्त्व सबमें है। तुम्हारा तत्त्व, हमारा तत्त्व अलग नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि तुम्हारा सर्किट और हमारा सर्किट, तुम्हारा कर्म और हमारा कर्म अलग-अलग है। अब हम अपना सर्किट ऑफ कर देते हैं तो हमारा शरीर ऑफ हो गया। बिजली चलती रहे, मगर बिजली हमारे बल्ब

में नहीं है, क्योंकि हमने उसको ऑफ कर दिया है। वह कर्म है। मनुष्य के अपने-अपने कर्म होते हैं।

कोई आदमी बहुत अच्छा है, परन्तु उसको बहुत कष्ट है तो लोग कहते हैं यह तुम्हारे पूर्वजन्म का कर्म है?

नहीं, पूर्वजन्म को समझाना इतना सरल नहीं है। किसी आदमी के सुख-दुःख, कष्ट-बीमारी को देखकर तुम बोल दो कि पूर्वजन्म में इसने अच्छा या बुरा किया था, यह तो तुम्हारी अपनी परिभाषा है। क्यों? तुम दुःख को खराब समझते हो, तुम मृत्यु को अप्रिय समझते हो, तुम विपत्ति को बुरा मानते हो, तुम निर्धनता को पसन्द नहीं करते हो। तुम्हारी कोई निन्दा करता है तो तुम बुरा मानते हो, मगर यह तो तुम्हारी अपनी भावना है। क्या मालूम यह ठीक हो मनुष्य के उद्धार के लिए? इसलिये सन्त-महात्माओं ने कहा भी है –

सुख के माथ सिल परे, नाम हृदय से जाए।
बलिहारी वा दुःख की, पल-पल नाम रटाए॥

मतलब दुःख सन्त-महात्माओं के लिये एक आशीर्वाद बनता है। बीमारी आखिर क्यों होती है? आदमी को बीमारी बुरी लगती है, लेकिन बीमारी इसलिये होती है कि तुम्हारे शरीर की गन्दगी साफ हो। जब बुखार आता है तो इसका मतलब क्या होता है? तुम्हारे अन्दर मशीन कहीं पर खराब है, उसकी सफाई बुखार के द्वारा होती है। पर तुम दवा खाकर बुखार को रोक देते हो। कैन्सर हो या जो भी बीमारी हो, वह मनुष्य के अन्दर की अशुद्धियों को बाहर निकालने का उपाय है। जैसे टट्टी मनुष्य के शरीर की गंदगी को बाहर निकालने का उपाय है, वैसे रोग एक निकास है मनुष्य के शरीर की गंदगी का। उसी तरह दुःख मनुष्य के मन की गंदगी का निकास है।

इसलिये पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को समझना इतना सरल नहीं है। अब मान लो, हमको बहुत सुख है। हमारा एक पुत्र है, उसे कॉलेज-यूनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं, फिर उसकी शादी धूमधाम से करते हैं। पर शादी के बाद वह हमें छोड़कर चला जाता है। पहले हमें उससे सुख मिला, अब बहुत दुःख मिल रहा है। तुम जानते हो न, पुत्र प्रायः पूर्वजन्म का बैरी होता है जो अपना कर्जा लेने के लिये आया है। तुम उसका भुगतान कर रहे हो, पक्की बात मान लो।

नहीं कर रहे हो क्या? दिनभर उसके लिए मेहनत करते हो, कमाते हो, दुःखी होते हो, चिन्ता लगी रहती है। वह तुमसे अपना कर्जा वसूल कर रहा है, और कुछ नहीं। इसी तरह स्त्री पूर्वजन्म में तुम्हारी मित्र थी या शत्रु थी? इन बातों को थोड़ा अच्छी तरह से सोचो-समझो।

कहते हैं कि पति-पत्नी का रिश्ता जन्म-जन्म का होता है?

यह सब पण्डित लोग कह देते हैं, शास्त्र में ऐसा कुछ नहीं लिखा है। शास्त्र कोई बेवकूफ नहीं कि जन्म-जन्म के लिए पति-पत्नी को एक साथ बाँध कर रख दे। औरत मर गई, मर्द तीस साल और जीता है। तो जब तक वह दूसरा जन्म न ले, क्या औरत वेटिंग रूम में प्रतीक्षा करेगी? यह तर्कसंगत नहीं है। यह सब कहने की बात है, मगर वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है।

जन्म क्या है, पुनर्जन्म क्या है, आत्मा क्या है, कौन जाता है, कैसे जाता है, किस लोक को जाता है, कर्म किसको कहते हैं और कर्म कब पैदा होता है – ये सब गूढ़ प्रश्न हैं। आज पालक लगाओ, तीन महीने में खा लो। आज आम लगाओ तो छः महीने तक मिलने का नहीं, पक्की बात है। आज कटहल का पेड़ लगाओगे तो अगले साल फल नहीं मिलेगा। इसी तरह से कुछ कर्म सद्यःफलित होते हैं, तुरन्त, तत्काल। कुछ कर्म विलम्ब से फलते हैं। वास्तव में कर्म विलम्ब से फलित नहीं होते, वे परिस्थितियों से फलित होते हैं। तुम अगर जैतून के पेड़ हिन्दुस्तान में लगाओगे तो नहीं लगेंगे। केला यदि तुम बेल्जियम में लगाओगे तो नहीं लगेगा। आम अगर कुमाऊँ या गढ़वाल में लगाओगे तो नहीं लगेगा। बीज तो है, जमीन भी है, परिस्थिति नहीं है। इसी तरह कुछ कर्म उपयुक्त परिस्थितियों में फलित होते हैं, कुछ सद्यःफलित होते हैं। किसी भी बंजर जमीन में लगा दो, थोड़ा बहुत कुछ तो निकल ही आयेगा।

मनुष्य के कर्म तीन प्रकार के होते हैं – संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध। ऐसा शास्त्र बताते हैं और समझ में भी आता है। कर्म क्या है? तुम्हारी कमाई। पाँच हजार रुपया बैंक में डाल दो, फिक्स्ड डिपॉसिट हो गया। उसको संचित कर्म कहोगे और वह तुम्हें कब मिलेगा? जब उसकी मैच्यूरिटी होगी। कर्म का भी एक मैच्यूरिटी पीरियड होता है, उसके परिपक्व होने का एक समय होता है। कुछ कर्म क्रियमाण होते हैं। करेंट एकाउण्ट में चेक डाला, पैसा निकाला।



और कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो मैच्यूरिटी के बाद इन्टरेस्ट के साथ मिलते हैं, उसको कहते हैं प्रारब्ध।

मनुष्य का संचित कर्म पर कोई अधिकार नहीं है। जो तुमने बैंक में 10% पर डिपोसिट कर दिया, वह मैच्यूरिटी पर तुमको मिलेगा, चाहे तुम्हें पसन्द हो या नापसन्द। मगर जो काम तुम अभी कर रहे हो, उसको चाहो तो रोक सकते हो, संयम के द्वारा, योग के द्वारा, ध्यान के द्वारा, प्रार्थना के द्वारा। माने आज के कर्म को बदल सकते हैं। पर कर्म के फल को नहीं बदल सकते और कर्म के फल को कहते हैं प्रारब्ध। आम के पेड़ से आम निकला तो वह फल हुआ न उसका? पेड़ को तो कुछ नहीं हुआ, पेड़ तो वही है न? उसी तरह तुम्हें क्या मिला, ब्याज मिला। वह है प्रारब्ध। कर्म से उत्पन्न होने वाले फल को प्रारब्ध कहते हैं, और उस प्रारब्ध को तो भोगना ही पड़ता है। चाहे श्रीराम हों, चाहे श्रीकृष्ण हों, चाहे स्वामी विवेकानन्द हों, भगवान भी यदि संसार में जन्म लेंगे तो उनको भी कर्म के आश्रित रहना पड़ेगा और कर्म के फल का भोग करना पड़ेगा। यह प्रकृति का अटल नियम है।

यह विषय बड़ा गहन है। इसको इतनी जल्दी समझाया नहीं जा सकता क्योंकि इसको समझने के लिये सबसे पहले तुम्हें यह जानना होगा कि तुम कौन

हो। तुम बोस हो, चटर्जी हो, रमानी हो, कुछ भी हो, यह तो केवल तुम्हारे ऊपर का नाम है, मगर तुम थोड़े ही वह हो। तुम चटर्जी थोड़े ही हो। हाँ, किसी नाम से तो पुकारना ही पड़ेगा, नहीं तो क्या बोलेंगे, पर वह नाम तुम नहीं हो। यह शरीर जिसे स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कहा जाता है, यह तो केवल उपयोग के लिये है। मैं थोड़े ही स्वामी सत्यानन्द सरस्वती हूँ। यह शरीर आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल, इन पाँच तत्त्वों से बना है। इस शरीर के अन्दर मन है, मन के अन्दर बुद्धि है और बुद्धि के अन्दर आत्मा है। जैसे बीज के अन्दर पेड़ रहता है न, दिखता तो नहीं है, अन्दर शब्द को इस तरह से समझना।

वह जो आत्मा है, वह दिन को भी जागती है और रात को भी। वह कभी सोती नहीं है। यदि वह रात को सो जाये तो दूसरे दिन तुमको याद नहीं रहेगा कि तुम बनर्जी हो, चक्रवर्ती हो या गोस्वामी हो। तुम जो दिनभर 'मैं-मैं-मैं' कहते हो वह आत्मा है, और उस आत्मा को जब शरीर के सम्बन्ध में पुकारते हैं तो वह जीवात्मा है। जब आत्मा शरीर के बन्धन से मुक्त होती है तो उसको परमात्मा कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा में केवल आवरण का भेद है, और कोई फर्क नहीं। जैसे पानी से बर्फ बना और बर्फ से पानी, दोनों एक ही हैं। जब आत्मा जीवन-मरण के संसर्ग में रहती है तो उसे जीवात्मा कहते हैं। जब वह इन बन्धनों से मुक्त हो जाती है, अज्ञान से मुक्त हो जाती है, तब उसमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।

घड़े में भी पानी है, कुएँ में भी पानी है। तुम कहते हो यह घड़े का पानी है और वह कुएँ का पानी है, मगर घड़े को अगर तुम तोड़ दो तो दोनों पानी एक होता है – *फूटा कुम्भ जल जल ही समाना।* यह घड़ा जिसे तोड़ना है माया का घड़ा है। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि शरीर रहते हुए भगवद्-भजन जरूर करना चाहिये। यह मुख्य चीज है और दूसरी चीज, परमार्थ का कार्य करना चाहिये। परमार्थ माने दूसरे के लिये। अपनों के लिए, अपने बेटा-बेटी, चाचा-मामा के लिये जो काम करते हो वह स्वार्थ है। मगर रास्ते चलते किसी को खाना खिलाते हो, किसी को कपड़ा देते हो, किसी को रास्ता दिखा देते हो, वह तुम्हारा तो है नहीं, पता नहीं कौन था, उसको परमार्थ कहते हैं। दूसरों के लिये परमार्थ करना, यह ईश्वर तक पहुँचने का सबसे सरल रास्ता है। इसलिये सब साधु-महात्मा कहते हैं कि भगवद्-भजन के साथ परमार्थ का भी काम करो। किसी को खाना खिलाते हैं, अनाथालय में पैसा देते हैं, कपड़ा देते हैं,

यह परमार्थ का काम है। अगर हम किसी को कम्बल देते हैं, खाना खिलाते हैं, हमें क्या मिलता है? वह तो हमारा बटुआ खाली हुआ न, मगर उससे जो हमको मिलता है वह दिखाई नहीं देता। आखिर उस मनुष्य के अन्दर भी ईश्वर है, वह ईश्वर पहचानता है कि आदमी क्या कर रहा है। तुम्हारे अन्दर भी ईश्वर है जो जानता है कि मैं तुम्हें क्या कष्ट दे रहा हूँ।

स्वामीजी, क्या मरने के समय बहुत कष्ट होता है?

नहीं।

जब हम श्वास रोककर पानी के अन्दर जाते हैं तो कितनी तकलीफ होती है! तब क्या मरते समय तकलीफ नहीं होती होगी? हार्ट अटैक में?

नहीं, हार्ट अटैक तो मृत्यु की सबसे पीड़ारहित स्थिति है, क्योंकि वह अनायास होता है। हार्ट अटैक का मतलब होता है मोटर बन्द हो गई। पम्प चल रहा था, बिजली की करेन्ट गई तो मोटर बन्द, कुछ पता नहीं चला हमको।

खैर अभी बात चल रही है मृत्यु की, हार्ट अटैक की नहीं। मृत्यु एक क्षण में आती है। वह मनुष्य के हाथ में नहीं है, वह किसी के भी हाथ में नहीं है। हवाई-जहाज से गिरकर भी आदमी जिन्दा रहता है और रिक्शे से गिरकर आदमी मर जाता है। मृत्यु किसी भी कर्म करने वाले के हाथ में नहीं है, मृत्यु भगवान के हाथ में है। इसके लिये कोई निश्चित समय भी नहीं है। मृत्यु को टाला भी जा सकता है। इसलिये हमारे यहाँ अकाल मृत्यु, दीर्घ आयु, चिरंजीव जैसे शब्द आते हैं। चिरंजीव माने जितना दिन उसे रहना चाहिये उससे ज्यादा जिये, अल्प आयु माने जितना दिन तुमको जीना चाहिये उसके पहले मृत्यु।

मृत्यु एक संक्रमण है, परिवर्तन है, एक ट्रेन से दूसरी ट्रेन पकड़ना, टीवी पर एक धारावाहिक खत्म होने के बाद दूसरा शुरू होना। अब चूँकि हमारा प्रिय व्यक्ति चला गया तो उसके वियोग का दुःख जरूर होता है, मगर मृत्यु स्वयं दुःख का कारण नहीं है। मृत्यु में जो दुःख होता है वह इसलिये होता है कि हमारा प्रिय चला गया, हमारा पालन-पोषण करने वाला चला गया या हमारा इकलौता भाई चला गया। दुःख का कारण वह है।

एक संत थे जो हमेशा हँसते ही रहते थे। जब उनके मरने का समय आया तो लोगों से कहा, तुम खूब हँसते ही रहना, रोना नहीं। जब वे मरे तो लोगों

को दुःख हुआ, कुछ रोने भी लगे। उनके शव को जब चिता पर रखा और जैसे ही आग दी तो उनके शरीर से पटाखे फूटने लगे। मरने के पहले उन्होंने अपने कपड़े के अन्दर पटाखे डाल दिये थे। वे फूटने लगे तो लोग खूब हँसने लगे। इसलिये हमारे यहाँ जब कोई मरता है तो गाना बजाते हैं। गाना बजाने का नियम दुःख को दूर करने के लिये है। ऐसे और कई प्रकार के नियम हमारी परम्परा में बताये गये हैं।

क्या मृत्यु के बाद कुछ याद रहता है?

नहीं, मृत्यु के बाद तो कुछ याद नहीं रहता, क्योंकि आदमी जब मरता है तो उसकी चेतना लुप्त हो जाती है। हाँ, कुछ साधु-महात्मा जब शरीर छोड़ते हैं, तो उन्हें उसके बाद भी सूक्ष्म रूप में याद रहता है। और जो लोग अत्यन्त दुःख से मरते हैं, भयंकर स्थिति में मरते हैं, उनको भी मृत्यु के बाद कुछ दिन तक याद रहता है, जिसको भूत-प्रेत कहते हैं। मगर सामान्य रूप से याद नहीं रहता। प्रायः छोटे शिशु को दो-तीन साल तक याद रहता है। अगर उन शिशुओं से ठीक ढंग से बात करो तो कुछ अजीब-अजीब बातें बोलते हैं, और तीन साल के बाद सब भूल जाते हैं।

हमने कई लोगों से मुलाकात की है, आज नहीं, चालीस-पचास साल हो गये, जिनको अपने पूर्वजन्म की याद रहती थी। कुछ मामलों में तो कचहरी के मुकदमे भी हुये हैं। एक लड़की थी, बहुत छोटी, गोद की बच्ची। वह जब वृन्दावन-मथुरा जा रही थी तो उसने अपने पिता से कहा, 'यह हमारा घर है' और उसी घर पर अटक गई, आगे जाए ही नहीं। उसे घर के अन्दर ले गये तो उसने सब लोगों को पहचान लिया, सास है तो यह है तो वह है। सामान वगैरह सब पहचान लिया। घर के लोगों ने सोचा, ये कुछ बदमाशी करने आये हैं, और मुकदमा कर दिया। इस मुकदमे में यह सवाल उठा कि आखिर यह ऐसा क्यों बोल रही है? फिर तीन संन्यासियों को सहमति के लिये बुलाया गया। स्वामी रामदास दक्षिण भारत के थे, एक हमारे गुरु जी थे, तीसरे कोई और स्वामी थे। तीनों संन्यासियों ने इस बात का अनुमोदन किया कि पुनर्जन्म होता है। इस लड़की को ज्ञान था, इसलिए जब वहाँ गई तो उसने घर के लोगों को पहचान लिया।

ऐसे ही धनबाद के एक बड़े अधिकारी की पत्नी है, जिसे तीन जन्मों की याद है और तीनों जन्मों के लोगों से सम्बन्ध रख लिया है। उसका स्वभाव

भी एक सामान्य स्त्री की तरह नहीं है, हमेशा मस्त रहती है। मेरे कहने का यह मतलब कि कुछ लोगों को पूर्वजन्म याद रहता है। बचपन में तो प्रायः सबको याद रहता है और वैसे बिना याद होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति आकर्षण-विकर्षण तो रहता ही है न? यह पूर्वजन्म का ही संकेत है।

अब अपनी ही छोटी-सी बात बताऊँ? मेरा तो देवघर आने का कोई प्रोग्राम ही नहीं था। मेरे पास इतनी जमीन-जायजाद है कि हिसाब नहीं लगा सकते हो। गंगोत्री में मेरी गुफा अभी तक है, बन्द पड़ी है। कोई जा भी नहीं सकता। माउण्ट आबू में मेरी कुटिया बन्द पड़ी है। ऋषिकेश में मेरा मकान बना पड़ा है। मुँगेर में तो मेरा अखाड़ा अलग से है, एकदम अलग। मेरे पास तो इतनी सम्भावनाएँ थीं, और अगर यहीं आने का पहले से प्रोग्राम होता तो मैं सीधे मुँगेर से आ जाता। मुझे तो कहीं जाने की जरूरत नहीं थी। और फिर मैं अपने अखाड़े का वरिष्ठ संन्यासी हूँ। हमारा अखाड़ा निरंजनी है, और हमारे अखाड़े के जो प्रमुख हैं, स्वामी पुण्यानन्द गिरि जी महाराज, वे मेरे सामने आसन पर नहीं बैठते, उनको बहुत शरम लगती है। हम किसी भी अखाड़े में जाकर बैठ सकते हैं, फिर हम यहाँ किसलिये आये? यह अब कौन बताये? क्या यहाँ के लोगों के साथ मेरा पूर्वजन्म का सम्बन्ध था?

हमारा तो यहाँ आने का कोई प्रोग्राम था ही नहीं, और मजे की बात यह कि यहीं से करीब चालीस-पचास मील की दूरी पर डाका मोड़ है जहाँ हमारे नाम की करीब डेढ़ सौ एकड़ जमीन है। अभी भी पड़ी हुई है। लोग बार-बार आते हैं, कहते हैं कुछ बनायेंगे, कुछ बनायेंगे। धनबाद में तो चौदह एकड़ जमीन है, मैं वहाँ जाता ही नहीं, बस दो स्वामी रहते हैं वहाँ। फिर यहाँ क्यों आया? बात आ रही है न समझ में? जन्म-जन्म का कुछ ऐसा सम्बन्ध होता है जो मनुष्य को वहाँ पर खींचकर ले जाता है। व्यक्ति स्वेच्छा से नहीं जाता।

देवघर तो मेरे दिमाग में था ही नहीं। जब त्र्यम्बकेश्वर में मुझे बोला गया कि चिताभूमि में जाओ, तब स्वामी सत्संगी से कहा, 'जाओ, देवघर में जमीन देखो, वहीं का निर्देश हुआ है, वहीं जाऊँगा।' 8 सितम्बर को त्र्यम्बकेश्वर में यह बात कही, वह तुरंत प्लेन से आई पटना, पटना से कार से आई, 9 तारीख को यहाँ पहुँची। 10 तारीख को यह जमीन उसे किसी पण्डे ने दिखलाई, इसके मालिक से बातचीत हुई और 12 तारीख को सारे कागजात तैयार हुए कलकत्ता में, क्योंकि यहाँ हड़ताल थी। चार दिन में जमीन की खरीद-बेच होते देखी है?

सगे भाइयों की जमीन एक-दूसरे के नाम हस्तान्तरित नहीं हो सकती चार दिन में! और यही सामने की जमीन लेने में बात करते-करते साल निकल गया। जबकि वे लोग जान-पहचान वाले थे। वे भी हाँ कहते थे, हम भी हाँ कहते थे, पर कभी उनकी बहन गायब है, तो कभी उनका बेटा गायब है, कभी माँ कहीं गई हुई है, वह जुगाड़ नहीं हो पा रहा था। यहाँ फट से हुआ। ऐसा संयोग जो होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है। तब हमें मानना पड़ता है कि नहीं, हमारा कर्म रिखिया में लिखा हुआ है। हमने इसकी इच्छा नहीं की, पर हमें यहाँ आना पड़ा। हमने इसके लिये परिश्रम नहीं किया, हमें स्वतः प्राप्त हो गया। इसके अलावा और भी कई संकेत मिले हैं। हो सकता है, यहाँ कोई मेरी माँ हो, बहन हो, भाई हो, कहीं का कुछ रहा होगा। कहीं-न-कहीं कोई सम्बन्ध जरूर है।

कृष्णमूर्ति ने एक जगह लिखा है, 'जब तक तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं तब तक तुम किसी से प्रेम नहीं कर सकते' इसको हम समझ नहीं पाये?

यह तो ठीक बात है, मानते हैं। जब आदमी के अपने अरमान होते हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं और उन्हें पूरा करने की कोशिश करता है, तब उस समय वह न तो अपने पुत्र, न अपने भाई, न अपने पिता, न अपनी पत्नी, किसी से भी प्रेम नहीं कर सकता। उसके लिये महत्त्वाकांक्षा ही सर्वोपरि हो जाती है, चाहे वह नेता बनने की हो, चाहे धन कमाने की हो, चाहे ज्ञान प्राप्त करने की हो।

यह भी तो हो सकता है कि बच्चों को पढ़ाने-लिखाने, बड़ा करने के कारण व्यक्ति प्रेम न कर पाए?

नहीं, बच्चों को पढ़ाना, बड़ा करना, स्त्री को सुखी रखना, पति की सेवा करना, यह महत्त्वाकांक्षा नहीं, कर्तव्य है। कर्तव्य वह है जो तुमको करना चाहिये, महत्त्वाकांक्षा वह है जो तुमको चाहिये। महत्त्वाकांक्षा उसको कहते हैं जिसका होना जरूरी नहीं है, मगर तुम कर रहे हो, और कर्तव्य उसको कहते हैं जिसे तुम चाहो या न चाहो, मगर तुम्हारा करना जरूरी है। कर्तव्य एक धर्म है, महत्त्वाकांक्षा धर्म नहीं है। महत्त्वाकांक्षा दूसरों को देखकर होती है। तुम किसी अमीर को देखते हो तो तुम्हें भी धन की आकांक्षा होती है। तुम किसी नेता या मंत्री को देखते हो, तो तुमको पद-प्रतिष्ठा की आकांक्षा होती



है। महत्त्व की प्राप्ति की इच्छा को महत्त्वाकांक्षा कहते हैं। लेकिन अगर तुम बेटा-बेटी को पढ़ाते हो या अपनी स्त्री या माता-पिता या भाई-बहनों के लिये कुछ करते हो वह अपने महत्त्व के लिये नहीं करते हो, वह तो तुम्हारा एक दायित्व है, पसन्द नहीं भी आयेगा तो भी करोगे।

कर्तव्य और महत्त्वाकांक्षा में बड़ा भारी अन्तर है। जो कर्तव्यनिष्ठ होते हैं उन्हें एक-दूसरे से प्रेम रहता है, जबकि महत्त्वाकांक्षा वाला आदमी सच्चे दिल से किसी से प्यार नहीं कर सकता। जितने भी महत्त्वाकांक्षी होते हैं वे स्वार्थी होते हैं, यह मेरा अनुभव रहा है। इतने सालों में मैंने जिस-जिस में महत्त्वाकांक्षा देखी, उसमें स्वार्थ भी देखा है। आखिर हमें तो लोगों को देखते-देखते पचास-साठ साल हो गये हैं। जिन शिष्यों में हमने महत्त्वाकांक्षा नहीं देखी, जो केवल अपना कर्तव्य, अपनी ड्यूटी करते हैं, उनमें हमने देखा प्रेम। दूसरों का उन्हें ख्याल रहता है, वे दूसरों के प्रति अपना दायित्व पूरा करना चाहते हैं। दूसरी ओर महत्त्वाकांक्षी लोगों को केवल अपनी महत्त्वाकांक्षा से मतलब रहता है। उनको तुमसे-हमसे कोई मतलब नहीं। वे तो फिर गुरु को भी, अपने माता-पिता, पति-पत्नी को भी भूल जाते हैं। पर ऐसी बात भी नहीं कि महत्त्वाकांक्षा बिल्कुल खराब चीज है, मैं उसका अवमूल्यन नहीं कर रहा हूँ। वह मनुष्य का स्वभाव है क्योंकि हर व्यक्ति महत्त्व तो चाहता ही है।

महत्त्वाकांक्षा आध्यात्मिक जीवन में बाधा है क्या?

हाँ, महत्त्वाकांक्षा आध्यात्मिक जीवन में बहुत बड़ी बाधा है। जैसे हम आध्यात्मिक जीवन जी रहे हैं, इस वक्त अगर हम चाहें कि बहुत मान-सम्मान मिल जाए, लोग हमको मानने लगें, तो वह हमारे आध्यात्मिक जीवन में बाधा बनेगा।

मैं स्कूल में मन लगाकर पढ़ाता हूँ तो काफी यश मिलने लगा है और ज्यादा विद्यार्थी आने लगे हैं। जब लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, तब बहुत उत्साह मिलता है। क्या यह कर्तव्य है या महत्त्वाकांक्षा?

नहीं, यह तो तुम एक शिक्षक का कर्तव्य निभा रहे हो। जब प्रशंसा होने लगे तो समय-समय पर अपना निरीक्षण करना पड़ता है। जैसे घर साफ करने के लिये समय-समय पर झाड़ू लगाते हैं, वैसे समय-समय पर आत्म-निरीक्षण करना चाहिये, सोचना चाहिये, 'छोड़ो हम तो मात्र शिक्षक हैं।' जैसे माता-पिता या बेटा-बेटी का कर्तव्य होता है, वैसे शिक्षक का भी एक कर्तव्य होता है, अपने विद्यार्थियों को मन लगाकर पढ़ाना। वह तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा नहीं, ड्यूटी है। अब लोग उस ड्यूटी की तारीफ करें, तुम्हें महत्त्व दें और वह महत्त्व तुम्हारे दिल में घुस जाये, तो खेल खतम। दुनिया में रहेंगे तो महत्त्व मिलेगा ही, मगर उसके कारण अपने मस्तिष्क को दूषित नहीं होने देना चाहिये। हमें मानना पड़ता है कि हम एक शिक्षक हैं, हमारा काम ही ऐसा है।

गठिया जैसे रोगों में मूत्र-चिकित्सा की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

मूत्र-चिकित्सा आज के समूचे समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपचार-प्रणाली है। अभी तो जर्मनी में इस पर एक बहुत बड़ी संगोष्ठी होने जा रही है। यह हमारे प्राचीन समाज में भी एक महत्त्वपूर्ण प्रणाली रही है। हमारे यहाँ पहले मूत्र-चिकित्सा गाँव वगैरह में बहुत प्रचलित थी। यह हुई पहली बात।

दूसरी बात, मूत्र-चिकित्सा पर, जिसे अंग्रेजी में यूरिन थेरेपी कहते हैं, अच्छे-अच्छे डॉक्टरों द्वारा लिखी हुई अच्छी पुस्तकें हैं, इसलिए इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं। आधुनिक यन्त्रों से आदमी के पेशाब की जाँच की गई है, उसके घटकों का पता लगाया गया है। कहीं पर भी पेशाब में दूषित द्रव्य या रोगाणु नहीं पाये गये हैं। यहाँ तक कि जो लोग बीमार हैं, जिन्हें टी.बी. या

कैंसर की बीमारी है, उन लोगों के पेशाब में भी रोगाणु नहीं पाये गये। मतलब कोई आदमी महारोग से पीड़ित हो सकता है, पर उसका पेशाब शुद्ध है। उसमें रोग का कोई भी कीटाणु नहीं पाया गया है। जहाँ तक दुर्गन्ध का सवाल है, वह तो कोई बड़ी बात नहीं है, आखिर अस्पताल में भी कितनी दुर्गन्ध रहती है।

तीसरी बात, इसके लिए किसी जानकार आदमी से मार्गदर्शन लेना पड़ेगा। मैं मार्गदर्शन नहीं देता। इस विषय पर बहुत-सी किताबें लिखी गई हैं, उनमें बहुत-से नियम बताए गए हैं। कौन-सा भोजन करना है, कितने दिन उपवास करना है, यह सब किसी जानकार आदमी से ही सीखना होगा। ऐसे कई लोग हैं जो इसको जानते हैं, आपको बस पता लगाना है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, मोरारजी देसाई तो रोज मूत्र लेते थे। जब भी हमसे मिलते थे तो पूछते थे, कोई नई जानकारी लाये हो क्या?

मूत्र-चिकित्सा को शास्त्रों में अमरोली कहते हैं, इसका वर्णन डामर-तंत्र के शिव-पार्वती संवाद में है। किस तरह से स्वमूत्र पीना चाहिये, किस तरह से इसकी मालिश करनी चाहिये, किस प्रकार का भोजन करना चाहिये, किस प्रकार के पात्र में इसको रखना चाहिये – ये सब नियम डामर-तंत्र में लिखे हुये हैं। अमरोली तंत्र साधना के अंतर्गत आती है। इसका अभ्यास हम सब साधु लोगों को करना पड़ता है। इससे रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। रोग का आक्रमण नहीं होता, सर्दी-खाँसी का दौरा नहीं पड़ता। आखिर हम लोगों को कम-से-कम तीन घण्टे एक आसन लगाकर बैठना पड़ता है। तीन घण्टे आसन में बैठना कितना मुश्किल है! मजे की बात क्या है, मेरे पास मच्छर बैठता ही नहीं है। उसे डर लगता है कि मुझे काटकर कहीं उसको ही मलेरिया न हो जाये! अमरोली से शरीर में एन्टिबायोटिक रसायन तैयार होता है, जो शरीर के रोग का समाधान खोजता है।

अमरोली करने का समय होता है उत्तरायण और दक्षिणायन के बीच में। माने 14 जनवरी और 16 जुलाई के बीच ही इसका अभ्यास करना पड़ता है, बाद में नहीं करना चाहिये। केवल ये छः महीने इसके लिये होते हैं। कर्क संक्रान्ति के बाद नहीं की जाती है। इसे सिर्फ किताब पढ़कर नहीं करना चाहिए। आखिर यह साधना है, बिना गुरु के नहीं करनी चाहिये।

– 16 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 12

हर धर्म और सम्प्रदाय के अपने निश्चित विधि-विधान होते हैं और भारत में तुमको उनका सम्मान करना होगा। तुम उन पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकते। सबके लिये एक प्रकार के नियम नहीं हो सकते। यदि एक ही प्रकार के नियम सबके लिये बना दोगे तो वह तानाशाही हो जायेगा। किसी भी देश या समाज में विविधता होनी चाहिये और विविधता में ही एकता की अनुभूति प्राप्त करनी चाहिये।

यहाँ देवघर के वैद्यनाथ मन्दिर में कोई भी बेरोक-टोक जा सकता है। मुसलमान भी जा सकते हैं और ईसाई भी। इसी प्रकार भारत में और भी कई मन्दिर हैं जहाँ कोई भी प्रवेश पा सकता है, लेकिन कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ हर कोई नहीं जा सकता। इसके कारण भी हैं। जगन्नाथपुरी में वैष्णव मन्दिर है, वहाँ भगवान कृष्ण अपनी बहन सुभद्रा और भाई बलराम जी के साथ विराजमान हैं। वैष्णव मत के नियमानुसार तुम अपने शरीर पर चमड़े की बेल्ट, जूते वगैरह धारण नहीं कर सकते, क्योंकि वे पशु-चर्म से निर्मित होते हैं। वैष्णव परम्परा में पशु-चर्म से निर्मित कोई सामग्री मन्दिर में प्रवेश नहीं पा सकती। यह इसलिये कि निरीह पशुओं की, विशेषकर गो-धन की हत्या न की जाये। मोटेतौर पर यह दर्शन पशु-धन की सुरक्षा पर आधारित है। लोग पशुओं की हत्या करके उनके चमड़े से जूते-चप्पल तैयार करते हैं और हम-तुम उन्हें खरीद कर उपयोग में लाते हैं, लेकिन इस दर्शन के माध्यम से पशु-वध पर नियंत्रण होता है।

दूसरा नियम यह जान लो कि स्नान करके ही देवालय में प्रवेश करना है। वैष्णवों के लिये यह परमावश्यक शर्त है। वैष्णव प्रातःकाल शौच कर लेता

है। वह ऐसा नहीं कह सकता कि दिन में दो बजे स्नान करूँगा या बिना शौच के ही दिन भर रह लूँगा। सर्वप्रथम प्रातः उसे शौच करना है और तब उसके बाद चाय, दूध या अल्पाहार ग्रहण करना है। यदि मांसाहारी को किसी दिन देवालय जाना है तो उस दिन उसे मांसाहार नहीं ग्रहण करना है।

ये कुछ नियम हैं जिनका पालन हिन्दू करते हैं, क्योंकि बचपन से ही उन्हें इसकी शिक्षा प्राप्त रहती है। दूसरों में इस प्रकार के नियम नहीं हैं। वे गिरजाघर में जूते-चप्पल पहनकर बे-खटके जा सकते हैं। इस कारण वे यह समझ नहीं पाते कि जगन्नाथ मन्दिर में चमड़े के थैले आदि लेकर जाने से क्यों मना किया



जाता है। वे यह भी नहीं समझ सकते कि मांस खाकर मन्दिर में क्यों नहीं जाना चाहिये, इसलिये वे इस प्रकार के प्रश्न पूछ बैठते हैं कि चर्म-निर्मित सामग्री के साथ मन्दिर में प्रवेश क्यों वर्जित है? कोई हिन्दू यह प्रश्न नहीं करता है।

तीसरा नियम यह है कि रजस्वला स्त्रियाँ वैष्णव मन्दिर में या तुलसी-चौरा के पास नहीं जातीं। यहाँ इन सारे नियमों को लोग बखूबी जानते हैं क्योंकि ये नियम उनके मन में रस-बस गये हैं। धर्माचार्यों ने एक सामान्य नियम बना दिया है जिसका अनुसरण सबको करना है। पूरे इतिहास में, कम-से-कम 5000 वर्षों के ऐतिहासिक काल में एक ही धर्म है जिसमें शाकाहार को प्रचारित किया गया है। दूसरे धर्मों में इसका कोई महत्त्व नहीं है। तुम शाकाहारी हो कि मांसाहारी, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम मदिरा पान करो या न करो, कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु हिन्दू धर्म में ऐसा नहीं हो सकता। इसके पीछे 5000 वर्षों का इतिहास है।

हाँ, भारत में ऐसे मन्दिर भी हैं जहाँ पशु-बलि की प्रथा प्रचलित है, लेकिन वे शाक्त सम्प्रदाय के लोग हैं, वैष्णव नहीं। कलकत्ते के काली मन्दिर में बकरों की बलि दी जाती है। शाक्त बलि देते हैं और मांसाहार करते हैं। यह अलग सम्प्रदाय है। भारत में पाँच मुख्य सम्प्रदाय थे – शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य, जिनमें से अंतिम दो समाप्त हो गये। अब तीन महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय शेष हैं। वैष्णव सम्प्रदाय से ही दो महान् धर्मों, जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों धर्मों के अनुयायी शाकाहारी हुये। वे पशु-बलि के खिलाफ बराबर आवाज लगाते रहे हैं, वे अहिंसावादी हैं।

नेपाल के पशुपतिनाथ मन्दिर में भी गैर-हिन्दू नहीं जा सकते, ऐसा क्यों?

हाँ, पशुपतिनाथ मन्दिर में यह नियम है। भारत में भी ऐसे कई मन्दिर हैं जहाँ गैर-हिन्दू नहीं जा सकते। पारसियों के देवालय में भी अन्य धर्मावलम्बी नहीं जा सकते। भारत में एक बड़ी शक्तिशाली संन्यास परम्परा का मैं गुरु हूँ, लेकिन मुझे भी पारसी मन्दिर में प्रवेश नहीं मिलेगा क्योंकि मैं पारसी नहीं हूँ। मैंने एक बार पारसी मन्दिर में प्रवेश के लिये प्रयास किया था। पारसी सम्प्रदाय के लोगों ने मेरे प्रवेश का अनुमोदन भी किया था, लेकिन पुजारी ने मना कर दिया, बताया कि यही नियम है। पुजारी मेरा मित्र है, बहुत-से पारसी परिवार भी मेरे मित्र हैं, लेकिन पारसी पूजा-गृह में दूसरों का प्रवेश वर्जित है, इसलिये आज

तक मैंने पारसी मन्दिर नहीं देखा। इसलिए हमे नियमों को मानना चाहिये। परम्पराओं को भंग करने का कोई अभिप्राय नहीं है। हिंदू शव को जला देते हैं, ईसाई और मुसलमान मिट्टी के अन्दर दफना देते हैं और पारसी लोग अपने शान्ति स्तूप पर डाल देते हैं। इस प्रकार विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न परम्परायें हैं। पारसी परम्परा में शव को नष्ट नहीं करते।

शाकाहार और मांसाहार में क्या भेद है? आखिर पौधों का भी विकास होता है, उनमें भी प्राण हैं, फिर उन्हें क्यों काटते हैं?

शाकाहार और मांसाहार के बारे में तुम्हारी सोच अलग है। तुम जीवन के बारे में सोचते हो, जबकि शाकाहार करने और मांसाहार न करने का बड़ा सीधा कारण है। शेर, बाघ, चीता, तेन्दुआ, ये सब मांसाहारी जानवर हैं। एक बाघ दूसरे मरे हुए बाघ का मांस नहीं खाता। शेर, चीता या तेन्दुआ भी इसी तरह करते हैं। वे हिरण या गाय-भैंस की तलाश में रहते हैं। ये पशु घास खाते हैं। मांसाहारी जानवर ऐसे पशुओं का शिकार करते हैं जो शाकाहारी हैं। वे मांसाहारी पशु का शिकार नहीं करते। ऐसा क्यों? इसलिए कि मांसाहारी पशुओं के शरीर में रोगाणुओं और विषाणुओं की भरमार रहती है और उनका मांस भी स्वादिष्ट नहीं होता। अगर तुम किसी कुत्ते को भेड़ का मांस दोगे तो वह खायेगा, लेकिन उसके सामने शेर का मांस परोस दो तो नहीं खायेगा। पशुओं के शरीर में बहुत-से रोग होते हैं, मानव-शरीर से कहीं अधिक। तुम उन्हें नंगी आँखों से तो नहीं देख सकते। पशुओं के रसायन भी भिन्न हैं। पशु-मांस का आहार करके तुम पशु-शरीर के रसायनों का आहार करते हो, उन्हें अपने शरीर में अवशोषित करते हो। यही कारण है कि शाकाहार और मांसाहार में बड़ा भेद है।

दूसरी बात यह कि जब तुम पशु-वध करते हो तो प्राकृतिक संतुलन को विचलित करते हो। इस धरती पर पाँच अरब लोग रहते हैं। अगर एक अरब लोगों का आहार पशु-मांस हो तो सारा पशु-जगत् नष्ट हो जायेगा। पालक, बैंगन या टमाटर पैदा करने में दो-तीन महीने लगते हैं और बड़ी मात्रा में हरी सब्जियाँ प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन एक जानवर को तैयार करने में कई साल लग जाते हैं। इस प्रकार पशु जगत् और वनस्पति जगत् के विकास में भिन्नता है। दोनों का गणित भिन्न है, और अगर हर आदमी मांसाहारी बन जाये तो

प्रकृति में अव्यवस्था फैल जायेगी। सभी जीव प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखने में मदद करते हैं। अगर तुम सभी सांपों को मार दोगे तो चूहों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी, मेंढकों की बाढ़ आ जायेगी। अगर तुम बाघ मार दोगे तो हिरणों की संख्या बढ़ जायेगी। वे एक दूसरे को सन्तुलित करते हैं। यही प्राकृतिक सन्तुलन है, प्रकृति के द्वारा प्रकृति का सन्तुलन।

मनुष्य को जीवन धारण करना है तो उसके लिये कुछ आहार तो लेना ही है। अगर तुम्हें अलास्का या ग्रीनलैण्ड या नॉर्वे के उत्तर भाग में जाना पड़े तो क्या करोगे? वहाँ के लोग कैसे रहते हैं? वे मछलियाँ खाकर जीते हैं, क्योंकि वहाँ कुछ और नहीं होता। यूरोप के देशों में भी एक-दो हजार साल पहले मांसाहार करना पड़ता था, क्योंकि वहाँ कोई फसल नहीं होती थी, बर्फ-ही-बर्फ थी। पेड़ों से पत्तियाँ झड़ जाती थीं, वे नंगे हो जाते थे। कुछ होता ही नहीं था वहाँ। अब तो परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। अब वहाँ ग्रीन-हाऊस हैं, जिनमें फसलें होती हैं और बहुत-सी चीजें विदेशों से आयात भी करते हैं। अफ्रीका, एशिया और भारत से बड़ी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करते हैं।

इसलिये जहाँ मांसाहार की आवश्यकता होती है, वहाँ लोग मांस-भक्षण ही करते हैं। भारत में भी सभी लोग शाकाहारी नहीं हैं, मांसाहार करने वाले लोग भी हैं। पंजाबी, सिन्धी और बंगाली लोग मांसाहारी होते हैं। प्राचीन भारत में ब्राह्मणों को भोज का निमंत्रण मिलता था तो उसमें मांसाहार अनिवार्य माना जाता था। हम लोग मांसाहार के विरुद्ध नहीं बोलते, तुम्हारा धर्म मांसाहार के विरुद्ध नहीं बोलता, बस इतना है कि शाकाहार मानव-शरीर के लिये उपयुक्त आहार है। ऐसा भी कह सकते हो कि मानव शरीर शाकाहार के लिये ही उपयुक्त है।

ऐसा क्यों? इसके प्रमाण हैं। सबसे पहले पशुओं के दाँतों को देखो। मांसाहारी जानवरों के दाँत नुकीले और तीखे होते हैं। तुम्हारे दाँत वैसे नहीं होते, बल्कि गाय, घोड़ा, बकरी, हिरण और ऊँट जैसे शाकाहारी पशुओं के दाँत जैसे होते हैं। हमारे दाँत चबाने वाले दाँत होते हैं, कुत्तों के दाँत चबाने वाले दाँत नहीं होते। उनके दाँत तोड़ने वाले और चीरफाड़ करने वाले होते हैं। यह एक प्रमाण है कि हमारा शरीर शाकाहारी शरीर है।

दूसरा प्रमाण आँतों का है। सभी मांसाहारी पशुओं की आँतें छोटी होती है, जबकि सभी शाकाहारी जीवों की, मनुष्यों की आँतें बड़ी लम्बी होती हैं। यह

प्रकृति का विधान है। इसलिए भी हमारा शरीर शाकाहारी है। तीसरा प्रमाण पेट की अम्लता का है। प्रकृति ने कुत्ते का शरीर मांसाहारी बनाया है। सभी मांसाहारी पशु कुत्ते की भाँति आहार को चबाकर नहीं खाते, निगल कर खाते हैं। हड्डियों को भी निगल जाते हैं। हड्डियों का क्या होता है? उनके पेट में हाइड्रोक्लोरिक एसिड का ऐसा घनत्व होता है कि हड्डियाँ वहाँ जाकर पिघल जाती हैं, अवशोषित हो जाती हैं। यदि ऐसी अम्लता हमारे पाचन संस्थान में प्रकट हो जाये तो पेप्टिक अल्सर का रूप ले लेती है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड में थोड़ी वृद्धि होते ही गैस्ट्रिक समस्या होने लगती है।

अगर तुम्हारा धर्म स्वीकार करता है कि मांसाहार करना चाहिये तो इसमें कोई बुराई नहीं है। यह धर्म-शास्त्र के अनुकूल आचरण है। यौनाचरण में भी दोष नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति प्रदत्त आचरण है। सभी प्राणियों के लिये प्रकृति ने यौनाचरण का विधान किया है, मानव इस नियम का अपवाद नहीं है। मगर यह भी है कि अगर तुम इसका त्याग कर सके तो जीवन में इसके अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे –

न मांसभक्षणे दोषः न मद्ये न च मैथुने।
एषा प्रवृत्ति भूतानां त्यागः तु महाफलम्॥

त्याग में महाफल है। यही उदार और सहिष्णु दृष्टि जीवन में अपनानी चाहिये। मांसाहार त्याग की बात कोई धर्म नहीं करेगा, हालाँकि हमारा शरीर मांसाहार के अनुकूल नहीं है।

जो लोग मांसाहार से परहेज करने की हिदायत देते हैं वे दूध क्यों पीते हैं? आखिर दूध भी तो गाय के थन से प्राप्त होता है न?

ऐसी बात नहीं है। इसको वैज्ञानिक दृष्टि से देखो। गाय का दूध भेड़ के मांस या गो-मांस से निश्चय ही भिन्न है। दूध के घटक गो-मांस के घटकों से भिन्न होते हैं। तुम गाय का मांस खाओ या गाय का दूध पीयो, तुम दो अलग प्रकार की चीजें ले रहे हो। गाय का दूध माँ के दूध के समान होता है। उसमें कैल्शियम होता है, प्रोटीन्स और अन्य पोषक तत्त्व होते हैं, जो बच्चों के पोषण के लिये आवश्यक होते हैं। बच्चों को गाय का दूध दोगे तो लाभ होगा और यदि गो-मांस खिला दोगे तो नमो नारायण हो जायेगा।

यह तर्क-वितर्क का प्रश्न नहीं है, यह सामान्य बुद्धि की बात है। यह जीव-हत्या की बात भी नहीं है, आखिर तुम हर पल, हर क्षण जीव-हत्या कर रहे हो। अभी भी तुम्हारे इर्द-गिर्द कितने जीवाणु घूम रहे हैं जिनकी हत्या तुम कर रहे हो। यह सामान्य ज्ञान की बात है और सामान्य ज्ञान यही कहता है कि जरूरत से ज्यादा प्राणियों का नाश कर हम प्राकृतिक सन्तुलन को न बिगाड़ें। तुम मांसाहार करो, पर नियंत्रित और सन्तुलित ढंग से करो। बिना जाँच-पड़ताल के मांस का सेवन मत करो क्योंकि पशुओं के शरीर में बहुत सारे रोगाणु हो सकते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य वैज्ञानिकों की दृष्टि में आ रहा है। जब तुम मांस खाते हो तो तुम्हारे शरीर में पशु का डी.एन.ए. स्थानान्तरित होता है। जीन्स का विनाश नहीं होता। दस लाख वर्ष पुराना मच्छर फॉसिल्स में पाया गया है। तुमने जुरैसिक पार्क फिल्म देखी होगी। फॉसिल में मच्छर पाया गया था और उससे डायनोसॉर का डी.एन.ए. निकाला गया। यह तो एक फिल्म है, लेकिन इतना तो सच है कि डी.एन.ए. लम्बे समय तक रहता है। मांस-भक्षण से उस डी.एन.ए. का पशु से मानव शरीर में स्थानान्तरण हो सकता है जिससे शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

भौतिक दृष्टि से आपने इसकी व्याख्या कर दी, परन्तु इस सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?

मानव की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है – सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। मुख्य रूप से तामसिक लोग मांसाहार करते हैं। उन्हें मांसाहार और मदिरापान अच्छा लगता है। राजसिक वृत्ति वाले लोग मांसाहार और शाकाहार दोनों करेंगे, लेकिन सात्त्विक कोटि के लोग शुद्ध शाकाहारी होंगे। शाकाहार उत्तम आहार है, क्योंकि उससे पाचन सम्बन्धी उपद्रव नहीं होता।

वैसे आहार एक विवादास्पद विषय है। श्रीकृष्ण शुद्ध शाकाहारी थे। वे दूध, मक्खन, पनीर और रोटी खाते थे। आजीवन यही उनका आहार था। श्रीराम मांसाहारी थे, सीताजी मांसाहारी थीं। इसलिये आहार के आधार पर आध्यात्मिक विकास-क्रम का निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

आध्यात्मिक विकास मानवीय विकास से भिन्न है। तुम ग्रीक हो सकते हो, तुम हिन्दू हो सकते हो, तुम चीनी हो सकते हो, तुम जूता बनाने वाला चर्मकार हो सकते हो, तुम लौहार हो सकते हो या स्वर्णकार हो सकते हो। आध्यात्मिक

विकास मनुष्य के विभिन्न आयामों के विकास पर निर्भर करता है। इसी मानव शरीर में आत्मा का निवास है, लेकिन आत्मा शरीर से भिन्न है। शरीर आत्मा को प्रभावित नहीं करता। शाकाहारी व्यक्ति तस्कर, हत्यारा या चोर हो सकता है जबकि मांसाहारी व्यक्ति बहुत उदार, दयावान् और करुणावान् हो सकता है। इसलिये आध्यात्मिक जीवन का मूल्यांकन अन्य मानदण्डों पर करना चाहिये।

आत्मा अमर है, अजन्मा है। वह निर्मुक्त है, सदा द्युतिमान है। वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, अन्धकार का नामोनिशान नहीं। वहाँ ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित है। यही सामान्य धारणा है आत्मा के बारे में। आत्मा अविनाशी है, शरीर नाशवान है। आत्मा कभी रोगग्रस्त नहीं होती। वह सदा देदीप्यमान रहती है, जबकि रोग, बीमारी और मृत्यु शरीर का धर्म है। इस प्रकार शरीर और आत्मा की प्रकृति भिन्न है। इसलिये वेदान्त में कहा जाता है, 'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ।' यहाँ मैं से मतलब है आत्मा, इस शरीर के भीतर वास करने वाला आत्मतत्त्व जिसको हम नहीं जानते हैं।

हमे बताया गया है कि शरीर के भीतर आत्मा का निवास है, लेकिन किसी ने इसका अनुभव नहीं किया है। वह अनुभव तभी प्राप्त होता है जब ईश्वर-कृपा होती है। सिर्फ भगवत् कृपा से आत्मानुभूति होती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं। जब प्रभु की इच्छा होगी तभी उस आत्मा की झलक तुम्हें प्राप्त होगी। लेकिन फिर भी लोग साधना करते हैं, जप करते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, तपस्या करते हैं, त्याग और संयम करते हैं, तीर्थाटन करते हैं, सात्त्विक जीवन अपनाते हैं, आखिर क्यों? इन कर्मों से हमें मानसिक बल प्राप्त होता है। अगर तुम कुछ नहीं करोगे, कोई जप-तप नहीं करोगे, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करोगे, आध्यात्मिक जीवन नहीं जीयोगे तो तुम्हें बुरा लगेगा। तुम्हें लगेगा, 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, मैं लाचार और पंगु हूँ।' तुम अवसादग्रस्त हो जाओगे। अपने व्यक्तित्व को आश्वस्त और सन्तुष्ट रखने के लिये हम साधना करते हैं, लेकिन एक बात हमेशा याद रखो कि आत्मप्रकाश तुम्हें तभी प्राप्त होगा जब भगवत् कृपा तुम पर होगी। उसकी इच्छा के बिना तुम्हें कुछ भी मिलने वाला नहीं।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

ऐसा माना जाता है कि जब लड़की की शादी हो जाती है तो वह अपना अस्तित्व पति में खो देती है। यह गलत मान्यता है। तुम तुम हो, तुम्हारा पति

तुम्हारा पति है। तुम दोनों के बीच एक सामाजिक सम्बन्ध है, एक साथ रहने के लिये। तुम और तुम्हारे पति समाज में एक साथ रह सकें, इसी के लिये नियम बनाया गया है। पर इसका मतलब यह नहीं होता कि तुम्हारा निजी अस्तित्व ही नहीं रहा। लड़की गिडवानी परिवार में पैदा हुई, शादी के पहले तक गिडवानी परिवार में रही और शादी के बाद हीरानन्दानी परिवार में गयी तो गिडवानी मर गया, हीरानन्दानी बन गई। यह कौन-सा तरीका है? वह जो पहले थी आज भी है।

स्त्री का अपना अस्तित्व है और पुरुष का भी अपना अस्तित्व है। उसके दो हाथ-पैर हैं और तुम्हारे भी। उसकी भी एक खोपड़ी है, तुम्हारी भी। वह भी सुयोग्य है, तुम भी सुयोग्य हो, दोनों में समान योग्यता है, फिर दोनों के लिये कानून अलग क्यों? पैतृक सम्पत्ति पाने का कानून अलग है। पैतृक सम्पत्ति का अधिकार लड़के का होता है, लड़की का नहीं। इसलिये जब लड़की जाती है तो अपने साथ दहेज ले जाती है। यह एक और खराब प्रथा है। जिस लड़की की अपनी सम्पत्ति है, बैंक में अपने पैसे हैं, वह शादी करेगी तो दहेज तो लेगी नहीं। वह अपने पैसे लेकर जा रही है। वह उसकी अपनी सम्पत्ति है, दहेज नहीं है।

अगर आज हमारी लड़की के पास पाँच बीघा जमीन हो, पाँच लाख बैंक बैलेन्स हो और वह किसी लड़के से शादी करे तो वह अपनी सम्पत्ति साथ ले जायेगी। वह उसी की है, हमको देने की क्या जरूरत है? बाप बेटी की शादी के लिये अपनी जेब से पैसे क्यों निकालेगा? बेटी कमाये और शादी करे, और जो लड़की कमा नहीं सकती वह घर-गृहस्थी कैसे चला सकती है? वह तो वहाँ नौकरानी की तरह रहेगी। घर में औरतें करती क्या हैं? खाना बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, बर्तन माँजती है, झाड़ू लगाती हैं। और क्या करती हैं? यह काम तो 600 रुपये में हिन्दुस्तान की नौकरानी कर लेती है। घर में हम 600 रुपये में नौकरानी रखें तो यह सब काम कर लेगी। अब 600 रुपये की नौकरानी के लिये हम किसी से शादी क्यों करें?

शादी इसलिए की जाती है कि स्त्री-पुरुष के बीच एक स्नेह होता है, एक भाव होता है, मित्रता की भावना होती है। पति-पत्नी एक-दूसरे के दोस्त होते हैं, और मित्र की तरह ही उन्हें रहना चाहिये। मित्रों में कोई बड़ा या छोटा नहीं होता, बराबरी की भावना रहती है। पति और पत्नी के बीच बड़ा और छोटा हमारे समाज के कारण होता है। पति बड़ा माना जाता है और पत्नी

छोटी समझी जाती है। सामाजिक और कानूनी, दोनों दृष्टियों से ऐसा नहीं होना चाहिये। तब मित्रता कहाँ रही? जब तुम बड़े और हम छोटे या हम बड़े और तुम छोटे, तब हम दोस्त कैसे हो सकते हैं? दोस्ती तो बराबरी में होती है।

पत्नी ही पति की बात क्यों सुने? दोनों को अपने-अपने विचार रखने का हक है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को मित्रता का सम्बन्ध मानना चाहिये। जब तक दो व्यक्तियों के बीच परिपक्वता नहीं आती तब तक शादी का कोई मतलब नहीं। शादी केवल बच्चे पैदा करने के लिये नहीं की जाती है। आजकल विज्ञान के सहारे बच्चा बिना शादी के भी हो जाता है, 'सरोगेट बेबी' जिसको कहते हैं।

शादी की जाती है दो प्राणियों के जीवनभर एक साथ रहने और अच्छी तरह से जीवन निर्वाह करने के लिये, नहीं तो अकेलापन महसूस होता है। दोनों को अकेलापन महसूस होता है, यह मनुष्य की कमजोरी है। यदि तुम्हारे साथ कोई नहीं है तो तुम अकेलापन महसूस करते हो। इस एकाकीपन को दूर करने के लिये स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक होकर आपस में मिलते हैं। हम तो वेदों की बात बोल रहे हैं। यह वेदों में लिखा है, इसलिये आप लोग परिवार बसाओ, सद्विचारों को जगाओ और अपने जीवन को एक नयी दिशा दो। किसी को तो आगे आना होगा, पहल करनी पड़ेगी। आखिर समाज किसको कहते हैं? समाज की परिभाषा क्या है? समाज किसी आदमी का नाम है क्या? समाज नाम की तो कोई वस्तु है ही नहीं। चार आदमी एक जगह बैठ गये तो समाज हो गया। इसका मतलब है समाज को बनाने के लिये पहले अपनी खोपड़ी को बनाना होगा, अपने विचारों का मंथन करना होगा।

हम अपने देश की बात करते हैं। जरूर हमने कहीं गलती की है। अगर हम गलत नहीं होते तो हमारा देश आज इतना अशिक्षित नहीं होता। सत्तर प्रतिशत लोग यहाँ अशिक्षित हैं। अगर हम आज सही रास्ते पर होते तो हमारे देश में भयंकर गरीबी क्यों होती? भौतिक अधिकारों को छोड़ो, हमारे देश में लोगों को कोई अधिकार नहीं है। यहाँ खाने को नहीं मिलता। हम तो गाँव-गाँव घूम आये हैं, हमने देखा है घरों में खाने को कुछ नहीं है, इतनी गरीबी है! जिस देश के निवासियों को स्वच्छ जल न मिले, कम-से-कम एक जून खाना न मिले, रहने के लिये छत न मिले, जहाँ स्त्रियों को साफ-सफाई का ज्ञान न हो, वह सभ्यता कैसी, और वह समाज कैसा? उसे तुम ऊँचा कहते हो? तुम्हारे पूर्वजों ने रामायण और भागवत जैसे ग्रंथ लिख दिये, इसलिये तुम बड़े हो गये? तुम्हारे पूर्वज बड़े

ऋषि-मुनि थे, तुम्हारे देश में दूध की नदियाँ बहती थीं, तुम्हारा देश सोने की चिड़िया कहलाता था, यह मानने के लिये हम तैयार हैं, पर आज ऐसा नहीं है।

यहाँ हिन्दुस्तान में आम औरत गँवार है, पढ़ी-लिखी नहीं है। मर्दों की भी यही स्थिति है। उन्हें बीस-तीस रुपये मजदूरी मिलती है। इतने में किसी का पेट भरता है क्या? गरीबी समाज पर सबसे बड़ा कलंक है। फिर भी तुम कहते हो कि हम ठीक हैं। सारे शरीर में फोड़े हैं और तुम बोलते हो हम बिलकुल ठीक हैं। शरीर का तापमान 102-103 डिग्री है और तुम पूछते हो 'कैसी हो बेटी?' तो बेटी बोलती है, 'मैं ठीक हूँ पापा।' तुम यह कैसे बोल सकती हो? तुम बीमार हो, तुम्हारा समाज बीमार है। स्त्रियों के साथ अन्याय होता है, अत्याचार होता है उन पर। तुम्हारी सारी सामाजिक व्यवस्था अन्याय पर टिकी है। उसको बदलने के लिये पढ़े-लिखे लोगों को आगे आना होगा और साफ-साफ बात बोलनी होगी।

जो भी देश आज उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं वे आज दुनिया में राज कर रहे हैं, उन्होंने ही डब्ल्यू. टी. ओ. या इन्टलेक्चुअल प्रॉपर्टी राईट्स जैसे व्यापार आदि पर कानून बनाये हैं जो सबको मानने पड़ रहे हैं। यह कौन कर रहा है, तुम लोग कर रहे हो? जिनके पास पैसे हैं, जो धनवान हैं वे लोग करा रहे हैं। तुमको उनकी बात माननी पड़ेगी। तुमको हस्ताक्षर करना पड़ेगा. क्योंकि शक्ति है उनके पास। याद रखो शक्ति उनके पास होती है जिनके समाज में स्त्री और पुरुष समान रूप से शक्तिशाली हैं। तुम्हारा एक पैर टूटा है। हिन्दुस्तान का बायाँ पैर टूटा है, यह लंगड़ा राष्ट्र है।

इसलिये सबसे पहले तुम लोगों को मालूम होना चाहिये कि गृहस्थ जीवन किसको कहते हैं। गृहस्थ जीवन बाजा बजाना और लड़की को लेकर नाचना नहीं है। लड़की जब दूसरे घर में जाती है तो अपना अस्तित्व लेकर जाती है। वह अपना अस्तित्व बनाकर रखती है वहाँ, यह मेरा घर है। लड़की के अधिकार, चाहे वे पैतृक सम्पत्ति से सम्बन्धित हों या अन्य क्षेत्रों से, वे निश्चित होना चाहिये। उसकी बात मानी जानी चाहिये। औरतों की गलतियों के लिये भी वही कानून होना चाहिये जो पुरुषों के लिये है। मर्द गलती करें तो सब माफ, स्त्री गलती करे तो? औरत विधवा हो तो सफेद कपड़े पहनती है, और मर्द विधुर होता है तो? ये दो कानून बन गये न? जिस समाज में दो व्यक्तियों के लिये दो कानून हों वह समाज खोखला है।

यह हुई समाज की बात, अब रही आध्यात्मिकता की बात। मैं विदेश में किसी भी हिन्दुस्तानी के यहाँ नहीं ठहरता था। एक-दो बार ठहरा, फिर कान पकड़ लिया। मैं ईसाइयों के बीच ही ठहरता था। क्यों? इसलिए कि उनके यहाँ स्त्री और पुरुष बराबर होते हैं और अध्यात्म में उनकी मान्यता है। वे मेरे पास इसलिये नहीं आते थे कि उनको बेटा, बेटी या नौकरी चाहिये। वे नहीं कहते, 'मैं गरीब हूँ, मुझे साड़ी चाहिये, मुझे धोती चाहिये।' बिलकुल नहीं। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, पुनर्जन्म क्या है, शास्त्र क्या है, वेद क्या है, वे लोग यही सब प्रश्न पूछते थे। इसलिए हमेशा मैं ईसाइयों के बीच रहता था। एकाध बार सिन्धियों के पास ठहरा था, फिर कान पकड़ लिया। जो हिन्दुस्तानी विदेश जाता है महाभौतिकवादी बन जाता है। उसका दिमाग टी. वी., ट्रान्जिस्टर, रेडियो, सी. डी., कार, बढ़िया कपड़े, बढ़िया घड़ी वगैरह में ही उलझा रहता है। इतना खर्च करते हैं वे अपने ऊपर, बेशुमार खर्चा। वे हमेशा अपने घर में ठहरने को कहते, पर हम जवाब दे देते कि हम किसी के घर में नहीं ठहरते हैं, हम तो साधु हैं। पूछते थे, 'स्वामीजी, आपको होटल में कैसे अच्छा लगेगा? यह आपका ही तो घर है।' मैं कह देता था, 'नहीं-नहीं!'

स्त्री को आदिकाल से ही अबला क्यों कहा गया है?

स्त्री को अबला कभी नहीं कहा गया है। देवी भागवत पढ़ो, वेदों को पढ़ो। लोग क्या कहते हैं उस पर ध्यान न दो। तुमने शास्त्र पढ़ा है क्या, वेद पढ़ा है क्या? ऋग्वेद पढ़ो, सामवेद पढ़ो, अथर्ववेद पढ़ो, उपनिषद् पढ़ो। हमारे यहाँ तो शादी की प्रथा थी नहीं, स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर यानि खुद चुनो। हमारे यहाँ स्त्री को इतने अधिकार प्राप्त थे कि वह खुद चुन कर शादी करे, अथवा किसी से प्रेम हो जाये, उससे बच्चा पैदा हो जाये तो उसके लिये भी निश्चित नियम थे। विश्वामित्र मुनि का मेनका के साथ सम्बन्ध हुआ तो एक बेटी पैदा हुई। उसका नाम था शकुन्तला और वह कण्व के यहाँ पली। कण्व भी ऋषि थे।

राजा दुष्यन्त इक्ष्वाकु वंश का शक्तिशाली राजा था। उसके साथ शकुन्तला का सम्बन्ध हो गया शादी के पहले ही। शादी के पहले वह गर्भवती हो गयी, उसको भरत नाम का एक पुत्र हुआ। उसी भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ। किसी ने नहीं कहा कि 'अरे! यह तो अवैध औलाद है।' किसी ने नहीं कहा कि एक साधु की अवैध बेटी विवाहपूर्व गर्भवती हो गई और

उसका बेटा जायज पुत्र नहीं है। भारत के लोग इतने उदार थे कि इस देश का नाम ही उस अवैध सन्तान के नाम पर भारत रख दिया। यह तुम्हारी संस्कृति का परिचय देता है कि तुम्हारे देश के लोग कैसे थे और क्या करते थे?

देवी भागवत में तो स्पष्ट लिखा है कि सृष्टि को बनाने वाली जो शक्ति है वह आद्या शक्ति है, वही जगज्जननी है। उसी शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और शिव पैदा हुये। जब राजा दशरथ लड़ाई के लिये गये तो कैकई भी साथ में गयी। उनके साथ उनकी प्रेमिका बनकर तो गयी नहीं थी। उनकी सारथिन बनकर गयी थी। उनके रथ का संचालन कर रही थी। ऐसी बहुत-सी कहानियाँ हैं, उनको पढ़ो। गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा की कहानियाँ पढ़ो। यह तो बीच में ऐसा हो गया कि हमारे देश में राजा-महाराजा भोग-विलास में निरत हो गये और दूसरी जातियाँ आने लग गयीं। फिर औरतों पर अत्याचार होने लगा, शिक्षा कम हो गयी और उनके गिरावट का दौर शुरू हो गया।

जैसी सरकार होगी वैसा ही समाज बनता है। पहले मुगल सरकार थी तो परदा आ गया, क्योंकि मुगलों के यहाँ परदा रखा जाता था। आज हम आधुनिक हो गये हैं तो लड़कियों के सिर से परदा हट गया। इतना ही फर्क पड़ता है। समाज को बनाने में राजा का असर पड़ता है। जैसी सभ्यता आयेगी वैसा ही समाज बनेगा। आज हम लोग जिस युग में रह रहे हैं उस युग में यह कहा जाता है कि जब तक स्त्रियाँ विदुषी नहीं होंगी, विद्वत्ता प्राप्त नहीं करेंगी, तब तक समाज की उन्नति नहीं हो सकती है। कारण यह कि स्त्रियाँ हमारे समाज का पचास प्रतिशत हिस्सा हैं। स्त्री-पुरुष में समान शक्ति होगी तब हमारे समाज में धन-धान्य की वृद्धि होगी, सभी चीजों की उन्नति होगी। नहीं तो कुछ नहीं होगा। सरकार कितने भी प्रोग्राम बनाये, कभी भी गरीबी दूर नहीं होगी।

गरीबी दूर करने के लिये स्त्री पर अन्याय और अत्याचार बन्द करना होगा। साथ ही लड़कियों को जमकर पढ़ाना होगा अठारह-बीस साल तक। अठारह साल तक पढ़ाओ, जिसको जो बोलना है बोले। कौन परवाह करता है? पढ़ाकर उससे बैंक में काम कराओ, कॉलेज में व्याख्याता बनवाओ। इस बीच यदि किसी से उसका मन लग जाये तो शादी कर दो। जात-पात देखने की जरूरत ही क्या है? यह जाति-प्रथा राजनैतिक लोगों ने बनायी है। तुम तो देख रहे हो आँखों के सामने। जाति तो यही लोग बनाते हैं वोट खींचने के



लिये। वरना जात-पात नाम की कोई चीज होती नहीं है। सभी मनुष्य एक ही जाति के हैं। दो पैर, दो हाथ, दाढ़ी-मूँछें, खाना-पीना, टट्टी-पेशाब, बाल-बच्चे, सब तो एक ही जैसे हैं। कोई फर्क देखते हो क्या?

इसलिये जरूरी है कि आप लोग लड़के-लड़कियों को खूब पढ़ायें, फिर उसके बाद बोलना, 'बेटा! शादी करके अपना घर बसाओ और हम जा रहे हैं रिखिया। रिखिया जाकर वहाँ मकान बनायेंगे, वानप्रस्थ जीवन यापन करेंगे, कुछ भजन-कीर्तन करेंगे, सेवा करेंगे। बाकी काम तुम करो। यह हमारी ड्यूटी नहीं है।' मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का वितरण-विभाजन करना चाहिये। तीर्थाटन करते हो तो वहाँ पैसे खर्च करते हो। इससे दुकानदारों का, पण्डे-पुजारियों का पेट भरता है। फिर सम्पत्ति का एक दूसरा हिस्सा है जो अनाथों के लिये होता है, क्योंकि हर समाज में कमजोर लोग होते हैं, बीमार लोग रहते हैं, इनकी मदद भी तो किसी को करनी होगी। अमेरिका-इंग्लैण्ड में लोग मल्टीपल-स्क्लेरोसिस से अपंग नहीं हैं क्या? वहाँ लोग अन्धे नहीं होते क्या? ऐसे लोग सब जगह हैं। संस्थाएँ उनकी मदद करती हैं। मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा कमजोर लोगों के लिये, एक हिस्सा साधुओं के लिये, एक हिस्सा गरीबों की सेवा के लिये और एक हिस्सा परिवार के लिये विभाजित करना चाहिये। यही सम्पत्ति के विभाजन और वितरण का तरीका है।

– 17 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 13

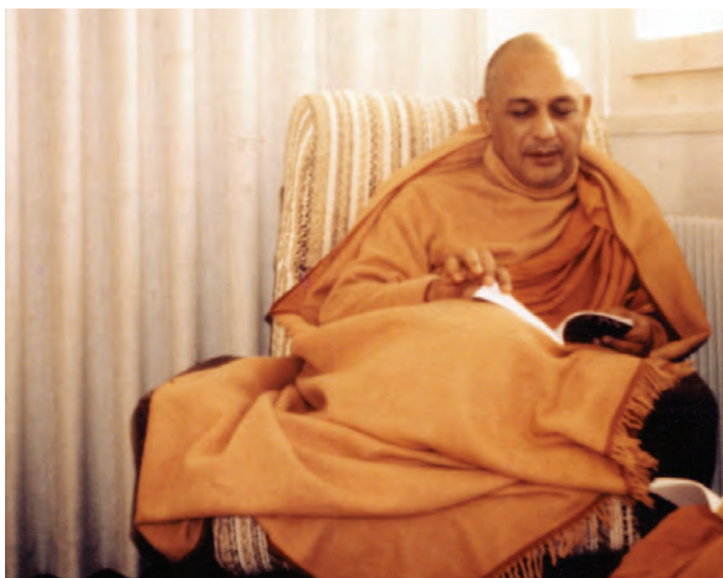
श्रद्धा और विश्वास

भगवान हर एक के लिये एक पहेली है, एक समस्या है, क्योंकि किसी ने भगवान को देखा नहीं है। हम ने भगवान के विषय में ग्रन्थों में पढ़ा है, लेकिन देखा नहीं है। इसलिये भगवान के बारे में, उनकी महानता के बारे में हमारा ज्ञान बौद्धिक है। हम लोग अपने को उनसे जोड़ नहीं सकते हैं, विश्वास भी नहीं करते हैं। ज्ञान के साथ विश्वास भी होना चाहिये। उदाहरण के लिये, तुम्हारी माँ है, तुमने कभी यह प्रश्न नहीं किया कि वह तुम्हारी माँ है या नहीं। किसी ने तुम्हें बताया भी नहीं कि वह तुम्हारी माँ है। बस तुम मानते हो कि वह तुम्हारी माँ है। इसे विश्वास कहते हैं। तुम्हारे पिता के बारे में भी किसी ने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, फिर भी तुमने मान लिया कि वे तुम्हारे पिता हैं। तुमने कोई सवाल नहीं किया, बस, स्वीकार कर लिया। इसे विश्वास कहते हैं। जब तुम किसी बात को स्वीकार कर लेते हो और तर्क-वितर्क नहीं करते तब वह विश्वास बन जाती है।

शिव और पार्वती श्रद्धा और विश्वास के प्रतिरूप हैं। तात्पर्य यह कि श्रद्धा और विश्वास हमारी प्रकृति के अंग हैं, हमारे व्यक्तित्व के अंश हैं। जैसे तुम्हारे भीतर प्राणशक्ति है वैसे ही श्रद्धा और विश्वास भी तुम्हारे अन्दर है। यदि पृथ्वी पर तुम्हारा जन्म श्रद्धा और विश्वास के साथ हुआ है तो तुम्हें मुझसे यह सब नहीं सीखना है। किसी से भी जानने की जरूरत नहीं है। ग्रन्थों से विश्वास की शिक्षा नहीं मिल सकती। कोई भी तुम्हें श्रद्धा और विश्वास का घूँट नहीं पिला सकता। यह प्रकृति-प्रदत्त है, जन्मजात है। तुम अपनी आँखों से देख सकते हो, कानों से सुन सकते हो, मुख से बोल सकते हो – ये समस्त शक्तियाँ

प्रकृति-प्रदत्त हैं। उसी प्रकार श्रद्धा और विश्वास भी प्राकृतिक देन है। कठिनाई यह है कि तुम लोगों ने बहुत सारे ग्रन्थों को पढ़ लिया है, बहुत-सी बातें इधर-उधर से सुन ली हैं। इसलिये सत्संगों से और ग्रन्थों के अध्ययन से तुम अपने आध्यात्मिक विश्वास की पुष्टि करते हो। लेकिन एक समय आयेगा जब तुम्हें इनकी मदद के बिना ही अपना रास्ता तय करना होगा। तर्क और बुद्धि से कुछ दूर तक तुम्हें मदद मिलेगी, लेकिन उसके बाद तुम्हें इनके पार जाना होगा।

जब तुम मन का दमन करते हो तो वह समस्या बन जाता है। मन का दमन मत करो। मन को समेटना भी कठिन है। मन का स्वभाव है चंचल होना। हर एक आदमी का मन चंचल है। बुद्धि भी एक बाधा है। हम लोगों ने इतना पढ़-लिख लिया है कि हर चीज के बारे में मन में एक छवि, एक धारणा बन गयी है। यही समस्या मेरे साथ भी थी। पहले मैं भगवद्-विषय पर महीनों व्याख्यान दे सकता था। मैं ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सूफी मत, समस्त हिन्दू मतों पर व्याख्यान देता था। मुंगेर में धर्म और दर्शन पर जितने ग्रन्थ तुम देखते हो सब मेरी निजी पुस्तकें हैं। मैंने उन सारी पुस्तकों को खरीदकर इकट्ठा किया था। मैं अपने सारे पैसे किताबों पर खर्च करता था। मैं ट्रेन में सफर करते समय किताबें ही पढ़ते रहता था। यही मेरी हॉबी थी।



आत्म-शुद्धि

एक समय आया जब ज्ञान मेरे जीवन में बड़ी बाधा बन गया। अब मैं किताबें नहीं पढ़ता, बिल्कुल नहीं। मैंने पुस्तकों का परित्याग कर दिया है। मैं लोगों को ज्ञान देता हूँ, पर मेरे लिये उसका कोई उपयोग नहीं है। लेकिन मैं लोगों को बताता रहता हूँ क्योंकि यह मेरा अनुभव है। अनुभव तब आता है जब तुम हर व्यक्ति के साथ एकत्व का भाव रखो। आध्यात्मिक जीवन सैद्धान्तिक जीवन नहीं है। ईसा मसीह क्या कहते हैं, श्रीकृष्ण क्या कहते हैं? वे एक ही बात कहते हैं, अपने को शुद्ध करो। पर अपना शुद्धिकरण कैसे होगा?

तुम सिर्फ अपने पति, पत्नी और बच्चों के कल्याण की बात सोचते हो। दूसरों की फिक्र तुमको है ही नहीं। अपने पति, पत्नी और बच्चों की खुशी में ही तुम्हारी खुशी है। लेकिन मेरी खुशी तुम्हारी खुशी नहीं है। तुम्हारे पड़ोसी की खुशी में तुम्हारी खुशी नहीं है। तुम्हारे पड़ोसी की समस्या तुम्हारी समस्या नहीं है। तब तुम कैसे दावा कर सकते हो कि तुमने अपनी आत्म-शुद्धि कर ली? आध्यात्मिक जीवन का पहला पाठ ध्यान नहीं, सेवा है। ध्यान तो आखिरी पाठ है। यह स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम है। हाँ, मैं पचास साल से ध्यान कर रहा हूँ, परिणाम शून्य था। अब पचास साल बाद ध्यान कर रहा हूँ तो इसका परिणाम भिन्न है। आँखें बन्द कर लेने का क्या लाभ? मेरी बात समझ रहे हो न? सेवा आध्यात्मिक जीवन का पहला पड़ाव है। अगर तुम भगवान के करीब आना चाहते हो तो सेवा में लग जाओ। सेवा का मतलब मानव जाति की सेवा। एक की सेवा, दो की सेवा, तीन की सेवा, कुष्ठ रोगी की सेवा, अनाथ की सेवा, अन्धे की सेवा, निराश्रित विधवा की सेवा – यही आध्यात्मिक जीवन का पहला पाठ है। ईसा मसीह ने सेवा की बात कही थी, गीता ने भी सेवा की बात कही है। गीता में 18 अध्याय हैं। ज्ञानयोग बाद में आता है, संन्यास योग बाद में आता है, कर्मयोग पहले आता है। हम लोग उसे कर्मयोग कहते हैं, लेकिन यह है सेवा योग। निःस्वार्थ सेवा। जब तुम पत्नी, पति या बच्चों की सेवा करते हो तो वह निःस्वार्थ सेवा नहीं, वह स्वार्थपरक सेवा है। उसमें तुम्हारा स्वार्थ निहित है। स्वार्थ मतलब अपने लिये। जब तुम दूसरों की सेवा करते हो तो वह निःस्वार्थ सेवा कहलाती है। हम लोग उसको परमार्थ कहते हैं, मतलब दूसरों के लिये। जो तुम दूसरों के लिये करते हो वह कर्मयोग कहलाता है, जो दूसरों के लिये नहीं करते वह कर्म है। यह पहला पाठ है।

दूसरा पाठ है प्रेम। हर एक से प्रेम करो। लड़की या लड़के के साथ प्रेम, जिसके बारे में आजकल बहुत-से सस्ते गाने हैं, वह प्रेम नहीं, वासना है। प्रेम का मतलब हुआ किसी को अपना समझना। वह तुम्हारे किसी काम का नहीं हो सकता है, वह बुरा आदमी हो सकता है, फिर भी उससे प्रेम है। प्रेम में घृणा के लिये कोई जगह नहीं होती। जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम कहाँ?

तीसरा पाठ, देने की आदत डालो। सिर्फ लेने की नहीं, देने की भी आदत डालो। हाँ, हर आदमी अमीर नहीं है, लेकिन कुछ तो है जो तुम दे सकते हो। हर व्यक्ति के पास दूसरों को देने की क्षमता है। देने वाली चीज कुछ भी हो सकती है। पाने वाला पात्र कोई भी हो सकता है।

उसके बाद आता है शुद्धिकरण। मन के शुद्धिकरण के बाद ध्यान करो। ध्यान बी.ए. कोर्स है और आत्मानुभूति एम.ए. कोर्स। सेवा के.जी. है। यदि किसी छोटे बच्चे को तुम सीधे एम.ए. कोर्स में डाल दोगे तो वह कुछ नहीं समझेगा। किसी बच्चे को तुम उच्च गणित पढ़ाने लगोगे तो वह क्या समझेगा? पहले बच्चे को छोटी-छोटी चीजें बतायी जाती हैं। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन छोटी-छोटी चीजों से प्रारम्भ होता है।

अन्त में आता है आत्मभाव। वेदान्त में आत्मभाव की चर्चा है। जो अपने को सबमें देखता है और सबको अपने में देखता है यही आत्मभाव है। आत्मभाव का मतलब हुआ कि अपने विषय में जैसी तुम्हारी वृत्ति है वैसी ही वृत्ति दूसरों के विषय में भी हो। यदि तुम्हारे पैर में काँटा चुभने पर तुमको पीड़ा होती है, लेकिन मेरे पैर में काँटा चुभने पर तुमको दर्द नहीं हो तो यह आत्मभाव नहीं हुआ। तुमको वह अनुभव नहीं होता है।

महाराष्ट्र के शिर्डी कस्बे में एक महान् सन्त हुये थे, साईं बाबा। उनके बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी है कि जब उनके भक्तों के घर में आग लग जाती थी तो उनके शरीर में जलन होने लगती थी। वे कहने लगते थे, 'मेरा शरीर जल रहा है', और लोग उनके शरीर पर जल के छींटे देने लगते थे। दूसरों की पीड़ा उनका अनुभव कैसे बन जाती थी?

अपने जीवन का एक छोटा-सा अनुभव बताता हूँ। एक बार हरिद्वार में कुम्भ मेला लगा। यह घटना पचास साल पहले की है। कुम्भ मेले के बाद कई हजार लोग ऋषिकेश आ जाते हैं। एक दिन शाम के समय मैं लक्ष्मणझूला की ओर जा रहा था। रास्ते में मैंने सड़क के किनारे एक बोरी पड़ी देखी।

बोरी भरी हुई लगी। मैं उसे देखकर आगे बढ़ गया। जब मैं आश्रम लौट कर आया तो पता चला कि स्वामी चिदानन्द जी उस बोरी को उठा लाये थे। उस बोरी से एक वृद्ध कुष्ठ रोगी निकला। स्वामी शिवानन्द जी ने उसे कुछ पैसे दिये और एक कुटी बनवा कर उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया। उसकी सेवा के लिये कुछ संन्यासियों को नियुक्त किया जो उसे स्नान कराते, उसकी दाढ़ी बनाते और अन्य कार्य करते। मुझे भी उसकी सेवा में लगाया गया था। मैंने उसकी जो सेवा की वह सेवा नहीं थी, वह मेरा कर्तव्य था जो गुरु ने मुझे सौंपा था। मेरे भीतर सेवा का भाव नहीं था। उसकी पीड़ा मेरी पीड़ा नहीं थी। मुझे वह काम सौंपा गया था इसलिये मैं कर रहा था। मेरी बात समझ रहे हो न? मैं तुम्हें भेद बता रहा हूँ। कुछ करना ही काफी नहीं है, भाव भी जरूरी है। तुम भले ही कुछ न भी कर सको, तुम्हारे पास पैसे न हों मदद करने के लिए, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्व भाव का है। यह बाहरी चीज नहीं, आन्तरिक भाव है। मेरे भीतर कोई भाव नहीं था। मैं सिर्फ कर्म कर रहा था। प्रतिदिन सबेरे जाकर मैं उसकी दाढ़ी बना दिया करता था।

मैंने तुम्हें सिर्फ एक उदाहरण दिया, बात को समझाने के लिये। वह एक लम्बी कहानी है। बाद में स्वामी शिवानन्द जी ने निर्णय लिया कि जो कुष्ठ रोगी सड़कों पर भीख माँगते हैं उनके आवास की व्यवस्था होनी चाहिये। इसके लिए सरकार ने भूमि उपलब्ध करा दी। किसी ने बांस, फूस आदि का प्रबन्ध किया और मेरे ऊपर कॉलोनी निर्माण का भार सौंपा गया। मैंने निर्माण कार्य पूरा किया। उस कॉलोनी में सौ परिवार रहते थे। हर दिन शाम को वहाँ जाकर उन्हें रामायण-पाठ कराता था, पर मेरे भीतर भाव बिल्कुल नहीं था। जिसे तुम प्रेम करते हो, वह अगर बीमार हो जाए तो क्या होता है? उसे कोई तकलीफ हो जाये तो क्या तुम्हें नींद आती है? तुम सो नहीं सकते, तुम बेचैन हो जाते हो। यह आत्मभाव है। सच्चा आत्मभाव तब आता है जब तुम ऐसे व्यक्ति से जुड़ते हो जिसका तुम्हारे लिये कोई उपयोग नहीं है, जो तुम्हारे सम्प्रदाय का नहीं है, जो तुम्हारे परिवार का नहीं है, वह किसी काम का नहीं है, फिर भी उसके साथ तुम आत्मभाव दिखाते हो। जबकि मैं यही सोचता था कि उस कुष्ठ रोगी की सेवा में क्या रखा है, वह तो मरणासन्न है।

गुरु प्राप्त करने के बाद आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ सेवा से करो। शरीर के लिये योग ठीक है, प्राणायाम भी ठीक है। थोड़ा जप और थोड़ा

ध्यान भी आवश्यक है। थोड़ा स्वाध्याय, थोड़ा सत्संग, कीर्तन और भजन भी ठीक है। लेकिन वास्तव में इनसे कुछ होने वाला नहीं है। इससे आध्यात्मिक जीवन का रोड-रोलर एक इंच भी आगे नहीं बढ़ेगा। पचास सालों तक मेरा आध्यात्मिक जीवन एक ही बिन्दु पर टिका रहा, आगे नहीं बढ़ा। भले ही मैंने कठिन-से-कठिन साधना की, गंगोत्री में प्राणायाम की प्रचण्ड साधना की, तान्त्रिक साधनायें भी कीं, लेकिन मेरा रोड-रोलर वहीं का वहीं जमा रहा। जब मेरे अंदर थोड़ी-सी भावना जगी तब मेरी गाड़ी आगे बढ़ने लगी।

आध्यात्मिक जीवन मात्र बौद्धिक जीवन नहीं, यह भावनात्मक जीवन है। जैसी भावना तुम्हारे मन में अपने बेटे-बेटियों के लिये होती है, जैसी भावना अपनी पत्नी या प्रेमिका के लिये होती है, जैसी भावना सोने-चाँदी, बैंक-बैलेन्स और सांसारिक भोग-विलास के लिये होती है, वैसी भावना जब तुम्हारे भीतर दूसरों के लिये पैदा होगी तब आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होगा। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने कहा भी है –

कामिहि नारी पिआरी जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

जैसे कामी को नारी अच्छी लगती है, लोभी को पैसे अच्छे लगते हैं, ठीक वैसे ही राम मुझे प्यारे लगें। सांसारिक वासनाओं की भावना राम के प्रति बदल जाती है।

देखा जाए तो आध्यात्मिक जीवन बड़ा कठिन है क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं है कि कहाँ से शुरू करें। यह उलझा हुआ धागा है, कहाँ से शुरू करें, समझ में नहीं आता है। तुम्हें हमेशा अपने दिल पर भरोसा रखना चाहिए, दिमाग पर नहीं। मनुष्य की भावना उसकी स्त्री की तरह है और बुद्धि रखैल की तरह।

हम लोग सत्यनारायण जी की कथा-व्रत करते हैं। सत्यनारायण कथा के अनुसार जिन्होंने सत्यनारायण की कथा की, उनको यह-यह फल मिला। उसी प्रकार बृहस्पति की कथा में भी कहते हैं। तो हम जो कथा कर रहे हैं उसके अन्दर असल में छिपी हुई और कथा है क्या?

हर इन्सान को अपनी खोपड़ी पर बहुत यकीन है, पर खोपड़ी हमेशा काम नहीं करती। हर इन्सान के अन्दर एक विश्वास है, एक श्रद्धा है और उस श्रद्धा में

चमत्कार की शक्ति है। चमत्कार शब्द जो तुमने सुना है वह श्रद्धा को जगाने के लिये है। जो कथा तुम बोल रहे हो वह उसी के लिये आदमी के दिमाग में डाली जाती है, जब आदमी छोटे बच्चे की तरह भोला होता है। अभी तुम्हारा विश्वास भोला नहीं है। तुम एक बड़ी उम्र वाली स्त्री की तरह सोचती हो, एक विवाहिता स्त्री की तरह सोचती हो, एक पढ़ी-लिखी लड़की की तरह सोचती हो, अपने ऊपर एक घमण्ड होता है। तुमको ही नहीं, यह सबको होता है। यह अध्यात्म मार्ग में बाधक है। अपने को कुछ समझना अहंकार है। मैं बड़े घर की बहू-बेटी हूँ, मेरे पास बहुत पैसे हैं, मैं बहुत सुन्दर हूँ, मेरे बच्चे बहुत अच्छे हैं, मेरा पति बहुत अच्छा है – ये जितनी भी चीजें हैं सब अभिमान है। अपने को कुछ मान लेना। इसका मतलब है कि तुम भोली नहीं हो।

कई बड़े लोग हैं जिनको देवता के सामने झुकने में शर्म आती है। हमारे गुरुजी तो वेदान्ती थे, बहुत पढ़े-लिखे थे और साधु-सन्त उनको बहुत मानते थे। हम जब उनकी कुटिया में जाते थे तो रोज उन्हें कृष्ण भगवान की पूजा करते देखते थे। वे कृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने दण्डवत् नमस्कार करते थे। मैं वेदान्त पढ़ा हुआ आदमी था, मेरी समझ में नहीं आता था कि वे मूर्ति के सामने क्यों झुकते हैं। उन्होंने मेरे मन की बात पढ़ ली। वे बोले, 'मूर्ति के आगे झुकना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना महत्त्वपूर्ण है अभिमान को दूसरे के आगे झुकाना। संन्यासी में, साधक में अभिमान नहीं होना चाहिये।' इस अभिमान को मिटाने के लिये हमारे ऋषि-मुनियों ने कहानियाँ गढ़ी हैं और उन कहानियों से हमारे मन में विश्वास जागता है। कभी-कभी वह विश्वास बहुत दृढ़ हो जाता है तो चमत्कार घटित होता है। कभी-कभी यह विश्वास कमजोर रहता है तब वह नहीं होता। श्रद्धा और विश्वास में आधे-अधूरे से काम नहीं चलेगा। या तो पक्का होना है या बिल्कुल नहीं होना है। ऐसा नहीं कि विश्वास है जो कभी-कभी हिल जाता है। तुम रामचरितमानस पढ़ लो, तुलसीदास जी ने सबसे पहले यही लिखा है –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तस्थमीश्वरम्॥

'मैं श्रद्धा-विश्वास के प्रतीक महादेव और पार्वती की वन्दना करता हूँ जिन दोनों के बिना सिद्ध महात्मा भी अपने अन्दर में छुपे हुए ईश्वर को नहीं देख

सकते।' यहाँ साधकों की नहीं, सिद्ध पुरुषों की बात कही है। श्रद्धा-विश्वास के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने अन्दर छुपे हुये ईश्वर को नहीं देख सकते। श्रद्धा-विश्वास के बिना न माँ तुम्हारी माँ है, न बाप तुम्हारा बाप है। श्रद्धा-विश्वास से ही जीवन चलता है, जबकि बुद्धि, जिसको मैंने रखैल का नाम दिया है, वह हमेशा फँसाती रहती है।

पाश्चात्य दिशा से यह जो सभ्यता आयी है वह बुद्धि-प्रधान है। जो लोग पाश्चात्य विचारधारा में फँसे हुये हैं उनको ज्ञान तो बहुत हो जायेगा, जानकारियाँ भी बहुत मिल जायेंगी, वे तुमको सब समझा भर देंगे, तुम्हारे लिये मोटी किताबें भी लिख देंगे, लेकिन अनुभव-शून्य होंगे। क्यों? इसलिए कि बुद्धि तो हमेशा रखैल की तरह व्यवहार करती है। वह आदमी के मन में उसकी स्त्री के प्रति कुछ-न-कुछ गलत चीजें डालती रहती हैं।

यही कारण है कि सन्त-महात्मा और ऋषि-मुनि इसी तरफ पैदा हुये हैं, पश्चिम में एक भी नहीं हुआ। ईसा मसीह यूरोप के थोड़े ही थे। भगवान बुद्ध या महावीर चीनी थोड़े ही थे। इस भारत भूमि में महात्माओं ने सत्यनारायण की कथा, हनुमान की कथा, गायत्री की कथा और अन्य पौराणिक कथा-कहानियाँ सुनाकर लोगों के विश्वास को नया जीवन दिया है, जैसे इन्जेक्शन देकर किसी को नव-जीवन प्रदान किया जाता है।

हमारे देश में इतिहास को इतिहास की तरह नहीं देखा जाता है, क्योंकि इतिहास को इतिहास के रूप में देखने से वही होता है जो आज इस्रायल में हो रहा है। अरे! यहाँ भी कितनी लड़ाइयाँ हुई, कितने लड़े-मरे, किसको याद है? कौन परवाह करता है? वहाँ फिलिस्तीनियों और यहूदियों के बीच कितनी मारा-मारी होती है? उनको इतिहास याद है क्योंकि इतिहास को वे इतिहास की तरह पढ़ते हैं। हम लोग इतिहास को पुराणों की तरह याद करते हैं। इति-हास का मतलब 'ऐसा हुआ' होता है। हमलोगों ने उसको पुराण का रूप दे दिया। पुराण का मतलब क्या होता है? 'पुरा' माने पहले, किसी जमाने में, और 'ण' माने जानकारी। किसी जमाने की जानकारी को पुराण कहते हैं। पुराण का वही मतलब होता है जो इतिहास का होता है, मगर उसी इतिहास को पुराण का रूप देकर कहानियाँ डाल दीं। उन कहानियों का तुम्हारे मन पर जो प्रभाव होगा वह आध्यात्मिक होगा। वह तुम्हारे श्रद्धा-विश्वास को जगायेगा। अगर इतिहास पढ़ोगे तो तुम्हारे मन में मुसलमानों के प्रति, वैष्णवों के प्रति, जैनों के

प्रति, बौद्धों के प्रति, ब्राह्मणों के प्रति, ठाकुरों के प्रति द्वेष भाव जगेगा। इसलिए इतिहास को हमने पुराणों में बदला है। अब ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र का झगड़ा हो गया। ठीक है, हुआ। उसे पुराणों में कहानी के रूप में बताया। विश्वामित्र और मेनका के बीच प्रेम हो गया। उसे कहानी में नया रूप दे दिया।

सारी पाश्चात्य संस्कृति यूनानी चिन्तन का परिणाम है। इसलिए पाश्चात्य संस्कृति में हर चीज बौद्धिक है। इस वजह से वहाँ कोई पैगम्बर या महात्मा नहीं हुआ। ईसा मसीह को उन्हें आयात करना पड़ा। यूरोप के लिये ईसा मसीह इम्पोर्टेड माल थे। बुद्धि से बुद्धत्व नहीं पैदा हो सकता। बुद्धि से धर्म, विज्ञान, समाज-शास्त्र, नीति-शास्त्र, न्याय-शास्त्र और गणित-शास्त्र की उत्पत्ति हो सकती है, अपरा विद्या का जन्म हो सकता है, किन्तु परा विद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यही कारण है कि सभी सन्त और पैगम्बर, चाहे मूसा हों या ईसा मसीह या बुद्ध या मुहम्मद, सभी भ्रूमध्य सागर के पूर्व में पैदा हुये। इस क्षेत्र के देश आध्यात्मिक अनुभवों से समृद्ध रहे हैं, भले ही उनका धर्म कोई भी रहा हो। धर्म तो मात्र एक आवरण है, असली चीज है श्रद्धा-विश्वास की भावना। तुमने उसे नहीं देखा है, परन्तु किसी ने उसे देखा है। हर आदमी एटम बम नहीं देख सकता, लेकिन सबको एटम बम पर विश्वास करना पड़ता है। हर आदमी हर चीज की प्रत्यक्ष जानकारी नहीं प्राप्त कर सकता, लेकिन विश्वास करना पड़ता है क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं। इसी तरह हमें संत-महात्माओं की बातों पर भी विश्वास करना पड़ता है। कथा-कहानियों का प्रयोजन मनुष्य के अन्दर श्रद्धा और विश्वास को जगाना है। श्रद्धा-विश्वास इतनी सुन्दर चीज है कि जाग गई तो कमाल कर देती है। आनन्द, आनन्द और आनन्द हो जाता है।

इसलिये आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हुए तुम्हारा मजबूरी का जो जीवन है, उसका अच्छे से पालन करो। मजबूरी का मतलब है बाल-बच्चे, घर-परिवार, मियाँ-बीबी, सास-ससुर, जेठानी-देवरानी, दुकान-व्यापार, नौकरी-चाकरी। सबको देखना है, सबको चलाना है। यह तो करना ही पड़ेगा। मगर इसको बुद्धि से करो। यहाँ पर अपनी रखैल को लगा दो। मन लगाकर खूब पैसे कमाओ, कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर याद रखो जब भगवान के रास्ते में जाते हो उस वक्त केवल छोटे बच्चे का दिल लेकर जाओ। वहाँ पर पण्डित और आचार्य बनकर मत जाओ। भगवान के रास्ते में सब लोग बच्चे होते हैं। इसलिये उस रास्ते पर बच्चों की तरह भोला-भाला बनो।

जब हनुमान जी को राम जी का पहला दर्शन ऋष्यमूक पर्वत के नीचे हुआ तो उन्होंने राम जी को नहीं पहचाना क्योंकि वे पता करने आये थे कि वे कौन हैं? अपनी खोपड़ी लगा रहे थे ब्राह्मण का वेश बनाकर। राजा सुग्रीव ने उन्हें यह कहकर भेजा था कि पता नहीं ये दोनों छोकरे कौन हैं, सम्भव है मुझे मारने के लिये बाली ने इन्हें भेजा हो। जब हनुमान जी ने पूछा, 'तुम सुन्दर नर कौन हो? तुम नंगे पैर जंगल में चल रहे हो। देखने से तो लगता है तुम किसी सुन्दर राजघराने से हो?' तब श्रीराम ने उत्तर दिया, 'हम कौशल्या-दशरथ के पुत्र हैं। हमारी स्त्री खो गई है और हम उसे खोजने के लिये आये हैं।' हनुमान जी को तुरन्त ज्ञान हो गया, 'अरे, ये तो वही हैं।' मतलब जब तक बुद्धि खोजती रहती है तब तक भगवान मिलते नहीं हैं। तुम भगवान की बात छोड़ो, पत्नी या पति के साथ सम्बन्ध को देखो। बुद्धि के द्वारा कुछ निर्णय नहीं ले सकते हो। दिल से ही तुम एक-दूसरे को समझ सकते हो। बस वही सम्बन्ध भगवान के साथ होता है।

सती को वन में राम जी के प्रति सन्देह हो गया। वे दिमाग लगाने लगीं कि अगर वे भगवान हैं तो औरत के पीछे क्यों भागते हैं? सीता चली गयी तो चली गयी। जब तुम किसी फिल्म में काम करते हो और फिल्म में तुम्हारे पति को कोई मार देता है तो तुम रोते हो, दुःख प्रकट करते हो, मगर अन्दर में दुःख तो नहीं होता है न? सती के मन में यही बात आई कि जब नाटक है तो रोते क्यों हैं? राम जी को इतना दुःख क्यों हो रहा है सीता जी के विरह का? वे तो भगवान हैं। उनको तो मालूम है सीता जी को कौन और कहाँ ले गया। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था, क्योंकि बुद्धि का आश्रय लेकर ये प्रश्न पूछ रही थीं। मजे की बात यह कि शिव जी ने उन्हें साफ-साफ बता दिया था कि श्रीराम मेरे इष्टदेव हैं। इसके आगे की कहानी तो तुम्हें मालूम है। जब सती ने पुनः पार्वती के रूप में जन्म लिया और शिव जी के साथ उनका विवाह हुआ तो पहली बात उन्होंने शिव जी से यही कही कि भगवन्, पूर्व जन्म में ऐसी घटना हुई थी जब मैंने आपके कथन पर सन्देह किया था। अब मेरा मन साफ है, उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। मेरा पक्का विश्वास है कि श्रीराम अजर-अमर हैं, अन्तर्यामी हैं। अब मुझे कोई सन्देह नहीं है, आप मुझे उनकी कहानी सुनाइये। तब भगवान शिव एक ही वाक्य कहते हैं – *पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, सकल लोक जग पावनि गंगा* – 'पार्वती, तुमने रघुपति

की कथा पूछी है जो सकल संसार को पवित्र करने वाली गंगा की तरह काम करती है। अब तुम्हें वह प्रसंग सुनाता हूँ क्योंकि अब तुम संशयरहित हो गयी हो। राम के व्यक्तित्व के बारे में तुम्हारे मन में कोई सन्देह नहीं है। पूर्व जन्म में तुमको सन्देह था तो तुम्हें भी नुकसान हुआ और मुझे भी। तुम सती हो गयी, मैं अकेला हो गया। अब ऐसा नहीं है।' इसीलिये शिव और पार्वती को विश्वास और श्रद्धा का प्रतीक माना जाता है।

उत्तर रामायण में कहा गया है कि कलियुग में केवल राम-नाम से ही उद्धार होगा, पर साथ-साथ यह भी कहा गया है कि जिसकी श्रद्धा न हो उसे नहीं सुनाना चाहिये।

वह तो सुनेगा ही नहीं। अब यहाँ सब लोगों को मजा आ रहा है तो बैठे हैं, नहीं तो उठकर चले जायेंगे। सोचेंगे, पता नहीं स्वामीजी क्या बोल रहे हैं। दुष्ट को तुम बदल सकते हो, मूर्ख को नहीं। *मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम* – ब्रह्मा भी अगर गुरु बनकर आ जाएँ तो मूर्ख व्यक्ति को ख्याल नहीं आता है। *फूलइ फरई न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद* – बेंत के पेड़ में कितना भी पानी डालो, वह न फूलेगा, न फलेगा। मगर दुष्ट के बारे में कहा है – *सठ सुधरहिं सतसंगति पाई* – दुष्ट सत्संग में जाकर सुधर जाता है, जैसे लोहा पारस का संग पाकर सोना बन जाता है।

जो तुम कह रहे हो यह हमारे यहाँ प्रत्येक शास्त्र में लिखा है, केवल रामायण में ही नहीं। वेदों में, उपनिषदों में, सभी जगह लिखा हुआ है। इसको लिखने का मतलब है कि जिसको पसन्द न हो उसको नहीं सुनाना। जो इसको न माने उसको जबर्दस्ती न पढ़ाना। यह हमारे धर्म की, हमारी संस्कृति की विशेषता है। जो हमारे धर्म को नहीं मानता, जो हमारे विचारों को नहीं मानता, जो हमारे ख्यालों को नहीं मानता उसको सुनाओ ही नहीं। बेकार में क्यों मत परिवर्तन करोगे, हम किसी के धर्म परिवर्तन के पक्ष में तो हैं नहीं। इसी को बताने के लिये सभी शास्त्रों में लिखा है कि जो इसको स्वीकार न करे उस पर नहीं थोपना। जब तुमको पसन्द नहीं है तो क्यों बोलेंगे। हर ग्रन्थ लिखने वाले महापुरुष ने यह ख्याल रखा। जैसे कोई किसी को ईसाई बनाने में लगा है, किसी को मुसलमान बनाने में लगा है, हम लोग वैसा नहीं करते। जिसको पसन्द हो सुने, जिसको पसन्द न हो नहीं सुने। उसका और कोई मतलब नहीं है।

कर्मों का प्रबन्धन और दिशान्तरण

अपने कर्म को कोई क्यों बदले? कर्म न तो भारी होता है, न ही कष्टदायी। सब तुम्हारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। एक सन्त थे जो बहुत कामुक थे, औरतों के प्रति उनकी गहरी आसक्ति थी। वे काम-वासना से मुक्त होना चाहते थे, तो उन्होंने क्या किया? अपनी आँखें फोड़ डालीं! इससे उनकी समस्या का निदान नहीं हुआ। मैं एक कर्म, काम की बात कर रहा हूँ, पर ऐसे अनेक कर्म होते हैं जैसे क्रोध, लोभ आदि। काम-वासना शायद सबसे दुष्कर कर्म है। बहुत कम लोग काम पर विजय प्राप्त कर पाते हैं। वे अन्धे हो गये, लेकिन उनके मन से काम नहीं निकला।

एक दिन एक महान् सन्त उनकी गली से गुजरे। वे एक बड़े सम्प्रदाय के संस्थापक थे। भगवान उनके लिये कोई अमूर्त सिद्धान्त नहीं, बल्कि जीवन्त सत्य था। उनका भगवान किसी काल्पनिक स्वर्ग में नहीं, मंदिर-मंदिर, घर-घर में रहता था। उनका भगवान मनुष्य की तरह रहता था, सोता था, खाता-पीता था, हँसता-बोलता था और बीमार भी पड़ता था। उनका नाम था वल्लभाचार्य। जगन्नाथपुरी का मन्दिर उसी सम्प्रदाय का है। जगन्नाथपुरी में बलराम, सुभद्रा और कृष्ण हर साल पिकनिक पर जाते हैं, जैसे हम लोग दार्जिलिंग जाते हैं। हर बारह सालों में उनका कलेवर बदलता है। प्रतिदिन उन्हें भोग चढ़ाया जाता है। मंदिर के वैद्य उनके स्वास्थ्य की देखभाल करते



हैं, भगवान जगन्नाथ जी को कहीं छींक आ जाये तो! जैसे तुम्हें अपने बच्चे के प्रति अनुराग होता है, जैसे अपने माँ-बाप या पति-पत्नी की चिन्ता होती है वैसी भावना उनकी थी। बिल्कुल यथार्थ भावना, अमूर्त या निराकार नहीं।

वल्लभाचार्य उस सन्त के जीवन में आए और महान् परिवर्तन घटित हो गया। सन्त के कर्म बदल गये। उस दिन से उन्हें अनुभव होने लगे। उनकी अन्दर की आँखें खुल गयीं। जीवनभर वे अन्धे रहे, लेकिन भीतर की आँखों से वे टी.वी. देखने लगे जहाँ उन्हें भगवान कृष्ण कभी शिशु रूप में, कभी माखन-चोर के रूप में तो कभी गोपियों के साथ छेड़खानी करने वाले रूप में दिखते थे। उनकी लीलाओं को देखकर वे भाव-विह्वल होकर गाने लगते थे। भारत में हर कोई उस महान् सन्त को जानता है। उनका नाम था सूरदास। आज भी घर-घर में सूरदास के पद और भजन गाये जाते हैं। वे वल्लभाचार्य के शिष्य हो गये और उसके बाद वे भगवान कृष्ण की सारी नटखट लीला को स्पष्ट देखा करते थे जैसे कोई भौतिक नेत्रों से देख सकता है।

एक दिन यशोदा मैया कृष्ण पर बहुत नाराज हो गईं क्योंकि गाँव की सभी ग्वालिनों ने आकर शिकायत कर दी। कहा, 'तुम्हारा छोरा कृष्ण इतना शरारती है कि अपने सभी ग्वाल-सखाओं के साथ हमारे घरों में घुसकर सारा माखन खा जाता है।' तब यशोदा ने उन्हें बुलाकर ताड़ना शुरू किया और वे जान बचाने के लिये इधर-उधर भागने लगे। अंत में कहने लगे, 'माँ, मैंने माखन नहीं खाया, ये गोपियाँ झूठ बोल रही हैं। मैं तो सबेरे बिस्तर से उठते ही अपने कन्धे पर कम्बल डालकर और हाथ में डण्डा लेकर अपनी गायों को चराने निकल जाता हूँ। मेरे साथ के ग्वाल-बाल मुझे पकड़कर जबरन मेरे मुँह में मक्खन ठूँसकर खिला देते हैं तो मैं क्या करूँ। मैं तुम्हारा अपना बेटा नहीं हूँ न, इसलिये तुम मुझसे प्रेम नहीं करती और सभी झूठी शिकायतें सुन लेती हो।' इस प्रसंग को सूरदास ने अपने एक पद में चित्रवत् प्रस्तुत किया है –

मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।
भोर भई गईयन के पीछे, मधुबन मोहि पठायो।
ग्वाल-बाल सब बैर पड़े हैं, बरबस मुख लपटायो।

हिन्दुस्तान में हर कोई इस पद को जानता है। केवल यह एक प्रसंग ही नहीं, कृष्ण की सम्पूर्ण बाल-लीला, सम्पूर्ण जीवन सूरदास की चेतना में बिल्कुल

















स्पष्ट दिखने लगा। उनके कर्मों का परिष्कार हो गया। उनके कर्म मिट गये और जब कर्म मिट जाते हैं तो अन्धेरा भी मिट जाता है। कर्म चेतना पर उसी तरह छाये रहते हैं जैसे दर्पण पर धूल या लालटेन के काँच पर कालिख। ज्योति लालटेन के अन्दर है, पर बाहर नहीं दिखती। जब कालिख मिट जाती है तो प्रकाश साफ दिखलाई देता है।

सूरदास के कर्म का क्या हुआ? किसी सुन्दर स्त्री के पीछे भागने के बजाय सूरदास का मन कृष्ण-लीला से जुड़ गया। वे सब कुछ देखने लगे, गाने लगे। उन्होंने अपने मन को नष्ट नहीं किया, वह तो हमेशा वासनायुक्त ही रहा। पर पहले वासना स्त्रियों के लिए थी, अब देवता के लिए हो गई। उन्होंने कृष्ण और गोपियों के दिव्य प्रेम का कितना सुंदर वर्णन किया है!

वृन्दावन छोड़ने के बाद श्रीकृष्ण ने एक बार उद्धव को वहाँ भेजा, राधा और अन्य गोपियों को सान्त्वना देने के लिए। वहाँ जाकर उद्धव ने उन्हें योग, ध्यान और समाधि के बारे में समझाया। गोपियों ने उद्धव से कहा, तुम यह सब क्या कह रहे हो? हमारा एक ही मन, एक ही दिल है और वह हमने श्रीकृष्ण को दे दिया है। दो होते तब न एक योग को दे देते।

उधो मन नाहीं दस-बीस,
एक हूँ तो गयो श्याम संग, कौन अराधे ईस।

इस तरह के मर्मस्पर्शी गीत लिखे हैं सूरदास ने। सूरदास ने अपने कर्म को खत्म नहीं किया, बल्कि उसका दिशान्तरण कर दिया। इसलिए मैं कहता हूँ कि न कोई कर्म भारी होता है, न कोई हल्का। यही मेरे जीवन का अनुभव रहा है। मुझे अपने जीवन में कभी कोई कर्म भारी नहीं लगा। हमेशा यही लगा कि ये कर्म सीढ़ी के सोपान हैं। मुझे अपनी जीवनशैली के बारे में भी कभी कोई कुण्ठा नहीं रही। मैंने पाँच-सितारा जीवन बिताया है। कभी सेकण्ड क्लास में सफर नहीं किया। जब मैं स्विटज़रलैण्ड के ज़िनाल नगर में योग सम्मेलन में भाग ले रहा था तो मेरा भोजन स्पेन से हवाई जहाज से आता था, क्योंकि मुझे वहाँ का भोजन पसंद नहीं था। मैंने हमेशा यही सोचा कि जब भगवान ने मुझे इस तरह के पाँच-सितारे जीवन का अवसर दिया है तो मैं उससे घृणा क्यों करूँ, उसे पसंद क्यों न करूँ? आखिर उसी ने मुझे यह सब दिया है, मैंने तो यह सब नहीं चाहा था।

कठिनाइयाँ तो हर जगह आती हैं, आध्यात्मिक जीवन में भी और भौतिक जीवन में भी। तुम यह अपेक्षा नहीं रख सकते कि हर चीज सरल और आसान होगी। जिन्दगी संघर्षों की कड़ी है, यह कभी समतल नहीं होती। अगर तुम सोचो कि तुम्हारे परिवार में किसी की मृत्यु न हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। अगर मैं सोचूँ कि कोई मुझे धोखा न दे, सभी मेरे साथ ईमानदारी से पेश आएँ, सभी मेरी तारीफ करें, सब गलत है, बकवास है। लोग मुझे धोखा देंगे, मेरी आलोचना करेंगे, मेरी सेवा करेंगे, मुझसे प्रेम करेंगे, मेरे प्रियजन मर जाएँगे, मैं भी बूढ़ा होकर एक दिन मर जाऊँगा, जो कुछ मैंने कमाया और बनाया है सब धरा-का-धरा रह जाएगा। यह सब तो एकदम स्वाभाविक है, सबके साथ यही होना है। अगर मैं चाहूँ कि सब कुछ साफ-सुथरा रहे तो सम्भव नहीं। यही जीवन का रहस्य है जिसके साथ हर एक को समझौता करना पड़ता है।

जीवन में सबसे बड़ी चीज है कि मनुष्य को अपनी ही इच्छा मुताबिक जीवन को देखने की तमन्ना नहीं होनी चाहिए। कर्म के मुताबिक तुम्हें जो भी जिन्दगी मिली है, उसी का मजा लो। नहीं तो जीवन बहुत कठिन हो जाता है। तुम नहीं चाहते फिर भी वह हो जाता है। पारिवारिक समस्या, आर्थिक समस्या, मानसिक समस्या, सब होने लगती है। इसलिए सबसे अच्छा यही है कि भगवान से कुछ मत माँगो। वे सब जानते हैं, या यूँ कहें कि उन्होंने ही पूरी स्क्रिप्ट पहले से लिख दी है, अब तुम्हें केवल अभिनय करना है। हम सब फिल्मी अभिनेताओं की तरह हैं। सब कुछ तैयार है, केवल अभिनय करना है।

अब बताइये रामजी ने क्या अपराध किया। सात साल की उम्र में गुरुकुल चले गए, वहाँ जमीन पर सोए। राजधानी लौटे, शादी की, फिर जंगल चले गए और वहाँ कोई पत्नी का अपहरण करके ले गया। उसे छुड़ाकर लाए तो उसमें भी बदनामी हुई। उसके बाद तो जानते ही हैं, पूरा जीवन सीता के वियोग में रहा।

श्री कृष्ण तो जन्म से पहले ही कंस की हिट लिस्ट में आ गए थे। कैसे जेल में उनका जन्म हुआ, कैसे उन्हें गोकुल पहुँचाया गया, कैसे उन्हें मथुरा छोड़कर द्वारका जाना पड़ा, एक राज्य छोड़कर दूसरा बसाना पड़ा और मरने के पहले क्या हुआ, सारा यादव खानदान खत्म हो गया। अपने सामने अपने वंश को नष्ट होते देखा। इसे त्रासदी कहोगे या कॉमेडी? जीवन अगर त्रासदी भी हो तो उसे कॉमेडी क्यों न बनाया जाए? जितने दिन जीयो, मजे से जीयो।

– 18 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 14

हम तुमलोगों के झंझट में नहीं पड़ते। क्यों? इसलिए कि तुम अपनी जिन्दगी तो अपनी मर्जी से चलाते हो और जब समस्या होती है तो मेरे पास आते हो। मैं उसी आदमी का भार अपने ऊपर लेता हूँ जो पूरा भार मेरे ऊपर डाल देता है, जिसका मैं पूरा नियंत्रण करता हूँ। अब स्टेयरिंग तुम कन्ट्रोल करो, ब्रेक हम कन्ट्रोल करें, यह हमसे नहीं होगा। लोग ऐसे ही हैं। घर-गृहस्थी तो चलाना आता नहीं उनको। सबसे पहले उनको शादी की जल्दी पड़ी रहती है, बच्चा पैदा करने की पड़ी रहती है, यानि घर-गृहस्थी का सिस्टम ही तुमलोगों का ठीक नहीं है।

गुरु और शिष्य के बीच जो सम्बन्ध होता है वह पूर्ण होता है, आधा-अधूरा नहीं होता। शिष्य अपनी मर्जी पर चलता रहे, जब दिक्कत हो तो गुरुजी से पूछता रहे, हम उस किस्म के आदमी नहीं हैं। इसके लिये तुम मुंगेर में स्वामी निरंजन से बात करो। उन लोगों का दुनिया में, प्रपंच में मन लगता है, हमारा मन नहीं लगता।

दूसरी बात क्या है, हिन्दुस्तान का आदमी अपने घोंसले से बाहर नहीं निकलेगा। अपनी परम्पराओं को तोड़ नहीं सकता और चाहता है धन-सम्पत्ति। लक्ष्मी उसी के पास आती है जो स्वतन्त्र जीवन बिताते हैं। बन्धे हुए समाज में लक्ष्मी नहीं आती है।

मृत्यु और पुनर्जन्म

जब किसी आदमी की मृत्यु होती है तो वह इस प्रकार है जैसे हमारा यह मकान है। हम यहाँ तीस-चालीस-पचास साल से रहते हैं, हमें यह मकान अब काफी

नहीं पड़ता है, छोटा पड़ता है या महँगा पड़ता है, और हम इसको छोड़कर दूसरी जगह चले जाते हैं। जब हम दूसरी जगह चले जाते हैं तो इस मकान से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों मकान अलग-अलग हैं। उसी तरह से जो ज्योतिस्वरूप आत्मा है, जो कर्मों के कारण एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है, वह एक किरायेदार की तरह है जो एक शरीर को धारण कर लेता है। अब उस शरीर का नाम स्वामी सत्यानन्द सरस्वती है, यह नाम दे दिया पण्डित लोगों ने, गुरुजनों ने। किसी नाम का ठप्पा लगा दिया। जैसे इस मकान का नाम आनन्द कुटीर है, उसका नाम चित्रकूट है, उसका नाम फलाना निवास है, वैसे ही इस शरीर का नाम स्वामी सत्यानन्द है। जब आदमी की मृत्यु होती है, शरीर यहीं छूट जाता है। इस बात को तो सभी जानते हैं, प्रमाणित करने की कोई जरूरत नहीं। जैसे यह मकान हमारे साथ नहीं जाता है, वैसे यह शरीर भी नहीं जाता। यह शरीर जो तुम हो, उसका दूसरे जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, अग्रवाल हैं, कुछ भी हैं, जब हम दूसरे घर में जाते हैं तो वह घर अलग होता है। यह टिन का घर है, वह बंगला हो सकता है या फूस की कुटिया भी हो सकती है। दोनों अलग-अलग हैं।

जीवात्मा जब शरीर को छोड़ती है तो उसके पीछे कोई कारण होता है। जीवात्मा अपनी इच्छा से शरीर नहीं छोड़ती। अपनी इच्छा से केवल योगी-महात्मा शरीर छोड़ते हैं, बाकी संसार में जो लाखों-करोड़ों गृहस्थ हैं वे अपनी इच्छा से शरीर नहीं छोड़ते, मृत्यु उसका कारण बनती है। पर जो योगी-महात्मा होते हैं, उनके चले जाने का कारण मृत्यु नहीं है, वे अपनी इच्छा से जाते हैं। किसी ने तुम्हें घर से निकाल दिया या तुम अपने से घर छोड़कर चले गये, दोनों अलग-अलग चीजें हुईं न? संसार में जो सारे लोग माया-ममता में पड़े हुए हैं, वे अपनी इच्छा से घर छोड़कर नहीं जाते, उनको निकाला जाता है। पर जो योगी-महात्मा या सिद्ध-त्यागी होते हैं वे अपनी इच्छा से ठीक समय पर शरीर को छोड़ देते हैं।

शरीर छोड़ देने के बाद उनका पूर्व-जन्म के शरीर से, परिवार से और माता-पिता से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उनका सम्बन्ध केवल उनके कर्मों से रहता है। जो कर्म इस जन्म में किये, जो कर्म पूर्व-जन्म में किये पर जिनका खुलासा-निपटारा नहीं हुआ, वे ही कर्म उनके होते हैं। अगर हम शरीर छोड़कर जायेंगे तो हमें न तो मुंगेर से मतलब, न ऋषिकेश से मतलब, न अपनी जाति

से मतलब, न ही अपने माता-पिता से मतलब। वह सब छूट गया, मगर जो कर्म हमने किये हैं, अच्छे-बुरे, काम, क्रोध, लोभ, दान-पुण्य, भगवद्-भजन, जो भी पूँजी हमने कमाई है वह पूँजी हमारे साथ सूक्ष्म रूप में जाती है। अगले जन्म में स्वामी सत्यानन्द से मेरा कोई मतलब नहीं, मुंगेर, ऋषिकेश या कुमाऊँ से मेरा कोई मतलब नहीं, माता-पिता-भाई-बहन से कोई मतलब नहीं, मैं मर्द हूँ या औरत हूँ, उससे भी मेरा कोई मतलब नहीं, मैं लम्बा हूँ, चौड़ा हूँ उससे भी मेरा कोई मतलब नहीं है। शास्त्रों में यही लिखा है।

मान लो तुम बम्बई में रहते हो। तुमने बैंक में पैसा जमा किया, लाख या पचास हजार, जो भी हो। जब तुम बम्बई छोड़कर जाते हो तो बम्बई को साथ में नहीं ले जाते, अपने घर को साथ नहीं ले जाते, अपनी नौकरी को भी अपने साथ नहीं ले जाते, बैंक को भी अपने साथ नहीं ले जाते, केवल पैसा ले जाते हो। पैसा-पूँजी ही आपके साथ रहती है। यह केवल समझाने के लिये उदाहरण दे रहा हूँ, पर इस बात को अच्छे से याद रख लो।

दूसरी बात, जीवात्मा जब शरीर छोड़ कर जाती है तो उसका तुरन्त पुनर्जन्म नहीं होता। न्यूनतम अवधि होती है तेरह दिन। जो शास्त्रों में लिखा है उसको निचोड़कर बता रहा हूँ। स्त्री के गर्भ में वीर्य प्रवेश करता है तो वह तुरन्त गर्भवती नहीं होती। जब रज और वीर्य का संयोग होता है, तब जाकर भ्रूण तैयार होता है। उसी तरह से जीवात्मा को कम-से-कम तेरह दिन लगते हैं तैयार होने में। तेरहवें दिन ही वह गर्भस्थ हो जाए, यह भी कोई जरूरी नहीं। क्यों? जीवात्मा को अपने कर्मों के अनुसार शरीर मिलता है। आखिर तुम जहाँ भी जाते हो, कोई मतलब लेकर ही जाते हो न? दुकान में जाते हो सामान लेने के लिए, ऑफिस में जाते हो व्यापार करने के लिए, उसी तरह जीवात्मा जहाँ भी जाती है अपना कर्म लेकर जाती है। कर्म पर उसकी दृष्टि रहती है, और नए जन्म में उन कर्मों को वहाँ भोगती है। यह हुई दूसरी बात।

तीसरी बात यह कि जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं, जिनका आकस्मिक निधन होता है, उनका जन्म तुरन्त नहीं होता। कभी नहीं। वे भटकते हैं। मरना तो चाहते नहीं थे, सहसा मौत आ गई, तैयार तो थे नहीं। जैसे हम हैं, हम तैयार हैं, हमारी उम्र कहती है तैयार रहो, अब नहीं तो दस साल के बाद सही। हो सकता है हम 90-100 साल तक भी जीवित रहें, वह दूसरी बात है, मगर उम्र कहती है, बेटा तुम तैयार रहो। अब ऐसे व्यक्ति के लिए, जो तैयार है, बात

दूसरी है, मगर जो तैयार ही नहीं है, आठ साल का लड़का है, छः साल की लड़की है, जिस चीज की तुम आशा ही नहीं करते हो, अचानक उस पर पड़ जाते हो तो क्या होता है? भटकते हो। तब उसके लिये श्राद्ध आदि कर्म लागू होते हैं। जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं उनके श्राद्ध का एक नियम होता है, सामान्य व्यक्ति की मृत्यु जो होती है उसका अलग नियम होता है। हमलोगों का श्राद्ध नहीं होता है क्योंकि हमलोगों का श्राद्ध संन्यास के दिन कर लेते हैं। जिस दिन संन्यास लेते हैं उसी दिन हम लोग पिण्ड-दान कर लेते हैं, इसलिए हम संन्यासियों का श्राद्ध नहीं होता। वैरागियों का भी श्राद्ध नहीं होता। अविवाहित और बिना सन्तान वाले का श्राद्ध दूसरा है।

श्राद्ध के माध्यम से उस जीवात्मा को यह संदेश देना है कि अब तुम जाओ, तुम यहाँ लटके मत रहो। दरवाजे पर एक भिखारी आ गया, दिनभर खड़ा है, किसी ने कुछ बोला नहीं, वहीं लटकते रहेगा। फिर कोई जाकर बोलता है उसको, 'देखो भाई, यहाँ तो कुछ मिलने वाला है नहीं। चार रोटी लो, नमक लो और चले जाओ।' उसका निपटारा कर दिया। जीवात्मा का निपटारा करने के लिये, उसे गति देने के लिए ही श्राद्ध आदि विधान किये जाते हैं। सबके लिए ये विधान कारगर हों, कोई जरूरी नहीं है। कभी-कभी नहीं भी होता है। कुछ आत्माएँ जाने के लिए बड़ी अनिच्छुक होती हैं। उनके लिये फिर गया-श्राद्ध का विधान है। जब तुम्हारे घर से कोई नहीं जाता है तो पुलिस को बुलाते हो न? वैसे ही गया-श्राद्ध को अंतिम माना जाता है।

जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई है, उस व्यक्ति की गति हुई कि नहीं, मतलब उसको आगे के सफर के लिए रेलगाड़ी का टिकट मिला कि नहीं, आखिर यह कैसे जानोगे? इसके लिये तो किसी के पास उपाय है नहीं। इसलिये हमलोगों के यहाँ विधान है कि जब कभी किसी के घर में मृत्यु होती है तो उसके कारण को देखना होता है – अकस्मात् मृत्यु, दुर्घटना, अनपेक्षित मृत्यु, सामान्य मृत्यु। जब हम जायेंगे तो सामान्य मृत्यु मानी जायेगी। 80-90 साल में जो आदमी गया वह अपेक्षित है, 8-10 साल में जो जाता है वह अपेक्षित नहीं होता। न तो हम अपेक्षा करते हैं न तो वह। इसको कहते हैं असामान्य या अकाल मृत्यु। वह दुर्घटना की वजह से हो सकती है, और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी का पता ही नहीं चलता है। जब मृत्यु के कारण का, स्थान का और तिथि का पता नहीं चले, तब फिर उसके लिये अलग से

श्राद्ध होते हैं। स्त्री का श्राद्ध, संन्यासी का श्राद्ध, अज्ञात मृत्यु का श्राद्ध – सब अलग-अलग होते हैं।

ये श्राद्ध क्यों किये जाते हैं? इसलिए कि महात्माओं के सिवा कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता है। मरते सब हैं, शत-प्रतिशत, मगर कोई मरना नहीं चाहता। महाभारत में यक्ष-प्रश्न का प्रसंग आता है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, तो युधिष्ठिर ने जवाब दिया था कि सबेरे और शाम, दिन-प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, मगर जो बचे हुए हैं वे समझते हैं कि वे नहीं मरेंगे –

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

बाकी लोग जीना ही चाहते हैं, सबसे बड़ा आश्चर्य दुनिया का यही है। कुछ गिने-चुने महात्मा लोग ऐसे हैं जो जाने के लिए तैयार हैं। उन लोगों को छोड़ दो, बाकी सब लोग घर से, माँ-बाप से, बेटा-बेटी से, पैसा-दुकान से इतने चिपके रहते हैं कि जबरदस्ती निकाल भी दो तो पीछे ही देखते रहते हैं। सारी दुनिया का यही हाल है। इसलिये उस आत्मा को श्राद्ध के द्वारा बोला जाता है, जाओ, जाओ। उसको दरवाजे पर ही से लौटा दिया जाता है। जैसे तुम किसी भिखारी को रोटी दे देते हो और जब नहीं जाता है तो पुलिस को बुलाकर निकलवाते हो, उसी तरह से जो अनिच्छुक आत्मा है, जो उस घर के बन्धन में बंधी हुई है, आसक्तियों में बंधी हुई है, उस घर से चिपकी हुई है, वहाँ से जाने का नाम नहीं लेती, उस आत्मा को मुक्त करने के लिये श्राद्ध किया जाता है।

आत्मा को मुक्त करना ही चाहिये। इसीलिये यह नियम है कि जब किसी के घर में मृत्यु होती है तो उस आत्मा को श्राद्ध आदि नियमों के साथ विदा किया जाता है। हमलोगों के यहाँ हमेशा कहा जाता है, सत्संग में जाओ, तीर्थ करो, ज्ञान की पुस्तकें पढ़ो, भोजन का नियम बतलाया जाता है, ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। क्यों? इसलिए कि उस समय बुद्धि अगर शुद्ध रहेगी तो आसक्ति कम रहेगी। यह स्वाभाविक है। आदमी को अपने जूते से, अपनी घड़ी से कितना प्रेम है, तो बेटा-बेटी से प्रेम नहीं होगा क्या, आसक्ति नहीं होगी क्या? आसक्ति वास्तविकता है और यह आसक्ति मेरी तरफ से भी है,



तुम्हारी तरफ से भी है। जो गया उसमें भी आसक्ति है, वह मुक्त नहीं है और जो है, उसमें भी आसक्ति है। वह तो चला गया, मगर देख रहा है हमारी तरफ। उसको बोला जाता है, 'बेटा जाओ, तुम्हारे यहाँ रहने से कोई फायदा नहीं। अगर तुम यहाँ रहोगे भी तो क्या मिलेगा?'

जीवन में सुख-दुःख का भोग बिना शरीर धारण किये नहीं होता है। लोफर आत्मा, जो इधर से उधर भटक रही है, उसे सुख-दुःख का भोग नहीं होता है। न भोजन का भोग होता है, न वस्त्र का भोग होता है, न पुत्र का भोग होता है, न स्त्री का भोग होता है, न धन का भोग होता है, कुछ नहीं होता। यह शरीर तो भोग के लिये मिला है हमको। शरीर के बिना जीवात्मा गेहूँ के बीज की तरह है। जब तक वह धरती में नहीं जायेगा तब तक वह गेहूँ का पौधा नहीं हो सकता।

सुख-दुःख भोगने के लिये जीवात्मा को बीज की तरह खेत में आना पड़ेगा। इसलिये उन आत्माओं के लिए श्राद्ध आदि विधान हैं ताकि वे भटकें नहीं।

ऐसी कितनी आत्माएँ हैं जो भटकती हैं। कुछ थोड़ी उद्दण्ड किस्म की होती हैं, तंग करती हैं, घर में कुछ गिरा देती हैं। सुना होगा आप लोगों ने। वे क्रोधी आत्माएँ हैं, और कुछ आत्माएँ निष्क्रिय स्वभाव की होती हैं, कुछ करती नहीं, बस लटकी रहती हैं कहीं-न-कहीं। जिस घर में थीं उसी घर में रहती हैं। हमें जब इंग्लैण्ड में आश्रम के लिए स्थान लेना था, तो ऐसे-ऐसे बंगले देखे जो सिर्फ चार-पाँच हजार पौण्ड में मिल रहे थे। क्यों? वे भूत-बंगले थे। वहाँ कोई रहता नहीं, उन्हें हॉन्टेड हाउस बोलते हैं। ऐसे बड़े-बड़े किले और बंगले हैं वहाँ। हमें ले जाते थे वहाँ, मगर हमें तो युक्ति मालूम थी। हम वहाँ यज्ञ करते थे, पूजा-पाठ करवाते थे, भजन-कीर्तन करवाते थे। इस तरह बहुत-से बंगले कौड़ियों के दाम मिले हमें।

मृत्यु के कई कारण होते हैं, बहाना कुछ भी हो सकता है। कोई उम्र होने से मरता है, कोई बीमारी से मरता है, कोई जहर खाने से मरता है, कोई दुर्घटना में मरता है। मरने के ये सब बहाने हैं, मगर मूल चीज कुछ और है। मृत्यु का कारण दुर्घटना या उम्र नहीं होती। मृत्यु का कारण केवल यह है कि जीवात्मा का उस शरीर में अब कर्म खत्म हो गया। अब चूँकि उसे पता नहीं है, इसलिये कोई रिक्शा से गिर जाता है तो कोई हवाई-जहाज से, कहीं कुछ हो जाता है उसको। बीमारी, दुर्घटना या उम्र तो एक बहाना है, मृत्यु वह घटना है जब जीवात्मा शरीर को छोड़ती है।

जीवात्मा स्वेच्छा से भी कुछ समय के लिए शरीर छोड़ सकती है। आदि शंकराचार्य के बारे में कहानी आती है। मण्डन मिश्र के साथ उनका शास्त्रार्थ हो रहा था तो मण्डन मिश्र की अर्धांगिनी सरस्वती ने उनसे कुछ ऐसे प्रश्न किये जिनका उत्तर शंकराचार्य को अनुभव से मालूम नहीं था। उन्होंने समय माँगा और वहाँ से चले गये किसी पर्वत पर। उन्होंने अपना शरीर अपने शिष्यों के हवाले कर दिया और शरीर छोड़कर किसी राजा के शरीर में प्रवेश कर गये। वह राजा मर गया था, पर जब उन्होंने उस शरीर में प्रवेश किया तो पुनर्जीवित हो गया। उस शरीर में प्रवेश करने के बाद उन्हें जो कुछ सीखना था, अनुभव करना था, सो कर लिया। लेकिन राजमहल के लोग बोलने लगे कि यह राजा तो ऐसा नहीं था। आखिर शंकराचार्य तो ज्ञानी थे, सिद्ध थे, इसलिए राजा

भी ज्ञानी सन्त की तरह लगता था। यह क्या हो गया? तो विद्वानों ने कहा कि किसी की आत्मा उसके अन्दर प्रवेश कर गई है। तब दरबारी बोले, 'अरे, तो उसके शरीर को नष्ट कर दो ताकि आत्मा वापस न जाए।' सारे राज्य में खोज करवाई कि कहीं कोई शरीर पड़ा हुआ तो नहीं है। पर्वत पर उनके शिष्य, हस्तामलक एक गुफा में उनके शरीर की रक्षा कर रहे थे। शंकराचार्य जी ने उन्हें मन्त्र भी बताया हुआ था वापस लाने का। हस्तामलक ने मन्त्र का सन्धान किया और फिर वे वापस शरीर में आ गये। महात्मा लोग समाधि अवस्था में या परकाया-प्रवेश की अवस्था में जब जाते हैं तो उनका शरीर बिल्कुल मुर्दे जैसा हो जाता है, उसमें प्राण नहीं रहते। जब जमीन के अन्दर एक-एक महीने जड़ समाधि में जाते हैं, तब उनके बाल नहीं बढ़ते। जीवित व्यक्ति के ही बाल बढ़ेंगे न, मरे हुए की क्या दाढ़ी बढ़ेगी?

हर एक व्यक्ति को मृत्यु का अर्थ, मृत्यु का कारण और मृत्यु का उद्देश्य समझना चाहिये कि मृत्यु होती क्यों है। अगर हम सब मरे नहीं, तो बाप-रे-बाप! बहुत मुश्किल हो जायेगी। जनसंख्या कितनी बढ़ जायेगी! लम्बी आयु भी एक बहुत बड़ी समस्या है। हमारे एक मित्र थे जो बहुत लम्बी आयु तक जीवित रहे। राजनेता थे, अब तो वे नहीं रहे, 99 या 100 साल में उनकी मृत्यु हुई। अस्सी साल की उम्र के बाद वे हमसे कहते थे, 'स्वामीजी हमको भेज दो।' हम कहते, 'क्या जल्दी पड़ी है?' बोलते, 'क्या करें? कुछ तो करने को है नहीं, जीवन में अब मेरे लिये है क्या?' पत्नी तो जीवित थी नहीं, साठ साल का उनका बेटा था, पोता था, पर-पोता था, चार-पाँच पीढ़ियाँ थीं उनकी।

स्वामीजी, उम्र बढ़ने पर पिछले बीते हुये क्षणों का बहुत ख्याल आता है।

हाँ, बीते हुये क्षणों का ख्याल जरूर आता है। देखो, जेब से अगर सौ रुपया खो जाए किसी का तो कुछ देर तो याद रहता ही है। निर्भर करता है आदमी किस किस्म का है। कुछ लोगों पर तो असर नहीं पड़ता, पर बहुत-से लोगों पर सौ रुपया खोने से बड़ा असर पड़ता है। कई दिनों तक वे सोचते रहते हैं, फिर वह मिट जाता है। उसी तरह से कोई जमीन-जायदाद या व्यापार खत्म हो जाए तो बहुत दिनों तक उसका मलाल रहता है। फिर वह भी मिट जाता है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति से तुमने अपेक्षाएँ रखी हों, उस पर तुम आशा लगाये बैठे हो, अगर वह बीच में चला जाता है तो कुछ दिन तक शोक चलता ही

है। यह एक ऐसा घाव है जो भावना और मन पर पड़ता है। भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक चोट है, फिर थोड़ी देर में भर जाती है। इसमें समय लगता है, मगर भरती है। हाँ, उसके अपने आप भरने की बजाय उसका इलाज होना चाहिये।

उसका इलाज है सत्संग, स्वाध्याय, कुछ समय के लिये त्यागी और संन्यासी की तरह सोचना, रहना और तीर्थाटन करना। जैसे आप घाव पर मलहमपट्टी करते हैं, वैसे ही यह मलहम लगाने के बराबर है। फिर वह जल्दी ठीक हो जाता है। अपने आप भी ठीक हो जाता है, मगर उसमें समय लगता है। अगर उसको जल्दी दूर करना है तो आदमी को अपने वातावरण को बदलना पड़ता है। जब तुम दूसरे वातावरण में जाते हो तो एक ब्रेक होता है। उसी वातावरण में रहते हो तो विचारों की निरन्तरता रहती है और यदि वातावरण को बदलोगे तो एक ब्रेक होता है। ऐसे दो-तीन ब्रेक करने से मलाल चला जाता है। हाँ, याद तो रहती है। हमारा कोई करीबी व्यक्ति मर गया तो क्या याद नहीं रहेगा? स्मृति से उसका लोप नहीं होता। हर एक घटना जो मनुष्य के कम्प्यूटर में चढ़ चुकी है वह तो स्मृति में रहेगी। स्मृति में रहना एक चीज है और शोक होना, विषाद होना दूसरी। स्मृति को नहीं मिटा सकते हो।

यह स्मृति मिटती है शरीर छूटने के बाद, उसके पहले नहीं। परन्तु शोक और विषाद को मिटाना इसलिये जरूरी है कि जब मनुष्य को किसी घटना की वजह से धक्का लगता है तो धक्का मुख्य रूप से दो जगह पर लगता है। वैसे तो कहते हैं शरीर में 76 स्थान हैं जहाँ धक्का लगता है, पर मुख्यतः दो जगह हैं, एक हृदय और दूसरा मस्तिष्क। कई बार जिगर में लगता है, गुर्दे में लगता है, धक्के के 76 मर्म स्थान हैं। कोई भी अति सुख या दुःख की घटना हो, उसका असर 76 मर्मस्थानों में कहीं पर भी पड़ सकता है। सुख का भी उतना ही असर पड़ता है जितना दुःख का। फर्क यह होता है कि हमलोग उसको महसूस नहीं करते हैं। मस्तिष्क पर इसका असर पड़ता है। मस्तिष्क इलेक्ट्रोमैग्नैटिक प्रणाली पर चलता है। आप मेरी बात सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, सोच रहे हैं, यह सब अन्दर में इलेक्ट्रोमैग्नैटिक क्रिया हो रही है, विद्युतचुम्बकीय क्रिया हो रही है। वैज्ञानिक उसकी फ्रीक्वेन्सी बताते हैं – अल्फा, बीटा, थीटा, डेल्टा। ये अलग-अलग फ्रीक्वेन्सी होती हैं। जब कोई घटना तुम्हारे दिमाग पर चोट करती है तो वहाँ का वोल्टेज कम हो जाता है। सामान्य भाषा में कहते हैं डिप्रेशन या विषाद हो गया।

ऐसी स्थिति में देखते हैं कि विरक्ति होती है, अध्यात्म की ओर आकर्षण होने लगता है।

होना चाहिये। पर यह भी बता दूँ कि वह बहुत दिन तक नहीं चलेगा। घबराने की जरूरत नहीं, तुम साधु-संन्यासी नहीं बनने वाले। किसी के प्रिय की मृत्यु के बाद विरक्ति होती ही है, होनी चाहिये, क्योंकि अगर प्रकृति इसको उत्पन्न नहीं करेगी तो समस्या आ जायेगी। यह प्रकृति की ऑटोमैटिक उपचार-प्रणाली है। विरक्ति होती है, सब छोड़ देने को मन करता है, किसी चीज में मन नहीं लगता है, सब फालतू चीज है – इसको कहते हैं श्मशान वैराग्य। यह श्मशान वैराग्य स्थायी नहीं होता, कुछ देर के लिए ही होता है। यदि यह न हो तो आदमी फिर बीमार हो जायेगा। यह एक प्रकार से प्राकृतिक उपचार का अंग है। उस समय बहुत मन करता है कि घण्टों बैठकर भगवान का भजन करें, रामायण या भागवत पढ़ते जाएँ, दुकान बन्द करके सत्संग में जाएँ। बहुत अच्छा है, मगर यह ज्यादा दिन रहेगा नहीं। जैसे-जैसे उपचार होते जायेगा फिर कुत्ते की पूँछ वही वापस टेढ़ी-की-टेढ़ी हो जाएगी।

वैराग्य कई प्रकार के होते हैं। एक होता है ज्ञान वैराग्य, जो हमको हुआ। दूसरा होता है प्रसूति वैराग्य। जब स्त्री का बच्चा पैदा होता है उस वक्त उसको बहुत दर्द होता है, उस समय उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है, मर्द को गाली देती है। पर वह भी थोड़े दिनों के बाद खत्म हो जाता है। तीसरा है श्मशान वैराग्य। अंतिम दो वैराग्य अस्थायी हैं, पर ज्ञान वैराग्य जीवन-भर चलता है, उसके आगे फिर छूटता नहीं। ये अस्थायी वैराग्य जो प्रकृति ने उत्पन्न किए, यह मन पर मलहम लगाने के लिये हैं। यदि न हों तो आदमी पागल हो जायेगा।

स्वामीजी, जैसे मेरी सास मर गई तो किसी ने मेरे पति से कहा कि जो चीज उसकी माँ को अच्छी लगती थी उसका त्याग कर दो, उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। तो मेरे पति ने सन्तरा और मौसम्बी का त्याग कर दिया, क्योंकि वही उसकी माँ को अच्छा लगता था और मुझे भी खाने को मना कर दिया। क्या यह सही है? उससे आत्मा को शान्ति मिलती है?

ये सब मन को रोगमुक्त करने के लिये हैं। त्याग में कोई झंझट नहीं होता। तुम धन जोड़ो, रिश्तेदारी जोड़ो, मकान बनाओ, जेवर बनाओ, कपड़े बनाओ,

जोड़ते जाओ – कितना मुश्किल होता है? पर छोड़ने में तो केवल मन की तैयारी है। इसमें कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता। छोड़ने में केवल एक ही चीज है, बस निर्णय लो और करो। गई हुई आत्मा के लिये जो छोड़ने को कहते हैं वह अपनी जगह उचित है। क्यों? इससे तुम्हारे मन को शान्ति मिलेगी। मन को अगर शान्ति मिलेगी तो उस घटना का तुम्हारे दिल-दिमाग पर जो खराब असर पड़ा है, वह मिटेगा, जैसे घाव मिटता है शरीर में।

देखो, संसार में दो घटनायें बड़ी विचित्र हैं, जिनके बारे में किसी को कुछ समझ में आता नहीं। एक तो है जन्म और दूसरा है मृत्यु। तुम कैसे पैदा हुये, कहाँ से पैदा हुये, कुछ समझ में नहीं आता। कहाँ पर हमको नौ महीने रखा गया, कैसे रखा गया, उसके बारे में जब हम चिकित्सा शास्त्र की किताबें पढ़ते हैं तो दिमाग घूम जाता है। उस छोटे-से भ्रूण के अन्दर ही इतना जबर्दस्त स्नायु-जाल, इतनी धमनियाँ-पेशियाँ, इतने रेशे, इतनी प्रणालियाँ, सारा माया, ममता, मोह, रोग, शोक, हंसना-रोना, जीना, धोखा देना, प्यार करना-यह सब है। कैसे यह सब बन गया? वीर्य की एक बूँद में ढाई अरब कोशिकाएँ होती हैं। उनमें केवल एक कोशिका से तुम बने हो! सारी दुनिया एक कोशिका से पैदा हुई और उस एक कोशिका ने क्या कमाल करके रखा हुआ है, देखो तो सही!

एक तो जन्म आश्चर्य की घटना है, और दूसरी आश्चर्य की घटना है मृत्यु। कहाँ जाते हैं मृत्यु के बाद, कुछ पता नहीं। एक बहुत पुरानी कहानी आती है। वाजश्रवा नाम का एक ऋषि था, उसका एक बेटा था जिसका नाम था नचिकेता। एक दिन उसके बाप ने सोचा कि अब अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे दें। सारी सम्पत्ति में गाय आती है, मकान आता है, पैसा आता है और बेटा भी आता है। बेटा बाप की सम्पत्ति है। तो बेटे ने पूछा पिता से, कस्मै मां दासस्यसि? तुम मुझे किसको दोगे? बाप चुप रहा। बेटे को क्या कोई दान में देना चाहता है? उसने दुबारा पूछा। फिर कोई जवाब नहीं दिया। उसने जब तीसरी बार पूछा तो बाप को गुस्सा आ गया, कहा, मृत्यवे त्वा ददामि, जा तुझे मौत को दे देता हूँ। कहते हैं कि पिता के शब्द के बल पर नचिकेता की मृत्यु हो गई और वह यमलोक पहुँच गया।

जब यमलोक पहुँचा तो यमराज उस समय वहाँ थे नहीं। तीन रात नचिकेता द्वार पर ठहरा। जब यमराज वापस आये तो देखा कि ब्राह्मण पुत्र तीन रात से बाहर ठहरा हुआ है। उनको बहुत दुःख हुआ, उस जमाने में ब्राह्मण की बड़ी

कदर होती थी। यमराज ने कहा, 'देखो, तुम तीन रात यहाँ बिना भोजन-पानी के ठहरे हो, तुम तीन वर माँगो।' नचिकेता ने तब तीन वर माँगे। पहला वर था पंचाग्नि का, जो हम यहाँ करते थे। पंचाग्नि कैसे करते हैं, उसका ईंटा कैसे बनाया जाता है, अग्नि कैसे जलाई जाती है, भस्म कैसे लगाया जाता है, यह सब बताया उन्होंने। दूसरा वर माँगा, 'जब मैं वापस जाऊँ तो मेरे पिता मुझे पहचान जायें।' आखिर मृत्यु के बाद तो कोई पहचानता नहीं दूसरे शरीर में। यमराज ने कहा तथास्तु।

तीसरे वर में नचिकेता ने पूछा, 'कोई कहते हैं कि मृत्यु के बाद कुछ रहता है, माने खतम नहीं होता सब, और कोई कहते हैं कुछ नहीं रहता। आप तो इधर भी रहते हो, उधर भी। जीवन-मृत्यु के दोनों तरफ आप हो, तो बताओ सत्य क्या है?' यमराज ने कहा, 'देख बेटा, ये दो वरदान तो तूने हमसे माँग लिये, हमने दे भी दिये, पर तीसरा वरदान हम नहीं दे सकते, क्योंकि देवता और ऋषि-मुनि भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं पा सके हैं। आज तक मृत्यु और मृत्यु के बाद की अवस्था एक टॉप सीक्रेट, गूढ़ रहस्य बनी है, इसलिए मैं नहीं बताऊँगा।' नचिकेता बोला, 'मैं तो आप से यही माँगता हूँ बस।' उन्होंने कहा, 'बेटा, हाथी माँगो, घोड़ा माँगो, सुन्दर स्त्रियाँ माँगो, राज्य माँगो, तुम मुझसे कुछ भी माँगो पर इस प्रश्न का उत्तर मत माँगो।' पर नचिकेता अड़ गया। तब यमराज ने उस प्रश्न का जो उत्तर दिया वह सीधा नहीं दिया। उन्होंने ईश्वर सम्बन्धी विद्या, जिसको ब्रह्मविद्या कहते हैं, उस पर बोलना शुरू किया। शरीर पर, मन पर, जीवात्मा पर, परमात्मा पर बोलना शुरू किया। उन्होंने सीधा नहीं कहा, बल्कि ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। अन्त में कहते हैं कि नचिकेता को सन्तोष हो गया। यह सारा प्रसंग कठोपनिषद् में है। अगर नहीं पढ़े हो तो जरूर पढ़ना, बहुत अच्छा उपनिषद् है यह।

हमलोगों के यहाँ गरुड़ पुराण जैसे पुराणों और अन्य वैदिक ग्रन्थों में मृत्यु के बारे में विस्तार के साथ बताया गया है। अनेकों मत-मतान्तर हैं जिन पर चर्चा हुई है। मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है? मैं स्वामी सत्यानन्द की बात नहीं कह रहा हूँ, वह तो शरीर का नाम है। इसके अन्दर जो ज्योति-स्वरूप आत्मा है, जो किसी वजह से बन्धन में है, उसकी बात हो रही है। वह आत्मा क्यों बन्धन में है? वह मुक्त क्यों नहीं होती? वह कौन-सी मजबूरी है जो तुम बन्धे हुए हो, मुक्त नहीं होते। आखिर तुम्हारा स्वरूप तो ज्योति-स्वरूप है, तुम

अन्धकार-स्वरूप तो हो नहीं। तुम ईश्वर रूप हो, भगवद् रूप हो, तुम शर्मा या वर्मा या यादव थोड़े ही हो। यह तो किसी पण्डित ने नाम दे दिया। यह तुम्हारा नाम नहीं, तुम्हारे मकान का नाम है। तुम्हारे अन्दर जो आत्मा घट-घट वासी है, वह ज्योति-स्वरूप है, मगर बंधी क्यों है? किस परिस्थिति ने उसे फँसाया है, और वह क्यों मुक्त नहीं हो रही है? जब तक शरीर में है तो शरीर का बन्धन रहा, यह मान लिया, मगर मृत्यु के बाद भी मुक्त नहीं होती है। मृत्यु के बाद भी बन्धन चलता है। वह है कर्मों का बन्धन, जो उसे छोड़ता नहीं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में बहुत अच्छा दृष्टान्त दिया गया है। कहा गया है कि दो पक्षी हैं, जो दोस्त हैं और एक साथ एक ही पेड़ पर रहते हैं। केवल एक फर्क है। नीचे वाला जो पंछी है वह उस पेड़ के फल खाता है। फल कड़ुवा लगता है, थूक देता है, फिर दूसरा लेता है, वह भी कड़ुवा लगता है, थूक देता है। वह लेते जाता है, थूकते जाता है। कभी-कभी बीच में एक-आध मीठा फल मिल जाता है। उस वक्त वह ऊपर वाले पंछी से कहता है, 'ए! खाओ न तुम भी।' दूसरा कहता है, 'तुम ही खाओ और थूकते जाओ। मुझे न खाना है न थूकना है।' यह जीवात्मा और परमात्मा का उदाहरण है जो शरीर के अन्दर हैं।

इस विषय पर अनेकों विचारधाराएँ हैं जिनका विस्तार इतना है कि बोलते-बोलते कई दिन लग जाएँ। जब आदमी मरता है उसके शरीर को क्यों आग लगायी जाती है, फिर पाँच तत्त्व कैसे निकलकर आकाश में व्याप्त होते हैं, फिर किस प्रकार से बादल बनते हैं, कैसे उनसे बरसात होती है, कैसे वह जमीन पर आती है, फिर कैसे अन्न पैदा होता है – वेदों में ऐसी बहुत प्राचीन परिचर्चाएँ हैं।

जैसे देवी-देवता समझाने के लिये कहे गये हैं तो क्या ये आत्मा, पुनर्जन्म आदि भी समझाने के लिये शब्द हैं या सच में होते हैं?

अरे भाई, पुनर्जन्म होता है, पक्की बात है। सौ प्रतिशत हम जानते हैं। हम अनुभव से बोलते हैं, किताब पढ़कर नहीं। हम मरेंगे तो सब मिटेगा नहीं, तुम मरोगे तो सब कुछ मिटेगा नहीं। कुछ रहेगा जो दूसरी जगह जायेगा। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं। पुनर्जन्म का मतलब होता है कि जीव मकान छोड़कर निकल तो गया, मगर खत्म नहीं हुआ, वह दूसरे शरीर में जायेगा, दूसरे गर्भ में प्रवेश करेगा, मगर 13 दिन के पहले नहीं। आत्मा होती है, आत्मा एक पहचान है। हर एक आत्मा भिन्न है। वह दूसरी माँ के गर्भ में प्रवेश करती

है, अटकती है, सुख-दुःख भोगती है। पूर्व में अगर अच्छा काम किया है तो अच्छे घर में जाती है। गीता में यह लिखा भी है।

यह सिर्फ समझाने के लिये कहा है न?

नहीं, जब समझाया जायेगा तो ठीक बात ही समझायी जायेगी। पुनर्जन्म होता है, लोगों ने देखा है, सन्त-महात्माओं ने देखा है, और कई लोग ऐसे हैं जिनको अपने पूर्व जन्म की स्मृति भी है। हमारे एक परिचित हैं, जो बड़े सरकारी अफसर हैं। उनकी पत्नी को अपने तीन जन्म याद हैं और तीनों जन्मों के परिवारों से सम्बन्ध भी रखा है। हाँ, यह दुर्लभ है, सबके साथ नहीं होता है, मगर तीन साल तक के बहुत-से बच्चों को, जिन्हें शिशु कहते हैं, पूर्व जन्म याद रहता है, खास करके लड़कियों को। किसी भी बच्ची को, जिसकी अभी प्रपंच में रुचि नहीं हुई है, उसे बोलने दो, बातूनी बनाओ, बहुत कुछ बोल देगी। इसके एक नहीं, सैकड़ों प्रमाण हैं।

आज से करीब पचास साल पहले एक घटना हुई थी। उस समय हम ऋषिकेश में थे। शान्ति नाम की एक लड़की थी, जिसके माता-पिता मथुरा तीर्थ करने जा रहे थे। उनकी बच्ची गोद में थी। रास्ते में एक जगह वह अड़ गई। बोली, यह मेरा घर है, मेरी माँ यहाँ रहती है। माँ-बाप को आगे जाने ही नहीं दिया। बेचारे झमेले में पड़ गये। खैर, वे घर के अन्दर गये, बच्ची ने सब कुछ पहचान लिया। वह पत्नी थी किसी की, उसके पति के बदन में कहाँ दाग है, वहाँ तक बताया उसने। वहाँ की तिजोरी को भी पहचान लिया!

अब उन लोगों ने सोचा कि ये यहाँ कुछ बदमाशी करने के लिये, ठगने के लिये आये हैं। संदेह हुआ, मुकदमा हो गया। अब पुनर्जन्म के लिये अदालत क्या निर्णय देगी जी? वहाँ तो कुछ ऐसा लिखा है नहीं, कोई कानून या अधिनियम तो है नहीं। तब उन्होंने तीन संन्यासियों को कमिशन के रूप में नियुक्त किया, जिसमें एक हमारे गुरुजी भी थे। वहाँ उनसे बयान लिया। उन्होंने यही कहा कि पुनर्जन्म होता है और लड़की उस जानकारी के आवेश में थी। इन लोगों के मन में कोई माल हड़पने की साजिश नहीं थी। खैर मुकदमा तो फिर रफादफा हो गया। वह लड़की बाद में यहीं भागलपुर में ब्याही गई थी।

चार साल के बाद जब बच्ची माया की दुनिया में आती है, भाई-बाप को पहचानने लगती है, वह सब पुराना भूल जाती है। उसके बाद केवल पूर्वजन्म

के कर्मों से प्रेरित होकर ही सब कुछ करती है। जैसे आदमी सपना भूल जाता है, बस वैसे ही वह पूर्वजन्म भूल जाती है।

ऐसी ही एक और घटना याद आ रही है जो करीब चालीस साल पहले रीडर्स डाइजेस्ट में छपी थी। किसी रूसी गाँव में एक आदमी मर गया और मरने के एक-दो घण्टे बाद वह अचानक जीवित हो गया और कोई दूसरी भाषा बोलने लगा। वहाँ के लोगों ने सोचा कि इसका दिमाग थोड़ा-सा घूम गया है, इसलिए पागलखाने भेज दिया। वह पागल तो था नहीं, पागलखाने में वह डॉक्टर को सब बतलाता था। बोलता था स्पेनिश भाषा में और कहता था कि मेरी तो दाढ़ी थी ही नहीं, मैं तो इतना बूढ़ा नहीं था, यह शरीर तो मेरा है नहीं, मैं यहाँ कैसे आ गया, मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। डॉक्टर मनोवैज्ञानिक था, उसने सोचा कि इसमें जरूर कुछ राज़ है। उसने स्पेनिश भाषी देशों से सारी अखबारें मँगाई। अर्जेन्टिना की एक अखबार में उसने खबर पढ़ी कि एक गाँव में एक आदमी मरा और थोड़ी देर के बाद फिर जिन्दा हो गया। अब वह रूसी भाषा में बोलने लगा। कहा, मेरी दाढ़ी कहाँ चली गयी?

यह सब उस डॉक्टर ने अखबार में पढ़ा। तब वह सरकार से अनुमति लेकर इस आदमी को अर्जेन्टिना ले गया। घर का पता तो अखबार से मिल गया था। यह उस घटना के तीन-चार साल के बाद की बात है, तब तक वह पागलखाने में ही था। जब वह उस घर के अन्दर गया और दूसरे को देखा तो कहा, 'अरे, वह तो मैं हूँ?' दोनों एक दूसरे को पहचान गये। दाढ़ी वाले ने दाढ़ी वाले को पहचान लिया और सफाचट ने सफाचट को पहचान लिया! तुरंत आत्माएँ बदल गईं। यह सच्ची घटना है।

अब ऐसा तो है नहीं कि मरने के बाद सबको आत्मा दिखाई दे, परन्तु कभी-कभी इक्की-दुक्की घटनायें दुनिया में हो जाती हैं जिनसे हमलोगों को पता चलता है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। मृत्यु जीवन के पुस्तक का एक अध्याय है, जिसके बाद अगला अध्याय शुरू होता है। प्रकृति ने यह प्रावधान इसलिये बनाकर रखा है कि इस शरीर को 200 साल जिन्दा रखकर करोगे क्या? न खा सकते हैं, न बैठ सकते हैं, न मौज कर सकते हैं, न किसी चीज में रुचि है। रुचि तो उन्हीं लोगों को होती है जो कम उम्र के होते हैं। जिन्दगी को भोगने की जो लालसा होती है, वह बीस से पचास की उम्र में होती है। पचास के बाद भोग की लालसा थोड़े ही होती है? इसलिये

मनुष्य को भोग का अवसर देने के लिये मृत्यु का होना आवश्यक है। यदि मृत्यु नहीं होगी आदमी भोग नहीं भोग सकेगा। भोग में माँ-बाप का प्यार, भाई-बहन का प्यार, दुःख और सुख, रोना और धोना, लड़का-लड़की की शादी, यह सब आता है। यह भोग का चक्कर बार-बार, बार-बार चलता है। शंकराचार्य जी ने कहा है – *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।* जीव बार-बार जन्मता है, बार-बार मरता है और बार-बार माता के गर्भ में आता है। उसके बाद एक-न-एक दिन उसको ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वह बोलता है, 'धत्त तेरी की! अब फिर यहाँ नहीं आयेंगे' और मुक्त हो जाता है।

स्वामीजी, विदेश में लोग हमसे पूछते हैं कि सिन्दूर और बिन्दी क्यों लगाते हो?

तुम पूछो कि वे लोग अंगूठी क्यों पहनते हैं! अरे भाई, लड़की को बताना पड़ता है कि मेरी शादी हो गयी है ताकि लड़का उस पर नजर न रखे। इन चीजों का मतलब होता है। सबसे पहले सामाजिक अर्थ होता है कि लड़की को देखकर पता चले कि उसका बुकिंग हो गया है। समाज को चलाने के लिये, सामाजिक स्पष्टता के लिये यह बहुत जरूरी है। कोई लड़की बैठी है, तुम्हारा मन उस पर जा रहा है – नहीं, उसका बुकिंग हो गया है, दूर रहो। यह इसका सामाजिक अर्थ है। और जब कोई स्त्री विधवा हो जाती है, उसका पति नहीं रहता, तब भी तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह स्वतन्त्र तो है, मगर अस्पृश्य है, उस पर हाथ नहीं लगाना।

अविवाहिता, विवाहिता और विधवा – ये हमारे समाज में स्त्री के तीन स्वरूप होते हैं, और समाज में व्यक्ति को इनके लक्षण जानने चाहिये। सामान्यतः हमारे समाज में पुरुषों की दृष्टि स्त्रियों की तरफ बराबर रहती है, तो उस दृष्टि में कहीं पर गलती न हो, कोई भूल न हो, इसके लिये यह पहचान होना बहुत आवश्यक है। इसको ज्यादा समझाने की आवश्यकता नहीं है, इस तरह की प्रथा प्रायः हर कौम में है। उनके यहाँ अँगूठी होती है। हमलोगों के यहाँ अँगूठी नहीं थी पहले। मंगल-सूत्र और बिन्दी, ये दो चीजें थीं। अँगूठी की प्रथा तो अभी आयी है। खैर लड़की को अंगूठी भी मिल जाए तो अच्छा ही है, क्या फर्क पड़ता है!

दूसरी बात, हमलोगों के यहाँ जो सोलह शृंगार होते हैं, उनमें से एक यह भी है। लड़की के माथे पर जो बिन्दी होती है वह उसकी शोभा है, उसका अलंकार है। उसको कई तरह से लगा सकते हैं, बड़ा करके लटका सकते हैं।

तीसरी बात, जिसका सामान्य व्यक्तियों से कोई मतलब नहीं है – बिन्दी लगाने की जगह आज्ञा चक्र के सामने का स्थान है। आज्ञा चक्र रीढ़ की हड्डी का शीर्ष भाग है, जहाँ पीनियल ग्रन्थि होती है। बिल्कुल उसके सामने की जगह भ्रूमध्य है। हम जब सबेरे ध्यान के लिये बैठते हैं तो माथे पर टीका लगाकर बैठते हैं। इससे वहाँ का ख्याल रखने में सरलता रहती है। लगाकर देखो न, तुम्हें बराबर वहाँ खिंचाव जैसे लगेगा। दो भौंहों के बीच देखने को भ्रूमध्य दृष्टि कहते हैं। वह मन और उसकी शक्तियों को एकाग्र करने के लिये एक साधन है।

विदेश के लोग तो इस तरह के बहुत-से सवाल पूछते हैं, मगर आप लोग समझा नहीं सकते हैं। आजकल पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियों को भी अपनी संस्कृति का ज्ञान नहीं है। हमसे तो एक बार इंग्लैण्ड में किसी ने पूछा था कि आप गाय को इतना पवित्र क्यों मानते हैं। मैंने ऐसा जवाब दिया कि सारी सभा तीन मिनट तक ताली बजाती रही। मैंने कहा, 'देखो भाई! जिस तरह से तुम कुत्ते को pet मानते हो, पालतू जानवर की तरह रखते हो, हमलोग गाय को पवित्र मानते हैं। तुम लोग कुत्ते को pet मानते हो, अपनी गाड़ी में बिठा सकते हो। हम भी गाय को पवित्र मानते हैं, अगर हमारी उतनी बड़ी गाड़ी होती तो हम भी उसको गाड़ी में बिठा देते, कोई फर्क नहीं पड़ता।' बड़ी देर तक लोग खड़े होकर ताली बजाते रहे। दूसरी बात हमने उससे कही, 'हम तो गाय को आध्यात्मिक दृष्टि से पवित्र मानते ही हैं और आज हम विज्ञान के मुताबिक आप को बतायेंगे कि गाय परम पवित्र जानवर है।' तब हमने उनको बताया कि दुनिया में जितने जानवर हैं, चाहे वह कुत्ता हो या गधा या मनुष्य, उनकी टट्टी ले लो और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण करो। सबमें वायरस-बैक्टीरिया मिलेगा, सबमें कुछ-न-कुछ जहरीली चीज मिलेगी। सिर्फ गाय एक ऐसा जीव है जिसके गोबर में बैक्टीरिया या वायरस का पूर्ण अभाव है। उसके बाद सब चुप रहे। हमने कहा, क्या दुनिया में गाय के अलावा कोई ऐसा जानवर है जिसका कचड़ा बैक्टीरिया-वायरस रहित है, रोगरहित है, पवित्र है? आप नाम बोल दो, मैं अपना उत्तर वापस ले लेता हूँ। अब ऐसी गाय को पवित्र नहीं कहोगे तो क्या अपवित्र कहोगे!

हमलोगों का सांस्कृतिक ज्ञान एकदम खत्म हो गया है, इसलिये हम अपने धर्म की रक्षा नहीं कर पाए। जबकि हमलोगों के धर्म में हर चीज को अच्छी तरह परिभाषित किया गया है। हम जनेऊ की सटीक परिभाषा आपको दे सकते हैं। आप तो खैर इस धर्म के अनुयायी हैं, आपको तो मानना ही है, मैं तो विदेशियों को मनवा देता हूँ। जब किसी के घर में कोई मर जाता है तो सर क्यों मुड़ा देते हैं, श्राद्ध क्यों करते हैं, सब चीजें समझायी जा सकती हैं। तब यह अंधविश्वास या धर्म के रूप में नहीं, जीवन-विज्ञान के रूप में दिखता है, जिसे हमारे पूर्वजों ने कई हजार वर्षों तक सोच करके, समझ करके, सुधार करके विकसित किया। हमारे यहाँ भी गलतियाँ हुई हैं। ऐसी बात तो नहीं कि गलतियाँ बिल्कुल नहीं हुई हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने चिंतन किया है, चर्चा की है। एक आदमी ने बोल दिया और सब ने मान लिया, ऐसा दूसरे धर्मों या सम्प्रदायों में हो सकता है, हमलोगों के यहाँ नहीं होता है। हमारे यहाँ एक मनीषी एक बात बोलता है तो दूसरा दूसरी बात बोल देता है, 'क्यों भाई! यह कैसे हो गया?' तीसरा तीसरी बात बोलता है। महाभारत में कहा भी गया है –

श्रुतिर्विभिन्नाः स्मृतयश्च भिन्नाः, नैको मुनिर्यस्य वचनः प्रमाणः।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः सः पन्थः॥

अर्थात् वेद भी अलग-अलग बात बोलते हैं, स्मृतियाँ भी अलग-अलग बात कहती हैं। कोई ऐसा मुनि नहीं है जिसका मत पूर्णतया प्रामाणिक हो, दूसरों से मिलता हो। धर्मस्य तत्त्वम – क्या धर्म है, क्या अधर्म है, क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, क्या ठीक है, क्या गलत है, इसका जो रहस्य है वह किसी को मालूम नहीं है। इसलिए महापुरुष जिस रास्ते पर चलते हैं, तुम भी उसी रास्ते पर चलो।

ऐसी बातें तुमको और किसी धर्म में नहीं मिलेंगी। पर इस धर्म में विद्वान् होना जरूरी है, बहुत जानकारी जरूरी है और जिन्होंने जानकारी प्राप्त की है उन्होंने दिग्विजय की है। स्वामी विवेकानन्द जी ने दिग्विजय की है, प्रभुपाद भक्तिवेदान्त जी ने दिग्विजय की है, महर्षि महेश योगी ने दिग्विजय की है, हमने दिग्विजय की है, क्योंकि कोई चीज ऐसी नहीं है अपने धर्म की, वेदों की जिसे हम नहीं समझा सकते हैं। और उन लोगों को मानना पड़ेगा। हम डण्डे के बल पर नहीं, बुद्धि के बल पर अपनी बात मनवाते हैं। अब गाय

की बात गलत बोली है क्या? आप जानते हैं ब्राजील में एक बीमारी हो गयी थी, पैरों की बीमारी। वहाँ के डॉक्टरों ने एक ही बात कही, गोबर के घोल से अपने सारे फर्श को लीप दो। मज़ाक भी चला कि संगमरमर की टाईल्स को गोबर से लीप रहे थे!

खैर ऐसी बहुत-सी चीजें हैं गाय के बारे में। गाय का दूध ही ले लो। क्या तुम गधी का दूध पियोगे, खच्चरी का दूध पियोगे, घोड़ी का दूध पियोगे? केवल एक ही दूध उपलब्ध है, खास करके उन लोगों के लिये जो शाकाहारी हैं, जो मांस-मछली नहीं खाना चाहते हैं। गाय से ही बैल पैदा होता है। थोड़ी देर के लिये कल्पना करो, अगर आज भारत में सब बैलगाड़ियों को कानून द्वारा रोक दिया जाए तो क्या होगा? माल कैसे भेजोगे? ट्रक से करोगे न? तो कितना डीजल खपत होगा? सरकार को कितना ज्यादा खर्चा करना पड़ेगा? आज बैलों की वजह से कितना पैसा बच रहा है। आज अगर कह दिया जाए कि बैलगाड़ी सड़क पर नहीं चलेगी, तुमको ट्रक से ही माल लाना पड़ेगा तो न जाने कहाँ-कहाँ से मंगाना पड़ेगा तेल। सारी-की-सारी विदेशी मुद्रा उसी में चली जायेगी। आर्थिक दृष्टि से भी देखो तो गाय-बैल का बहुत महत्त्व है। राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए यह जरूरी है कि गाय और बैल से अभी हम छुट्टी नहीं लें। आखिर अमेरिका और यूरोप में भी घोड़ा और बैल से हल चलाते हैं। हम तो खुद देखकर आये हैं। हाँ, ट्रैक्टर भी चलते हैं, हम मानते हैं, वहाँ की हालत यहाँ से बहुत अच्छी है, मगर वहाँ बैल से कुछ नहीं चलता, ऐसा नहीं है।

ये सब बातें, चाहे वह सिन्दूर की बात हो या गाय की बात या कोई और बात, तुम्हारे धर्म में, जिसे तुम हिन्दू धर्म बोलते हो, किसी वजह से हैं। वास्तव में यह वैदिक धर्म है। इसका मूल है वेद और वेदों में कट्टरता नहीं है। तुम जिस तरह से भी रहना चाहते हो, रहो, पर जीवन की कुछ मर्यादाएँ हैं। उनके अन्दर चलो, कोई फर्क नहीं पड़ता है।

मासिक धर्म के समय स्त्री को पूजा करने या मन्दिर जाने से मना करते हैं। वहाँ क्यों नहीं जाना चाहिये?

जिस जमाने में ऐसा नियम बना, उस वक्त जब स्त्रियाँ मासिक धर्म में जाती थीं तो उन्हें बहुत-सी व्यावहारिक समस्याएँ होती थीं। सैनेट्री टॉवल था नहीं,

तो क्या करतीं? एक कोने में बिठला दिया, कहा, बैठे रहो चार दिन तक वहाँ। उनको केवल पूजा से ही नहीं मना किया गया, उनको तो उठने से मना किया गया, नहीं तो यहाँ, वहाँ, सब जगह खून गिरता रहता, कोई व्यवस्था तो थी नहीं। इसलिये मना किया गया, इसलिये नहीं कि स्त्री अपवित्र होती है। स्त्री मासिक धर्म में अपवित्र नहीं होती। उसे अपवित्र मानना गलत बात है। आखिर मासिक धर्म एक तरह से गर्भाशय को झाड़ू लगाने की प्रक्रिया है। हर महीने स्त्री के गर्भाशय की सतह साफ होती है और गर्भ को गर्भ-धारण के योग्य बनाया जाता है। जैसे तुम मकान साफ करते हो, वैसे ही यह सफाई की क्रिया है। इसमें अपवित्रता की कोई बात नहीं है। मगर पहले के जमाने में सभी को समझाना संभव नहीं रहा होगा। लोगों ने सोचा होगा, मासिक धर्म में इधर-उधर घूमती रहेगी तो एकदम परेशान रहेगी, इसलिये उसे एक जगह बिठा दिया गया। मगर आज तो लड़कियाँ टेनिस खेलती हैं, बैडमिन्टन खेलती हैं, तैराकी करती हैं, क्योंकि अब हमारे पास साधन है।

भगवान के भजन का और मासिक धर्म का आपस में कोई झगड़ा नहीं है। जो उसको मानते हैं वे पुरानी बातों पर चल रहे हैं। एक जमाने में ठीक था कि मासिक धर्म के वक्त अलग हो जाओ, मगर आज सारी व्यवस्था है। ऐसी हालत में लड़की चल सकती है, दौड़ सकती है, खेल सकती है, पढ़ सकती है, सब कुछ कर सकती है। और जहाँ तक पूजा का सम्बन्ध है, जहाँ तक भगवान के भजन का सम्बन्ध है, जहाँ तक मन्दिर में जाने का सम्बन्ध है, जहाँ रामायण, भागवत, गीता, गुरु ग्रन्थ साहब या गुरु जी के चरणों को छूने का सम्बन्ध है, मासिक धर्म का इससे कोई झगड़ा नहीं है क्योंकि भगवान तो परम पवित्र हैं। उनको तुम अपवित्र कर कैसे सकते हो? ऐसा मानना कि एक रजस्वला स्त्री मन्दिर में जाकर भगवान को अपवित्र कर देगी, यह तो तुम भगवान पर आशंका कर रहे हो। भगवान तो परम पवित्र हैं। वे तो तुमको पवित्र करेंगे। तुम भले ही अपवित्र हो, पर भगवान के पास जाओगे तो पवित्र होकर आओगे। भगवान को तुम क्या अपवित्र करोगे? वे इन सब चीजों से परे हैं।

– 19 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 15

जीवन पूर्वनिर्धारित है। जीवन ही क्यों, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म, ये सभी पूर्वनिर्धारित हैं। हम जो भी पुरुषार्थ करते हैं वह अपने सन्तोष और सान्त्वना के लिए ही करते हैं। अगर पुरुषार्थ नहीं करोगे तो समय कैसे कटेगा? मन को किसी काम में लगाये रखना जरूरी है, यह हुई पहली बात। दूसरी बात, अगर तुम यह सोच भी लो कि जीवन का क्रम पूर्वनिर्धारित है तो भी तुम्हारी यह सोच केवल बौद्धिक है, अनुभव पर आधारित नहीं है। अनुभव और ज्ञान, ये दो अलग-अलग चीजें हैं। ज्ञान मानसिक उपलब्धि है। किताबों में लिखा है, संत-महात्मा कहते हैं कि जीवन पहले से निर्धारित है, और हम इस पर विश्वास कर लेते हैं, लेकिन यह विश्वास एक ज्ञान का, एक जानकारी का परिणाम है, अनुभव का परिणाम नहीं। अगर तुम थोड़ा समय निकाल कर अपने अतीत का व्यवस्थित ढंग से ख्याल कर सको तो कहीं पर तुम्हें मालूम पड़ेगा कि तुम्हारी आज की स्थिति तुम्हारे प्रयासों का परिणाम नहीं, बल्कि एक पूर्वनिर्धारित उपलब्धि है। ऐसा अनुभव जीवन में कभी-कभी अचानक आ जाता है, बिजली की चमक की तरह जब तुम्हें पता चल जाता है कि तुम जो कुछ हो या जो कुछ तुम्हारे साथ घटित हुआ है वह तुम्हारे पुरुषार्थ के कारण नहीं था। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि हाँ, वह पूर्वनिर्धारित था।

मनुष्य की समस्या अपने मन को कहीं लगाये रखना है। वह हमेशा असुरक्षित महसूस करता है, इसलिए कुछ-न-कुछ करता है। भले ही वह जानता है कि जो हो रहा है वह ईश्वरेच्छा से है या कर्मों का फल है, फिर भी वह असुरक्षित और भयभीत रहता है। देखा जाए तो मनुष्य का यह अहंकार,

उसकी असुरक्षा की भावना भी पूर्वनिर्धारित है, और इसीलिए वह पुरुषार्थ करता है। इस तरह पुरुषार्थ भी पूर्वनिर्धारित है।

तब तो समझदारी इसी में है कि सब कुछ साक्षी भाव से देखते जाओ।

ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि कोई बिना कुछ किये रह नहीं सकता, यह भी पहले से निर्धारित है। और जो पूर्वनिर्धारित है उसे तो होना ही है। एक बच्चा भी यह जानता है कि उसकी माँ उसके लिए भोजन तैयार कर रही है, फिर भी वह रोता-मचलता है। हर दिन वह रोता है और हर दिन माँ उसे खिलाती है। यह स्वभाव सभी प्राणियों जीवों में पूर्वनिर्धारित है। केवल मनुष्य में ही नहीं, कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस, यहाँ तक कि कीट-पतंगों को देखो, वे कैसे चलते हैं, उनकी सभी गतिविधियाँ पूर्वनिर्धारित हैं। आखिर यह पूर्वनिर्धारण है क्या? क्या यह दार्शनिक शब्द है या धार्मिक? विज्ञान की भाषा में इसे मूल प्रवृत्ति या इंस्टिंक्ट कहा जाता है जो प्रकृति का आधारभूत नियम है। गाय, घोड़े या कुत्ते में सोचने की क्षमता नहीं होती, फिर भी वे कितने आश्चर्यजनक चीजें कर बैठते हैं। ऐसा कैसे होता है? इसलिए कि मूल प्रवृत्ति सभी जीवों में है।

ज्ञान के तीन स्तर होते हैं – मूल प्रवृत्ति या सहज ज्ञान, बौद्धिक ज्ञान और अन्तर्ज्ञान। अंग्रेजी में इन्हें इंस्टिंक्ट, इंटेलेक्ट और इंट्यूशन कहते हैं। संत-महात्मा अन्तर्ज्ञान के स्तर पर काम करते हैं। सामान्य लोग बौद्धिक स्तर पर कार्य करते हैं, लेकिन मूल प्रवृत्ति भी बहुत प्रबल होती है। आहार, भय, निद्रा और मैथुन – ये मूल प्रवृत्ति के चार मुख्य पहलू हैं। मूल प्रवृत्ति का मतलब जीव का मौलिक स्वभाव, इसलिए पुरुषार्थ करना भी एक मूल प्रवृत्ति है। पुरुषार्थ चलते रहता है, संत, महात्मा, पैगम्बर, अवतार, सभी पुरुषार्थ करते हैं। जब वे भौतिक शरीर धारण करते हैं तो वे प्रकृति के, मूल प्रवृत्ति के दायरे में आ जाते हैं।

सांख्य दर्शन में दो शाश्वत सिद्धान्तों की चर्चा आती है, एक को पुरुष और दूसरे को प्रकृति कहा जाता है। जब पुरुष और प्रकृति संयुक्त होते हैं तो प्रकृति के सभी गुण पुरुष में हस्तान्तरित हो जाते हैं। नहीं तो पुरुष में कोई गुण नहीं होते, वह निर्गुण है। प्रकृति में ही ये सब गुण होते हैं। प्रकृति का उद्भव होता है, विकास होता है और उसमें परिवर्तन होता है। वह सात्त्विक से राजसिक और राजसिक से तामसिक बनती है। प्रकृति सदैव सक्रिय रहती है। वह दूषित होती है, फिर शुद्ध होती है। कर्म प्रकृति का अंग है, उसी प्रकार त्याग, प्रेम,

घृणा, ये सभी प्राकृतिक हैं। पुरुष अपरिवर्तनशील है, लेकिन वही पुरुष जब प्रकृति से संबद्ध होता है तो प्रकृति के सभी गुण, सभी कर्म, सभी धर्म पुरुष में समाहित हो जाते हैं और यही कारण है कि जो भी संत, पैगम्बर या अवतार धरती पर अवतरित होते हैं वे हमारे-तुम्हारे जैसा आचरण करते हैं। अब वे प्रकृति के दायरे में आ चुके होते हैं और प्रकृति के सभी गुण उनमें प्रतिबिम्बित होते हैं। ईसा मसीह लोगों के दुःख देखकर दुःखी हो जाते थे। उन्हें दुःखी होने की क्या जरूरत थी? कोई दुःखी है तो है, कोई मरता है तो मरे, तुम्हें क्या? लेकिन एक बार तुम प्रकृति के क्षेत्र में आ गये हो तो भावनाओं से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकते।

इसलिए तो कहता हूँ कि सब कुछ पूर्वनियोजित है। लेकिन यह जानते हुए भी मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है। मैं अपने बारे में जानता हूँ, सब कुछ पूर्वनिर्धारित है। इसे मैंने काफी पहले जान लिया था, फिर भी सक्रिय रहा और अभी भी सक्रिया हूँ। मैं जानता हूँ कि साधना या अनुष्ठान करने से या शुद्ध जीवन जीने से कुछ नहीं होना है, पर यह जानते हुए भी वैसा कर रहा हूँ। आध्यात्मिक जीवन के लिए, दिव्यता का अनुभव पाने के लिए केवल भगवान की कृपा काम आती है, और कुछ नहीं। यह सब साधना मुझे करनी है, क्योंकि यह पुरुषार्थ का अंग है और यह पुरुषार्थ पूर्वनियोजित है। ये सब चीजें समाज के सन्दर्भ में हैं। साधु-संतों का समाज के प्रति दायित्व होता है। जब समाज में छल-कपट, झूठ-फरेब, भय-आतंक का बोलबाला हो तब संत-महात्मा सामाजिक व्यवहार को अध्यात्म से जोड़ते हैं, अन्यथा यह आवश्यक नहीं। एक दुराचारी को भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है और एक सदाचारी को नहीं। सभी जगह यह कहा गया है कि भगवान तुम्हारे नैतिक या सामाजिक आचरण को नहीं देखते बल्कि तुम्हारे हृदय और भावनाओं को देखते हैं। सदाचार और सद्व्यवहार की आवश्यकता समाज को है, नहीं तो सभी लोग उद्दण्ड और आंतकवादी प्रवृत्ति के हो जायेंगे।

हमलोग अभी एक सीमित दायरे में बात कर रहे हैं। वास्तव में हमें केवल इस पृथ्वी या सौरमंडल की ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और सृष्टि के संदर्भ में चर्चा करनी चाहिए। सारी सृष्टि ही पूर्वनियोजित है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग – सभी युग पूर्वनिर्धारित हैं। हम तो अभी स्वामी आत्मानन्द या स्वामी सत्यानन्द या फलाने आदमी की ही बात कर रहे हैं,

पर जरा सोचिये, जब रोम में आग लगी हो तो मेरा घर स्वाहा होने से बचेगा क्या? जब समस्त ब्रह्माण्ड की नियति निर्धारित है तो हमलोग उसके अपवाद कैसे हो सकते हैं? देखा जाए तो हमलोगों की हैसियत, हमारा अस्तित्व ही क्या है? हमारे अस्तित्व का आधार यही विचार है कि हम हैं। इस व्यापक ब्रह्माण्ड की जरा कल्पना करो जिसमें हमारे जैसे सैकड़ों सौर मंडल हैं। फिर अपने सौर मंडल को देखो जिसमें पृथ्वी एक छोटा-सा ग्रह है, उस पृथ्वी में भारत या ग्रीस जैसा एक देश है जिसमें देवघर या एथेंस जैसा एक नगर है। उसमें रिखिया का एक गाँव है और उसमें एक छोटे-से घर में एक छोटा-सा इंसान है। अब बताओ ऐसे लघु मानव का इस ब्रह्माण्ड में क्या स्थान है? तुम तो एक अणु जितने भी नहीं हो!

इस तरह सोचोगे तो ईश्वर का विराट् स्वरूप समझ में आयेगा, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को दिखाया था। मैं उस विराट् ब्रह्माण्ड की बातें कर रहा हूँ जिसका न तो आदि है और न ही अन्त। हमें तो पता ही नहीं कि इसमें पृथ्वी जैसे कितने ग्रह हैं, कितने तरह के जीव हैं इसमें! इस अनादि, अनन्त ब्रह्माण्ड का रहस्य अद्भुत है, फिर हम कैसे बता सकते हैं कि हमारा अस्तित्व कहाँ है, और फिर यह पूर्वनियोजन की बात भी कितनी मजेदार लगती है?



मैं मोक्ष की बात नहीं जानता। मैंने ग्रन्थों में पढ़ा है, इस पर विचार भी किया है, लेकिन जहाँ तक मेरा सवाल है मुझे यह नहीं चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि मैं बार-बार जन्म लूँ। आखिर बंधन और मुक्ति में अन्तर है ही क्या? यह तो मात्र मन की एक अवधारणा है। मंदिर में बैठा व्यक्ति उतना ही खुश है जितना मदिरालय में बैठा आदमी। ये छोटी-छोटी बातें सत्तर-अस्सी साल की जिन्दगी में ज्यादा मायने नहीं रखतीं। असली बात है ईश्वर का अनुभव जो अचानक होता है। जैसे तुम हमें देख रहे हो, वैसे ही तुम राम, कृष्ण या शिव का दर्शन कर सकते हो। लेकिन यह पूर्वनिर्धारित नहीं है, यह तभी संभव है जब उसकी इच्छा होगी। ईश्वर पूर्वनिर्धारण का विषय नहीं है। हाँ, सबके पास यह संभावना है, ईश्वर-कृपा सबके लिए संभव है।

मैं संन्यास के लिए पूछने आया हूँ?

संन्यास दो ही दिन लिया जाता है, शिवरात्रि और गुरु पूर्णिमा को, अगर ठीक ढंग से लेना चाहो तो। अगर केवल गेरू कपड़ा पहनना है, सर मुड़ाना है तो आज भी हो सकता है, इसमें क्या रखा है। शिवरात्रि के दिन और गुरु पुर्णिमा के दिन शिव और गुरु का सान्निध्य रहता है। संन्यास परम्परा के अनुसार तो मुख्यतः शिवरात्रि ही संन्यास दिवस है। गुरु पूर्णिमा, गुरु पूजा और अन्य दीक्षाओं का दिन है, उत्सव का दिन है, जबकि शिवरात्रि पर्व है। गुरु पूर्णिमा को तो हलवा-पूरी खाना पड़ता है, शिवरात्रि के दिन संन्यास लेने वालों को उपवास करना पड़ता है।

इसी प्रकार हर सम्प्रदाय में अलग-अलग दिन होते हैं, तंत्र साधना में दीक्षा का दिन अलग होता है, वैष्णव सम्प्रदाय में अलग होता है। संन्यास शैव सम्प्रदाय की दीक्षा है, वैरागी वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा है। शैव, वैष्णव और शाक्त, ये भारत के तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं। बाकी दो सम्प्रदाय, सौर और गाणपत्य तो खत्म ही हो गये हैं। शैव सम्प्रदाय में संन्यास का दिन मुख्यतः शिवरात्रि को माना जाता है, गुरु पूर्णिमा को एक तरह से सेकेण्डरी दिन मानते हैं।

क्या मैं संन्यास लेने की स्थिति में हूँ?

यह निर्णय केवल चेला को लेना पड़ता है। अगर खाना तुमको खाना है तो निर्णय तुम करोगे या रसोईया? देखो, संन्यास में यह सब नहीं सोचा जाता

है। संन्यास एक आत्मघाती मनोवृत्ति है। संन्यास लूँ या नहीं, फायदा होगा या नुकसान, उससे ज्ञान मिलेगा या नहीं, मेरी उम्र संन्यास की है या नहीं, कहीं रास्ते में गिर तो नहीं जाऊँगा, पतित तो नहीं हो जाऊँगा, लोग क्या कहेंगे, बीमार हो गया तो पैसे का क्या होगा? संन्यास लेने से पहले यह सब नहीं सोचा जाता। जिस वक्त आदमी आत्महत्या का चिन्तन करता है वह इतनी बातें थोड़े ही सोचता है। जो एक बार सोच लिया वह अन्तिम घड़ी तक रहना चाहिए। संन्यास मार्ग में या तो आगे बढ़ते चलो या इसमें मत ही आओ। हमारे यहाँ संन्यास का मुख्य उद्देश्य लोगों का उपकार करना, लोगों की भलाई और मदद करना है।

दक्षिण भारत

भारत से कोई भी विचारधारा दक्षिण जाये तो वे लोग उसको प्रोत्साहन देते हैं। पाँडेचेरी में श्री अरविन्द को बहुत प्रोत्साहन मिला। चीन के आक्रमण के बाद जब तिब्बत के लोग कर्णाटक गये तो उनको बहुत सहारा और प्रोत्साहन मिला। कर्णाटक में तिब्बतियों की बहुत बड़ी बस्ती है, बड़े-बड़े मठ हैं। वहाँ वे हजारों-लाखों की संख्या में रहते हैं। पूर्वकाल में भी जब जैन मत का प्रचार हुआ तो कर्णाटक में जैन धर्म का बहुत स्वागत हुआ वहाँ पर महावीर की मूर्ति है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जब राज सिंहासन छोड़ा तो वह कर्णाटक के एक जैन मठ में चले गया था। उसकी मृत्यु जैन आश्रम में ही हुई थी।

ईसाई मत के प्रवर्तकों का भी दक्षिण भारत में पूरा स्वागत हुआ। उनका विरोध नहीं होता है, वहाँ इस्लाम का भी विरोध नहीं होता है। मलाबार में समझो कि ईसाई और मुसलमान भरे पड़े हैं। वहाँ पर कोई विरोध नहीं होता। वहाँ ईसाइयों के अच्छे-अच्छे मठ हैं। दक्षिण के लोग दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के प्रति स्वागत का भाव रखते हैं तो उसका असर पड़ता है। वहाँ के ईसाई मठ वैदिक ढंग से पूजा करते हैं – पंच पात्र, अगरबत्ती रखते हैं, मंत्र पाठ करते हैं, जमीन पर बैठकर पूजा करते हैं, गेरू कपड़ा पहनते हैं।

यह सब आपको उत्तर भारत में नहीं मिलेगा। यहाँ हिन्दू भी कट्टर, मुसलमान भी कट्टर, और ईसाई भी कट्टर हैं। अगर आप हमारे घर पर आते हैं और मैं आपका स्वागत करता हूँ तो आप मेरी बहुत-सी प्रथाओं को स्वीकार कर लेंगे, यह मानव मनोविज्ञान की विशेषता है। यही दक्षिण में हुआ है। यहाँ

अगर कोई शान्ति आश्रम है तो बस नाम ही अच्छा है, सच्ची शान्ति नहीं है, और वहाँ ईसाइयों और हम लोगों की परम्पराओं में कोई खास फर्क मालूम नहीं पड़ता है। इक्ष्वाकु वंश के लोगों पर जब विपत्ति आई तो वे लोग आन्ध्र देश में गये। बौद्ध लोगों पर जब विपत्ति आई तो वे लोग भी आन्ध्र देश में गये, ओड़िसा में गये। आन्ध्र देश में बौद्धों के प्रचुर अवशेष मिलते हैं। उत्तर भारत में इसका अभाव पाते हैं और साथ ही कुछ संकीर्णता पाते हैं। दक्षिण भारत से लाखों की संख्या में लोग गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ, प्रयाग, वाराणसी आदि तीर्थ करने को आते हैं, मगर उत्तर भारत से बहुत कम लोग दक्षिण जाते हैं तीर्थ करने के लिये। दक्षिण भारत में जब किसी को संन्यास लेना होता है तो हरिद्वार, ऋषिकेश या वाराणसी ही पहुँचता है।

अब पिछले बीस-तीस सालों से परिवर्तन हो रहा है और वह भी आर्थिक क्रान्ति के कारण। अब उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत की तरफ खिसक रहे हैं, क्योंकि दक्षिण भारत में बहुत जोरों से उन्नति हो रही है। खैर हम तो अभी जाते नहीं वहाँ पर, पर सम्पर्क रखते हैं। शिक्षा, उद्योग, व्यापार और अब तो राजनीति के क्षेत्र में भी बड़ी तेजी से उन्नति हो रही है वहाँ। वे लोग सब को प्रोत्साहन देते हैं, विदेशियों को सम्मान से देखते हैं, इसलिए विदेशी भी दक्षिण भारत में भरे पड़े हैं, अपना-अपना घर बनाकर बैठे हैं।

उसका कारण क्या है?

दक्षिण भारत धर्म प्रधान, ज्ञान प्रधान और भक्ति प्रधान क्षेत्र है। यहाँ के नाटकों में खाली शृंगार रस है, रोमेन्स ही रोमेन्स है, लड़की लड़के के लिए रो रही है, लड़का लड़की के लिए रो रहा है, कोयल बोल रही है, तो फूल खिल रहें हैं। सारे पुराणों की कहानियाँ उन्होंने भारतनाट्यम और कुचीपुड़ी जैसे नृत्यों में निकाल दी हैं। दक्षिण भारत की संगीत और नृत्य शैली पूर्णतया धार्मिक है, वह मनुष्य की इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए नहीं, मनुष्य के ज्ञान को सम्पन्न बनाने के लिए है। दक्षिण भारत की नृत्य शैली तो मानो व्याकरण की तरह है।

वहाँ ऑफिस में अभी भी जाओ तो वहाँ के लोग सब टीका-चन्दन लगाकर काम करते हैं। उत्तर भारत में लोगों को कुण्ठा हो जाती है, लेकिन दक्षिण भारत में धर्म के मामले में कुण्ठा नहीं है। प्रायः हर बच्चा नियम से गीता पढ़ता है, रामरक्षा स्तोत्रम् का पाठ करता है और ब्राह्मण हुआ तो संध्या वन्दन

सबेरे-शाम करता है। दक्षिण भारत के बच्चों में, विशेषकर लड़कियों में संस्कार हैं। लड़कियों को केवल खाना बनाना ही नहीं, सब धार्मिक क्रियाएँ और विद्याएँ सिखाते हैं। नृत्य तो वहाँ हर लड़की जानती है, वह तो अनिवार्य है।

दक्षिण में एक संत हुए, उनका नाम था त्यागराज। संत होने के साथ-साथ वे कवि और संगीतज्ञ भी थे। आज भी जब उन का जन्मदिन मनाया जाता है तो दस-बीस हजार औरतें, लड़कियाँ और लड़के बैठ कर शास्त्रीय संगीत गाते हैं। दक्षिण के लोगों ने अपने को उन परम्पराओं से मुक्त रखा जो यहाँ मध्य युग में आयी थीं। उन्होंने किसी भी धर्म का विरोध करना उचित नहीं समझा, मगर अपने धर्म के साथ-साथ अपनी संस्कृति को बनाये रखा। रीति-रिवाज उन्होंने अपने ही रखे आज तक। हम तो दक्षिण भारत के नहीं हैं, मगर दक्षिण भारत की संस्कृति से हमारा बहुत ही अनन्य सम्बन्ध रहा। उनकी भाषा हम अच्छी तरह से जानते हैं, उनके शास्त्रों से हमारा अच्छा परिचय भी है और मूलतः हम भोजन दक्षिण भारत की ही तरह करते हैं। हमें दक्षिण भारत की संस्कृति और सभ्यता इसलिए प्रिय है कि व्यक्ति पढ़ा-लिखा है, लेकिन उसने अपने धर्म की प्रतिष्ठा का त्याग नहीं किया, चाहे वह न्यायाधीश या कितना बड़ा अधिकारी क्यों न हो। तुम किसी प्रान्त के बड़े अधिकारी हो गये तो तुमने छुपाना शुरू कर दिया कि तुम वैदिक धर्म मानने वाले हो या तुम ब्राह्मण कुल के हो, यह गलत है।

धर्म तुम्हारी पहचान है। किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके धर्म से होती है और इसलिए धर्म को अपने सामाजिक परिवेश के कारण बदलना या छिपाना नहीं। हम जब दक्षिण भारत जाते थे, विश्वविद्यालयों में भी जाते थे तो उन लोगों का टीका-चन्दन लगा रहता था, नीचे धोती पहनकर ऊपर टाई बाँध ली, कोट पहन लिया। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ कितनी भी बड़ी अधिकारी क्यों न हों, अपनी संस्कृति और धर्म का पालन करती हैं। मुंगेर में एक समय जो जिलाधीश थी वह हमारे गुरु, स्वामी शिवानंद जी के भाई की पोती थी। उसे कई शास्त्र कण्ठस्थ थे। मुंगेर में जब भी गुरु पूर्णिमा होती थी, सौन्दर्य लहरी का पाठ होता था तो वह बराबर भाग लेती थी। अब मजिस्ट्रेट है तो क्या हुआ? आखिर ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है, उसे छुपाने की क्या जरूरत है? हम यह थोड़े ही कहते हैं कि दूसरे धर्म से घृणा करो, पर अपना धर्म अपना होता है, उसे तो तुमको रखना है। आखिर धर्म हमारी प्रतिष्ठा है, पहचान है।

जैसे बिना लोटे के पानी नहीं टिकता है, वैसे ही बिना धर्म के व्यक्ति नहीं टिक पाता। मनुष्य को अपनी धार्मिक परम्पराओं, उत्सवों और संस्कारों के प्रति उदासीन नहीं रहना चाहिए क्योंकि दुनिया में राजनीति पर और समाज पर सर्वाधिक प्रभाव उसी का है। दक्षिण भारत ने हमारी संस्कृति को विदेशों में भी बहुत अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है।

दक्षिण भारत में हमारी संस्कृति को अच्छी तरह रखा गया, लेकिन उत्तर भारत में नहीं, क्या इसका कारण वहाँ के महाराज हैं या परिस्थितियाँ?

वहाँ के महाराजाओं और शासकों ने दक्षिण भारत में हमारी संस्कृति को अच्छी तरह रखा। चोल और पांडिया जैसे राजवंशों ने कितने विशाल मन्दिर बनाए! दक्षिण भारत के मन्दिर तो पूरे शहर हैं, सहस्र स्तम्भों वाले मन्दिर हैं। वहाँ यहूदी लोग आए अठारह सौ साल पहले। ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाये जाने के बाद संत थामस मालाबार तट पर आये। इतिहासकार मानते हैं कि दुनिया का सबसे पुराना चर्च मलाबार में है, न कि वैटिकन में। कोचीन में जो चर्च है वह सबसे पुराना चर्च है। पुर्तगाली लोग वहाँ आए थे। मुस्लिम औलिया और संत कोचीन वैगरह में आये। इस्लाम का प्रचार तो बारह-तेरह सौ साल पुराना है।

अन्य धर्म वालों के साथ नफरत से नहीं, बल्कि स्वागत की भाषा के साथ विचार-विमर्श होना चाहिए क्योंकि अन्ततः धर्मों में कोई अंतर नहीं है। इस्लाम और वैदिक धर्म में हमें कोई फर्क नहीं दिखता। तुम भी पैर धोकर अन्दर जाते हो, वे भी पैर धोकर अन्दर जाते हैं। तुम भी जमीन पर बैठकर पूजा करते हो, वे भी जमीन में बैठकर पूजा करते हैं। तुम भी जमीन पर बैठकर खाना खाते हो, वे भी जमीन में बैठकर खाना खाते हैं। कुछ फर्क होगा, मगर तुम फर्क के कारण उनसे लड़ो और वे फर्क के कारण तुम से लड़ें, नफरत करें, यह दक्षिण के लोगों का स्वभाव नहीं है। हैदराबाद में हर आदमी हिन्दी जानता है। इसलिए दूसरे धर्म वालों के साथ स्वागत का व्यवहार करना, उनके सुख-दुःख में साथ देना, उनकी थोड़ी बहुत कमजोरियों को नजरअन्दाज कर देना, तब वे भी तुम्हारी कमजोरियों को नजरअन्दाज करेंगे। यह स्वाभाविक है। आपको तकलीफ होती है तो मैं आपके साथ हूँ, मेरे को तकलीफ होती है तो आप मेरे साथ हैं।

उत्तर भारत में सामाजिक सामंजस्य ठीक से नहीं हो पाया, लेकिन दक्षिण भारत में यह गलती नहीं हुई। क्यों नहीं हुई? सबसे पुराना चर्च वहाँ बना। वहाँ मस्जिदें बनीं, औलिया-पीर-फकीर वहाँ गये। साईं बाबा का स्थान देखो, वहीं मस्जिद है, वहीं मन्दिर भी है। जब तुम शुरू से ही एक साथ रहना सीखोगे तो झगड़ा होगा क्यों? शुरू से ही एक साथ रहने के लिये थोड़े-से अंतर को नजरअंदाज करना पड़ता है। वह तो घर में भी करना पड़ता है, मियाँ-बीवी एक-दूसरे की कमजोरियों को नजरअन्दाज न करें तो घर में महाभारत हो जाती है क्योंकि गलतियाँ तो सबमें हैं। कोई आदमी दूध का धुला हुआ तो है नहीं। किसी भी धर्म में पूर्णता नहीं है। उनका धर्म कट्टर है तो हमारा धर्म भी ऊँच-नीच को मानने वाला है। एक-दूसरे की गलतियाँ निकालने से गुण्डे लोग इस बात का फायदा उठाते हैं।

जो लोग बुद्धिजीवी और पढ़े-लिखे होते हैं, उनका अन्धविश्वासी होना उन्हें बहुत राहत देता है। मनुष्य के व्यक्तिगत और आन्तरिक जीवन में जो भय, आशंका और अनिश्चितता होती है उसका उपाय अन्धविश्वास के पास है। अन्धविश्वास मनुष्य की संकल्प-शक्ति को जगाने के लिए सबसे शक्तिशाली उपाय है। बुद्धि से संकल्प-शक्ति नहीं जगती। क्यों? मनुष्य की दो स्त्रियाँ हैं, एक स्त्री का नाम है भावना या श्रद्धा, और दूसरी स्त्री का नाम है बुद्धि। मगर दूसरी स्त्री रखैल है। जीव की विवाहिता स्त्री का नाम विश्वास या श्रद्धा है और श्रद्धा को तुम परिभाषित नहीं कर सकोगे। वैष्णव, शैव या शाक्त परम्परा में सबसे पहला शब्द आता है 'श्रद्धा और विश्वास।' अगर श्रद्धा और विश्वास न हो तो तुम्हारी बात तो बहुत दूर है, हम अपनी या अन्य संत-महात्माओं की बात कहते हैं, जो सिद्ध महापुरुष हैं उनको भी भगवान का दर्शन नहीं होता।

भगवान के दर्शन का एक ही रास्ता है – श्रद्धा और विश्वास। पढ़ने-लिखने से कुछ नहीं होता। उपनिषद् या पुराण पढ़ना – ये सब ज्ञान की चीजें हैं। कोई व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो या गँवार हो, शराबी हो या जुआरी हो, जिसमें श्रद्धा-विश्वास है उसको भगवान का, देवता का दर्शन होता है, क्योंकि श्रद्धा जीव की विवाहिता है और बुद्धि उसकी रखैल है। बुद्धि हमेशा परेशानी खड़ी करती है। संसार को चलाने के लिए बुद्धि ठीक है, मगर अपने जीवन की अनिश्चितता, भय, आशंका, घबराहट, चिंता, परेशानी, संदेह आदि को दूर

करने के लिए केवल एक ही उपाय है। उसको चाहे विश्वास कहो, श्रद्धा कहो या अन्धविश्वास कहो।

जिस विश्वास को तुम परिभाषित नहीं कर सकते, वह अन्धविश्वास है। अन्धविश्वास का होना जरूरी है क्योंकि जिस तरह से हम जी रहे हैं वह सब अन्धविश्वास ही है। जीवन की सब गतिविधियों को देखो, सब मान्यताएँ ही तो हैं। जीवन की जितनी भी चीजें तुम मानकर चल रहे हो, क्या उनका कोई प्रमाण है कि यह सच है? अगर तुम सब चीजों में बुद्धि को लाना चाहो तो प्रमाणित करो कि यह तुम्हारा बाप है, वह तुम्हारी माँ है, तुम ब्राह्मण हो। कितने प्रमाण दोगे जी? जीवन मान्यताओं पर चलता है। जीवन को इतना जटिल नहीं बनाना चाहिए। जीवन एकदम सरल है। चाहे भगवान पर विश्वास करो या अपनी साधना पर विश्वास करो या अपने पर विश्वास करो – ये तीनों एक ही बात हैं।

अन्धविश्वास विदेशों में भी बहुत माना जाता है। वहाँ किसी भी होटल में 13 नम्बर का कमरा नहीं होता, चाहे जेनीवा जाओ या लंदन। वहाँ 13 की संख्या को अशुभ मानते हैं। जहाँ तक अन्धविश्वास की बात है वे लोग जब घोड़े पर चढ़ते हैं तो एक गुड़िया को सामने रखकर प्रार्थना करते हैं या घोड़े की नाल पास में रखते हैं। अंधविश्वास पढ़े-लिखे लोगों या वैज्ञानिकों में नहीं होता, यह सब गलत बात है। विश्वास प्रत्येक व्यक्ति में है, न्यूटन में था, आइनस्टाइन में था, एडिन्गटन में था, मैक्स प्लैंक में था। अन्धविश्वास मनुष्य के अन्दर की अपनी चीज है और इसका होना खराब नहीं है। जिस अन्धविश्वास से तुम्हारा बेटा बच जाए, पति-पत्नी का तलाक टल जाए, तुम्हें पैसा मिल जाए या मुकदमा जीत जाओ तो यह अन्धविश्वास खराब है क्या?

स्पेन में बारसीलोना से साठ मील की दूरी पर एक पहाड़ है जिसका नाम है मॉन्सरा। आज से बहुत पहले जब स्पेन में मुसलमानों का आक्रमण हो रहा था और वे सब मूर्तियों को तोड़ते जाते थे, तो उस वक्त ईसाई भी मूर्ति पूजते थे। उस समय की एक लकड़ी की मूर्ति थी जिसे एक ईसाई साधु ने अपनी गुफा में छुपा लिया। वहाँ वह धूनि जलाता था जिससे उस मूर्ति पर काजल जमा हो गया, वह काली हो गयी। जब ईसाइयों ने फिर से साम्राज्य जीता तो उस मूर्ति को निकालकर उस पर्वत की चोटी पर स्थापित किया गया। उस मूर्ति का नाम है ब्लैक मैडोना। अगर उसको संस्कृत में अनुवाद

करो तो 'काली माँ।' वह स्त्री की ही मूर्ति है, छोटी-सी है, एकदम काली और उसे देखने वहाँ पहाड़ पर लाखों लोग जाते हैं। दिन में 12 बजे घंटी बजती है और मास पढ़ा जाता है, केवल उस दस मिनट के मास के लिए वहाँ लाखों लोग जाते हैं।

ऐसा नहीं सोचना कि जो आधुनिक देश हैं, जहाँ विज्ञान प्रगति पर है, वहाँ सब लोग बुद्धिजीवी हैं, सांसारिक हैं, भगवान को नहीं मानते हैं। मनुष्य कैसा भी क्यों न हो, शराब पीता हो, वेश्या-गमन करता हो, जुआ खेलता हो, हत्या करता हो, मगर उसमें एक आत्मा है, और उस आत्मा को हम साधु लोग झकझोरते हैं। इसलिए मैं यह नहीं मानता की विदेशियों में श्रद्धा नहीं होती। आज योग का उद्धार कहाँ से हो रहा है? पश्चिम से। आज गेरू वस्त्र पहनने वाली संख्या सबसे ज्यादा कहाँ है? पश्चिम में।

पश्चिम से 16-18 साल की लड़कियाँ सर मुड़ाकर झोला लेकर आती हैं, जमीन में सोती हैं और तुम्हारे लड़के यहाँ से सूटकेस लेकर सूट-कोट पहन कर जाते हैं और वहाँ टी.वी. खरीदते हैं। फिर कैसे कह सकते हैं कि एक वैज्ञानिक, एक सम्पन्न आदमी नास्तिक हो सकता है? हमने तो नहीं देखा। अच्छा कपड़ा पहनने वाले, इतर लगाने वाले के दिल में अगर भगवान नहीं है तो फटा कपड़ा पहने वाले के दिल में भगवान होता है क्या? भगवान की भक्ति दिल की चीज होती है, इसका बाहर के परिवेश से कोई मतलब नहीं होता। श्रद्धा का बाहरी चीजों से क्या मतलब है? चाहे इश्क हकीकी हो या इश्क मजाजी हो, चाहे साधारण प्रेम हो या आध्यात्मिक प्रेम हो, दोनों तो प्रेम ही है। वह भी इश्क है, यह भी इश्क है। इसका उस आदमी की जाति से, उसके कपड़े से, उसके रहने के ढंग से, पढ़ाई-लिखाई से कोई मतलब नहीं होता। मनुष्य मूलतः प्रेम और आत्म-संतोष चाहता है। जब उसको इसका पता नहीं चलता तो दुनिया के बाजार में जाकर प्रेम खरीदता है, और जब उसको मालूम पड़ता है कि रिखिया में प्रेम मिलता है, तो सब यहाँ चले आते हैं!

– 20 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 16

जीवन में सही फैसले कैसे लेने चाहिए?

संसार में बहुत कम ही लोग ऐसे हैं जो यह फैसला कर पाते हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। अधिकांश लोगों को निर्णय लेने में समस्या होती ही है। इसका मतलब यह कि तुम्हारे साथ जो हो रहा है वह दूसरों के साथ भी हो रहा है और यह स्वाभाविक है। कई बार तुम सही फैसला लेकर सफल हो जाते हो और कई बार गलत फैसला लेने के कारण असफल हो जाते हो। यह समस्या सब को होती है, चाहे वह व्यापारी हो या जुआरी, राजनेता, लेखक, चोर या संन्यासी। क्या करना चाहिए, क्या नहीं, और जो करना चाहिए उसे क्यों नहीं कर पा रहा हूँ – यह समस्या सबके साथ है और इसका कोई सीधा समाधान नहीं।

कॉलेज का विद्यार्थी यह निर्णय नहीं ले पाता कि उसे विज्ञान, कला या वाणिज्य, कौन-सा विषय लेना है। एक लड़की जो शादी करना चाहती है यह फैसला नहीं ले पाती कि शादी इस लड़के से करे या उस लड़के से। एक ग्रेजुएट जो नौकरी करना चाहता है यह फैसला करने में असमर्थ होता है कि उसे सरकारी नौकरी करनी चाहिए या गैर-सरकारी, उसे अपने देश में नौकरी करनी चाहिए या विदेश में या फिर अपना अलग व्यापार ही शुरू कर देना चाहिए। इस प्रकार बहुत-से परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते हैं। कुछ लोगों के मन में संयोग से सही विचार आ जाते हैं, पर ये बुद्धि से नहीं, अन्तर्प्रज्ञा से उत्पन्न होते हैं।

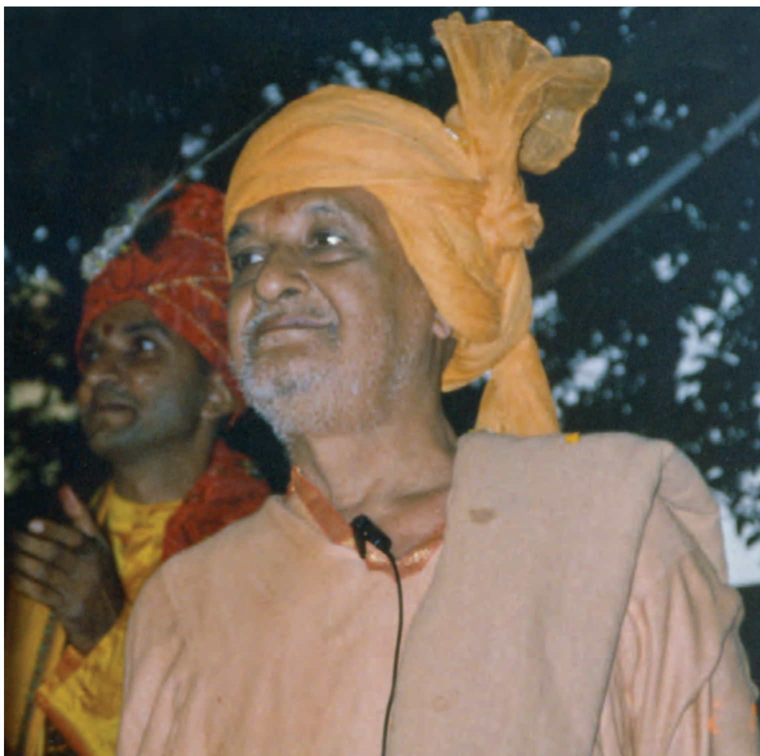
पाश्चात्य देशों में, और अब तो अपने देश में भी काउंसेलिंग की भरमार है। लोग पारिवारिक और वैवाहिक मुद्दों पर, बच्चे, नौकरी या शिक्षा संबंधी

मामलों में काउंसेलर से सलाह लेने जाते हैं। 'क्या हीरे का कारोबार मेरे लिए ठीक रहेगा?' काउंसेलर कहेगा, 'नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा।' आज व्यक्ति खुद कोई फैसला ले ही नहीं पाता, दूसरे पर निर्भर रहता है। दूसरे का निर्णय ठीक भी हो सकता है और गलत भी।

अभी तुम अपनी बात कर रहे हो, मैं अब अपनी बात करता हूँ। मेरे लिए कई रास्ते खुले थे। मैं हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी में लेखक हो सकता था। मैं एक अच्छा वक्ता हो सकता था क्योंकि मेरी गीता, रामायण, वेद, उपनिषद् आदि शास्त्रों पर गहरी पैठ है। मैं अच्छा प्रशासक हूँ, टाईपिंग और शॉर्टहैण्ड जानता हूँ। साथ ही कृषि, गोपालन, भवन-निर्माण, किताबों के लेखन-मुद्रण जैसे कार्यों की क्षमता मुझमें थी। मैं क्या करूँ, यह फैसला खुद तो नहीं कर सकता था, लेकिन नियति ने मुझे एक ऐसे आश्रम में ला खड़ा किया जो बड़ा प्रगतिशील था। वहाँ भारत के अन्य आश्रमों की तरह केवल शास्त्रों का अध्ययन या राम-राम का जप नहीं होता था। अपने गुरु आश्रम में मैंने गायन, शिक्षण, लेखन, व्याख्यान, अनुवाद, बैंकिंग जैसे वे सारे कार्य किए जो मैं करना चाहता था और मुझे इससे पूर्ण संतोष मिला।

अब प्रश्न उठता है कि तुम्हें अपने जीवन में क्या करना है, कैसा निर्णय लेना है? पहली बात, तुम्हारा एक परिवार है न? तुम्हारा पहला धर्म है परिवार की देखभाल करना। चाहे तुम इसे पसन्द करो या न करो, यही तुम्हारा धर्म है। यह तुम्हें करना ही है और इस पर कोई अन्य विचार नहीं हो सकता। दूसरी बात यह कि परिवार को हंसी-खुशी के साथ चलाने के लिए घर के सभी काम-काज कुशलता से करने चाहिए। इसमें रसोई घर से लेकर हर एक चीज की सुव्यवस्था शामिल है। इतने से ही संतोष नहीं करना, परिवार में अध्यात्म का भी थोड़ा स्थान रखना चाहिए। सुबह-शाम या फिर किसी अन्य समय कोई आध्यात्मिक कार्यक्रम अवश्य किया जाये। अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देना भी आवश्यक है। इन सब के साथ तुम्हें यह भी खोजना चाहिए कि तुममें कौन-सी प्रतिभा है। उसे एक शौक या हॉबी के रूप में विकसित करना चाहिए। इसके अलावा अगर तुम किसी कारखाने या कार्यालय में नौकरी करना चाहो तो वह भी की जा सकती है, उससे कुछ पैसे भी मिल जायेंगे।

एक गृहस्थ के रूप में जीवन के चार चरण होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में पढ़ना और अध्ययन करना रहता है, गृहस्थ आश्रम में अपनी इच्छाओं की पूर्ति



और अपने धर्म का निर्वाह करना होता है, वानप्रस्थ आश्रम में सेवा निवृत्ति हो जाती है और संन्यास आश्रम में त्याग होता है। गृहस्थाश्रम के दौरान अपनी मानसिक क्षमताओं का अधिक-से-अधिक विकास करना चाहिए, नहीं तो वृद्धावस्था में समस्या हो जाती है। साठ-पैंसठ की उम्र के बाद अवसाद घेर लेता है, व्यक्ति सनकी होने लगता है। इसलिए गृहस्थाश्रम में तुम जो भी कर्म करते हो – घर-परिवार चलाना, नौकरी करना, पैसा कमाना, पैसा खर्चना, प्रेम करना, घृणा करना, लोगों से मिलना, उनसे बिछुड़ना – यह सब तुम्हारे मन-मस्तिष्क के लिए एक सीख है, प्रशिक्षण है। भले ही तुम कोई जीवनमुक्त या संत न बनना चाहो, केवल एक अच्छा गृहस्थ बनने के लिए भी यह जरूरी है।

तुम आज जो बीज बोओगे वही फसल बुढ़ापे में काटोगे। साठ-पैंसठ की उम्र के बाद बड़ी कठिनाई होती है, अभी शायद तुम्हें इसका अनुभव नहीं है। उस समय तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम्हें मालूम रहता है कि मृत्यु किसी

भी समय दस्तक देने वाली है, उसका भय परेशान करता है। अतीत की यादें सताती हैं, असुरक्षा की भावना बढ़ जाती है, तुम सोचते रहते हो कि अगर मैं बीमार हो गया तो मुझे शौचालय तक कौन ले जाएगा, अगर मुझे लकवा मार गया तो कौन मेरी देखभाल करेगा, अगर पैसे कम पड़ गये तो भोजन कहाँ से आयेगा। ये सारी बातें बुढ़ापे में तीव्र हो जाती हैं। इससे बचने के लिए पचास साल तक की जिन्दगी अच्छे ढंग से जीयो, चाहे तुम धार्मिक हो या अधार्मिक, स्त्री हो या पुरुष।

ईश्वर की चेतना

ईश्वर की चेतना कैसे प्राप्त हो, यह सभी के लिए एक समस्या है। आजकल पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को भी यही समस्या हो रही है। देखो, भगवान के बारे में ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं। जब जेब में पैसा होता है तो उसके बारे में सोचते हो क्या? भगवान अगर मेरी जेब में हैं तो मुझे उनके बारे में सोचने की क्या जरूरत? भगवान मेरे हृदय में हैं, मैं उनकी रचना हूँ, वही मेरी जीवन रूपी गाड़ी को चला रहे हैं। अगर मैं गीता पढ़ता हूँ तो वही मुझे इसकी प्रेरणा दे रहे हैं। अगर मैं किसी लड़की के साथ हूँ या मदिरा पान कर रहा हूँ या पूजा-पाठ कर रहा हूँ तो यह सब भी उनकी प्रेरणा से ही हो रहा है। यह कोई जरूरी नहीं कि तुम भी इसी तरह सोचो, इस विषय में सहज और सरल होना चाहिए।

भगवान से वैसा प्रेम नहीं चलता जैसा किसी लड़के या लड़की के साथ होता है। भगवान वासना का विषय नहीं हैं। अगर तुम उनके बारे में न भी सोचो तो वे नाराज़ नहीं होते, क्योंकि आखिर यह भी तो उनकी ही इच्छा का परिणाम है। आस्तिक और नास्तिक, दोनों ईश्वर की इच्छा के परिणाम हैं। उन्होंने ही महात्मा बुद्ध को पैदा किया जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। सुकरात को भी उन्होंने ही पैदा किया जो कहते थे कि ईश्वर की बजाय अपने को जानो। उन्होंने ही सिकन्दर को प्रेरणा दी जो अपनी सेना के साथ कई दार्शनिकों को भारत लेकर आया। जब वह वापस लौटा तो भारत से एक जैन मुनि को साथ ले गया।

इसीलिए कहता हूँ कि ये सारी चीजें किसी उच्च सत्ता द्वारा नियंत्रित होती हैं। यह उच्च सत्ता केवल तुम्हारे मन-मिजाज को ही निर्देशित नहीं करती, बल्कि तुम्हारे पाचन, रक्त संचालन, इन्द्रियों, सब का संचालन करती है।

आखिर तुम करते क्या हो? कुछ नहीं, जो कुछ होता है वह अपने आप उसी ईश्वर के निर्देश पर प्रकृति द्वारा सम्पादित होता है। श्रीरामचरितमानस में कहा भी गया है – *सबहि नचावत रामु गुसाईं।*

एक गृहस्थ होने के नाते तुम्हें अपने कर्मों के साथ जीना है। कर्म की परिभाषा क्या है? अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर्म है। यह कर्म तुम्हारे हाथ से नहीं, मन में होता है। इच्छा ही कर्म है, कुछ चाहना ही कर्म है। संतुष्टि और असंतुष्टि भी कर्म है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि कर्म मानसिक क्रिया है। आध्यात्मिक जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज यही है कि पुरुष और स्त्री प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर जीवन बितायें। यही उनके जीवन की सार्थकता है। यही धर्म है, यही उनका कर्म है। तुम किसी पुरुष के साथ रहती हो या कोई पुरुष किसी महिला के साथ रहता है तो यह ईश्वरेच्छा की पूर्ति है। व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो तुम और तम्हारा पति प्रकृति और पुरुष के स्वरूप हैं। तुम वाम भाग हो और तुम्हारा पति दक्षिण। तुम इड़ा हो तो वह पिंगला है। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था तो है ही, लेकिन पति-पत्नी का साथ-साथ जीवन-यापन करना दिव्य विधान की पूर्ति भी है। विवाह के बाद ही पुरुष और स्त्री साथ रह सकते हैं, यह विधान समाज ने बनाया है, लेकिन इस सामाजिक ठप्पे के बिना भी अगर कोई पुरुष और महिला साथ रहते हैं तो वे ईश्वरीय विधान की पूर्ति ही करते हैं।

अब अगर स्त्री और पुरुष साथ रहते हैं तो एक-दूसरे के प्रति उनके कुछ दायित्व होते हैं जो स्वाभाविक हैं। ये क्या हैं? श्रद्धा और विश्वास। श्रद्धा और विश्वास हमेशा बरकरार रहना चाहिए, उनका अतिक्रमण कभी नहीं होना चाहिए। हाँ, अन्तर तो रहेंगे ही। दायें और बायें भाग में, अनुकम्पी और परानुकम्पी प्रणाली में अन्तर तो रहता ही है, लेकिन इसके बावजूद समायोजन बना रहना चाहिये।

युवावस्था में मैं अपनी बुद्धि पर भरोसा करता था, लेकिन अब मेरा झुकाव श्रद्धा और भक्ति की ओर है। लेकिन साथ ही मेरे जीवन में कई गंभीर समस्यायें भी हैं। पिछले साल कई कानूनी और स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें रहीं। मुझे भविष्य की चिन्ता सताने लगी, विश्वास डगमगाने लगा। ऐसे में उच्च, दिव्य सत्ता में आस्था बनाये रखने के लिए क्या करूँ?

रोजमर्रा की परेशानियों और समस्यायों को अपनी बुद्धि से सुलझाना चाहिए। भगवान ने तुम्हें मन और बुद्धि आखिर इसीलिए तो दिये हैं, उनका उपयोग करना चाहिए। अगर मैं तुम्हें कलम दूँ तो उससे तुम्हें लिखना है, चाकू दूँ तो उससे सब्जी काटनी है और रायफल मिले तो जरूरत पड़ने पर अपनी सुरक्षा भी करनी है। उसी तरह ईश्वर ने जब मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ दी हैं तो अवसर आने पर उनका उपयोग करने में हर्ज नहीं है। इससे तुम्हारी भावना या श्रद्धा का विरोध नहीं होता। अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों के साथ श्रद्धा और भावनाओं का भी उपयोग करना चाहिए।

साथ ही एक चीज और याद रखो। कठिनाइयाँ और मुसीबतें जीवन रूपी सोपान के पायदान हैं, ये कभी स्थायी नहीं होते। कभी-कभी कठिनाइयाँ काफी देर तक खिंच जाती हैं, क्योंकि हम घबरा जाते हैं, समझ में नहीं आता कि क्या करें और अपनी घबराहट में खतरे की घंटी बजा देते हैं। इससे समस्या सुलझने के बदले उलझ जाती है। ऐसी कोई भी परिस्थिति आये तो सबसे पहले मन को शांत और स्थिर रखना चाहिए, उत्तेजित नहीं होना चाहिए। ऐसा कर पाओगे तो ये समस्यायें ज्यादा देर तक नहीं ठहरेंगी।

यदि भय और असुरक्षा की स्थिति हो तो इसका सामना कैसे करना चाहिए?

ऐसी स्थिति में तुम कुछ नहीं कर सकते क्योंकि कुछ अपवादों के अलावा लगभग सभी मनुष्यों की प्रवृत्ति भय और असुरक्षा की रहती है। मानव जाति का सहज स्वभाव असुरक्षा का है। आहार, भय, निद्रा और मैथुन मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ हैं जो जन्म से मृत्यु तक साथ रहती हैं। लोग जब भयभीत होते हैं तो कुछ तात्कालिक उपाय करते हैं। भारत में लोग दुर्गा, काली या हनुमान जी के मंदिरों में जाते हैं। देखा जाय तो भय कोई यथार्थ चीज नहीं है, बस मन का भाव है, और इसलिए इसके निराकरण के लिए मनोभावनात्मक उपाय करने चाहिए।

भारत में लोग हर रोज सोने के पहले हनुमान चालीसा का पाठ करते हैं ताकि भूत-प्रेत का भय न सताये। भय तो कई प्रकार के होते हैं। किसी को रोग का भय है, तो कहीं धन खोने का भय है। किसी को कलंकित होने का भय है तो किसी को प्रतिस्पर्धा का भय है तो किसी को मृत्यु का भय है। ऐसे

कई प्रकार के भय होते हैं। इनसे बचकर निकलना मुश्किल है, क्योंकि ये तो तुम्हारे चारों तरफ और अन्दर भी व्याप्त हैं। इसलिए उनसे लड़ने का कोई फायदा नहीं है, बस कोई मनोभावनात्मक उपाय खोजकर उस भय की स्थिति से कुछ देर बाहर निकल आना चहिए।

अपने यहाँ क्या होता है? भूत का भय होता है तो हनुमान चालीसा पढ़ लेते हैं, जब बीमारी आती है तो महामृत्युञ्जय मंत्र का जप करते हैं, दुश्मन से रक्षा के लिए दुर्गा पाठ करते हैं। जैसे वासना, ईर्ष्या, क्रोध या मोह मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ हैं उसी प्रकार भय भी है। तुम्हें इसका तोड़ खोजना पड़ेगा। अगर भय प्रत्यक्ष है, उसका कोई बाह्य कारण है, जैसे मुझे तुम से डर लगता है तो मैं तुम्हारा सामना करके उस डर का निदान निकाल सकता हूँ, लेकिन कई बार भय अप्रत्यक्ष और अमूर्त होता है। ऐसा भय पूरी तरह मनोभावनात्मक होता है, जिससे तुम निकल नहीं पाते। बाहरी परिस्थितियों का तो मुकाबला किया जा सकता है, तुम्हारे सामने कोई चोर या डाकू आ जाए तो तुम उससे निबट सकते हो, लेकिन तुम्हारे मन में चोर या डाकू का भय छा जाये तो उस भय को निकालना बहुत मुश्किल हो जाता है। अधिकांश लोग ऐसे ही भयों से आक्रान्त रहते हैं जिनका कोई ठोस कारण नहीं रहता। घरों में बच्चे भूत-प्रेत के भय से डरे रहते हैं, कई लोगों को यही डर लगा रहता है कि कोई अनहोनी न हो जाए।

स्वामीजी, कई बार हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि डरने की कोई बात नहीं है, लेकिन फिर भी जब भय का कारण सामने आ जाता है तो डर लगता ही है। जैसे आपका कुत्ता भोलेनाथ, उसके बारे में अपने आप को समझाता हूँ कि उसने काट भी लिया तो क्या होगा, एक-दो दिन दर्द ही तो रहेगा, लेकिन जब वह सामने आता है तो दिल की धड़कन बढ़ जाती है, डर सताने लगता है। इस तरह के भय के लिए क्या किया जाए?

हाँ, भोलेनाथ से तो सभी भय खाते हैं। कोई इस तरफ आने का साहस नहीं कर पाता। रही बात इस भय के निदान की तो इस बारे में सोचकर अपना वक्त बर्बाद मत करो। ऐसे भय का तो कोई निदान है नहीं। इसे उसी तरह चले जाने दो जैसे वह आता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भय एक रहस्य है



जो मनुष्य स्वभाव में निहित है। यह हर प्राणी की प्रकृति में निहित है, चाहे वह मानव हो या पशु-पक्षी या कीट-पतंग। सब में यह असुरक्षा की भावना रहती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन – ये चार मूल प्रवृत्तियाँ सब में समान रहती हैं।

तुम्हें भय इसलिए होता है क्योंकि तुम्हें ज्ञान नहीं है। अगर तुम्हें देश और काल का ज्ञान होता तो तुम्हें घटनाओं का भी ज्ञान रहता। अगर तुम्हारा देश और काल पर आधिपत्य हो जाए तो सभी क्रियाओं और घटनाओं पर भी हो जाए। जब देश और काल की बात करता हूँ तो तुम्हारे मन के दो-तिहाई अंश की बात करता हूँ। तुम्हारा मन तीन तत्त्वों से निर्मित है – देश, काल और वस्तु। यहाँ काल का मतलब घड़ी के घंटा, मिनट और सेकेण्ड से नहीं है। यहाँ मैं विज्ञान के सन्दर्भ में बात कर रहा हूँ, सामान्य बोलचाल की भाषा इस्तेमाल नहीं कर रहा हूँ। दर्शन की भाषा में, संस्कृत में इसे काल कहते हैं, इसी से काली और महाकाल शब्द निकले हैं।

मनुष्य को न तो काल के बारे में जानकारी है, न देश के बारे में, और न ही पदार्थ और वस्तु की। इसलिए उसे घटनाओं का भी ज्ञान नहीं है। उसे नहीं मालूम कि वह कब बीमार पड़ेगा, कब चोर उसके घर में घुसकर चोरी कर

लेगा। ज्ञान का यह अभाव ही भय का कारण है। मुझे चिन्ता है कि शाम को कुछ खाने को मिलेगा या नहीं, लेकिन अगर मुझे मालूम हो जाए कि शाम को तुम मेरे लिए भोजन लेकर आओगे तो मुझे कोई भय नहीं होगा।

भय का कारण ज्ञान का यही अभाव है। दर्शन शास्त्र में ज्ञान के अभाव को अज्ञान कहते हैं। ज्ञान और अज्ञान शब्द प्रकाश और अन्धकार के भी द्योतक हैं। अब अगर कोई देश और काल पर नियंत्रण पा ले, उसे पूर्णरूपेण समझ ले तब वह अपने जीवन को भी नियंत्रित कर सकता है। लेकिन यह असम्भव है। मैं असम्भव शब्द का प्रयोग इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि हमने इतिहास में देखा है कि राम, कृष्ण, बुद्ध, मूसा, ईसा मसीह और हमारे जीवन काल में महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष भी सब कुछ नियंत्रित नहीं कर सके। उन्हें भी जन्म लेने पर वह सब भोगना पड़ा जो प्रकृति का नियम है। एक बार जब ईश्वर मनुष्य रूप में जन्म ले लेते हैं, तो उन्हें भी प्रकृति के नियमों के अधीन ही जीना पड़ता है। यह वैसा ही है जैसे तुम भारत में प्रवेश करते ही भारतीय कानूनों के अधीन हो जाते हो या ग्रीस जाने पर तुम्हें उस देश के कानून के अधीन ही रहना होगा या उत्तर ध्रुव जाने पर वहाँ के ठण्ढे वातावरण को झेलना ही होगा। प्रकृति का नियम सब पर लागू है, इससे कोई भी मुक्त नहीं है। हमारे दर्शनों में यही कहा गया है।

ऐसे योगी और महात्मा, जो यह जानते हैं कि भविष्य के गर्भ में क्या है या भूतकाल में क्या घटित हुआ है, वे भी सब कुछ नियंत्रित नहीं कर सकते, क्योंकि यह सब किसी उच्च सत्ता के अधीन है। इसलिए इस तरह के भय तो रहेंगे ही। सब को इनसे गुजरना ही पड़ता है। कभी-कभी ये भय कई गुना बढ़ जाते हैं तो कभी बहुत हल्के भी हो जाते हैं। यह सब तुम्हारे धर्म, संस्कृति और समाज पर निर्भर करता है। पाश्चात्य जगत् में असुरक्षा की भावना ज्यादा है, पूर्वी देशों में यह कम है। पूर्वी जगत् में लोगों ने असुरक्षा के कई पक्षों को सामाजिक स्तर पर सुलझा लिया है, लेकिन पश्चिम में ऐसा नहीं हो पाया है क्योंकि उनका समाज वहाँ की धार्मिक मान्यताओं पर आधारित है। ये मान्यताएँ क्या हैं? पहली तो यह कि तुम्हारे लिए यही पहला और आखिरी जन्म है। वे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। इसलिए मौत आने के पहले वे सब कुछ कर लेना चाहते हैं, सभी कर्म पूरे कर लेना चाहते हैं। यहाँ हम लोग मानते हैं कि अभी नहीं तो अगले जन्म में ही सही, कोई समस्या नहीं। दुबारा मौका मिल जाएगा।

दूसरी बात यह कि यहाँ बचपन से हमें सिखाया जाता है कि अपने माता-पिता की देखभाल करना हमारा धर्म है, इसी से पुण्य मिलेगा। श्री राम या श्रवण कुमार की कथायें हमें उदाहरण स्वरूप बतायी जाती हैं। इसलिए यहाँ माता-पिता को किसी प्रकार की असुरक्षा की भावना नहीं रहती क्योंकि वे जानते हैं कि उनके बच्चे बुढ़ापे में उनकी देखभाल जरूर करेंगे। हाँ, कुछ अपवाद हो सकते हैं, विशेषकर आधुनिक समाज में, लेकिन सामान्य रूप से वृद्ध माता-पिता की देखभाल उनके बच्चे करते ही हैं। पश्चिम में यह बहुत बड़ी समस्या है। इसलिए वहाँ वृद्धाश्रम होते हैं, ओल्ड एज होम होते हैं। लेकिन सब जगह ऐसा नहीं हो पाता, आधे यूरोप में वृद्धाश्रम नहीं हैं।

इस तरह कई सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कारण होते हैं जिनसे भय की वृद्धि होती जाती है, लेकिन अगर आदर्श समाज भी हो तो भी तुम्हारे भीतर भय होगा। भारत में एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं, भर्तृहरि। एक बार उन्हें एक सुन्दर फल मिला जिसे उन्होंने अपनी रानी को दिया। रानी किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी, उसने वह फल अपने प्रेमी को दे दिया। वह व्यक्ति भी किसी अन्य औरत को चाहता था, उसने वह फल उसे दे दिया। वह औरत राजा भर्तृहरि को चाहती थी, इसलिए उसने वह फल राजा को ही दे दिया! राजा भर्तृहरि ने जब कामदेव की यह लीला देखी तो वह चकरा गया। उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने अपना राज-पाट त्याग दिया और गुरु गोरखनाथ का शिष्य हो गया। गुरु गोरखनाथ ने भर्तृहरि को नाथ पंथ में दीक्षित किया। ये कनफटा योगी भी कहलाते हैं क्योंकि इनके कान में छेद कर दीक्षित किया जाता है। भर्तृहरि तपस्या के लिए राजस्थान के माउँट आबू में चले गये। वहाँ अभी भी भर्तृहरि गुफा है। उनकी कहानी काफी लम्बी है। उन्होंने संस्कृत में तीन सौ श्लोक लिखे जिनमें सौ वैराग्य पर, सौ नीति पर और सौ श्लोक शृंगार रस पर हैं। इन्हें वैराग्य शतक, नीति शतक और शृंगार शतक कहते हैं। वैराग्य शतक में एक जगह उन्होंने लिखा है –

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

यदि तुम भोगमय जीवन बिताओगे तो रोग का भय तुम्हें निश्चित रूप से सतायेगा, लेकिन यदि तुम अपनी भोग की प्रवृत्ति पर अंकुश रख सकोगे तो रोग का भय नहीं होगा। भय स्वयं तो निराकार होता है, लेकिन मन में एक आकार ग्रहण कर लेता है, जो इस परिस्थिति में रोग का भय होता है। *कुले च्युतिभयं* – अपने कुल-परिवार पर ज्यादा ध्यान दोगे, अपने आप को ऊँचा समझोगे तो कुल से च्युत होने का, नाक कट जाने का भय तो होगा ही। *वित्ते नृपालाद्भयं* – अगर तुम्हारे पास बहुत धन हो तो आयकर विभाग के अफसरों का भय तो होगा ही। पूर्वकाल में राजा का भय होता था क्योंकि उसे अगर पता चल जाता कि इस व्यक्ति के पास अधिक धन है तो वह अपना दल-बल भेजकर उसे ले लेता था, लेकिन अब आयकर अधिकारी का डर है। इस तरह इस श्लोक में बहुत-सी बातें कही गयी हैं। निष्कर्ष यही कि इस जीवन में किसी भी रूप में रहो, भय तो होगा ही – *सर्वं वस्तु भयान्वितं।* केवल वैराग्य में ही व्यक्ति निर्भय रहता है, बाकी सब चीजों से भय उत्पन्न होता है – *वैराग्यमेव अभयम्।*

अब यह वैराग्य क्या है? उन सब चीजों के प्रति कामना और वासना पर नियंत्रण जिन्हें तुमने देखा या सुना है। किसी को पत्नी से प्यार है, बच्चे से प्रेम है, कोई धन की इच्छा रखता है, किसी को अपने सुन्दर घर से ममता है, कोई रूस गया तो वहाँ अच्छा लगा – यह सब राग है और इस तरह के सभी इन्द्रिय विषयों के प्रति राग के बजाय नियंत्रित भाव रखना वैराग्य है। राग का मतलब सनक, एक ही बात दिमाग में घूमती रहती है और मन हमेशा उसी के पीछे भागता रहता है। वैराग्य हो जाए तो वह सनक छूट जाती है, व्यक्ति निर्भय हो जाता है। लेकिन तुम जोर-जबरदस्ती करके वैरागी नहीं बन सकते। वैराग्य की स्थिति मनुष्य के विकासक्रम में एक निश्चित अवस्था है। जैसे केवल बालों को सफेद रंग लेने से कोई बूढ़ा नहीं हो जाता, बूढ़ा होने के लिए साठ की उम्र पार करनी होगी, उसी तरह तुम वैराग्य का स्वांग भले ही रच सकते हो, लेकिन तुम सच्चे वैरागी तब तक नहीं होगे जब तक तुम्हारा जीवन विकास की एक निश्चित अवस्था तक पहुँच नहीं जाता। वैरागी केवल किसी सम्प्रदाय, परम्परा या विचारधारा का नाम नहीं, यह कोई अभ्यास भी नहीं, बल्कि यह एक परिपक्व मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

मानव सेवा ही माधव सेवा है

ईश्वर का अनुभव वैसे ही होना चाहिए जैसे वे हैं। जब तुम दूसरे की सेवा करते हो तो वास्तव में तुम अपनी ही सेवा कर रहे हो, अपने से ही एकता का अनुभव कर रहे हो। दूसरों की सेवा किये बिना यह कहने का कोई फायदा नहीं कि मुझे सबसे एकता का अनुभव होता है। सबके साथ एकता का अनुभव करने के लिए तुम्हें दूसरों के सुख-दुःख को वैसा ही अनुभव करना होगा जैसे वे अपने सुख-दुःख हों। माँ अपने बच्चे की पीड़ा का अनुभव क्यों करती है? इसलिए कि वह उससे जुड़ी है, उसके साथ एकात्मकता है। जब तुम भी प्रेम के माध्यम से दूसरों के साथ जुड़ जाओगे तो यह ईश्वर-साक्षात्कार का एक निश्चित संकेत होगा। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ, किताबी बातें नहीं बोल रहा हूँ। जब मैं ऋषिकेश में अपने गुरु, स्वामी शिवानंद जी के आश्रम में रहता था तो कुष्ठरोगियों की देखभाल करता था, लेकिन मेरे हृदय में करुणा या सेवा की गहरी भावना नहीं थी। वह सब करता था क्योंकि गुरुजी का आदेश था। मुंगेर में भी मैं इस तरह के काम करता था, कुष्ठरोगियों को भोजन करवाता था, गाँवों में राहत कार्य के लिए संन्यासियों को भेजता था, लेकिन इन कार्यों में मेरी भावना गहराई से नहीं जुड़ी थी। बस बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष में रूप में यह सब करता था। लेकिन रिखिया आने के बाद से मेरी भावना पूरी तरह बदल गयी है।

कलियुग में साधना के दो ही मार्ग हैं – भगवन्नाम का जप-कीर्तन और गरीबों की सेवा-सहायता। आसन-प्राणायाम क्या है? उसे थोड़ा कर लो, आँखे बंद करके थोड़ा ध्यान कर लो, थोड़ी पूजा कर लो तो थोड़ी देर के लिए अच्छा लगता है, पर वह रास्ता नहीं है। वह तो कोल्हू के बैल का चक्कर है। बैल दिनभर घूमता है, फिर भी वहीं पर रहता है। योग का अभ्यास करने वाले सभी लोग कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते रहते हैं, पर दस-बीस साल के बाद भी वहीं रहते हैं। कहते हैं, 'स्वामीजी, मन तो एकाग्र होता ही नहीं।' वह होगा भी नहीं। मन को एकाग्र नहीं किया जा सकता। मन को केवल उन चीजों पर लगाना चाहिए जिनसे दूसरों का भला हो। दूसरों का भला सोचो, दूसरों के पेट के बारे में सोचो, दूसरों की बीमारी के बारे में सोचो, गरीबी के बारे में सोचो, अपने बारे में तो सोचना ही छोड़ दो। भगवान तुम्हारा ख्याल रखेंगे।

– 21 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 17

हमारा सोचने का तरीका अलग है। हमने जीवन में जो भी काम शुरू किया तो थोड़ी-सी जरूरतों को पूरा करने के लिये किया। पहले हमारा किचन वहाँ था, जहाँ पर टी.वी. लगा है, आठ-दस आदमी का खाना बनाते थे, सब खा लेते थे। उस वक्त हमने यह नहीं सोचा कि सौ आदमी आयेंगे तो कहाँ खायेंगे। हर मनुष्य को बहुत सीमित दायरे में सोचना चाहिये। उससे दिमाग पर गलत असर नहीं पड़ता और निर्णय भी ठीक होते हैं। हमारे निर्णय हमेशा सटीक इसलिये होते हैं कि हम बहुत ज्यादा नहीं सोचते। जैसे-जैसे जरूरत होती है, वैसे-वैसे उसको विकसित करते जाओ। पहले अन्दर कमरे में किचन था, फिर यहाँ आया, फिर वहाँ गया, फिर उस पर टिन शेड लगाया, दस साल में यह पाँचवाँ किचन हम बना रहे हैं। हम तो पहले ही बना सकते थे, क्या हमारा दिमाग नहीं था, हम नहीं जानते थे? जानते थे किन्तु दिमाग पर ज्यादा बोझ नहीं डालना चाहिये। उससे निर्णय चूकता है और निर्णय चूका तो गलतियाँ होंगी।

यही भगवान की रीति है, यही प्रकृति का नियम है। जब बच्चा पैदा होता है तो केवल हगता और मूतता है, काम नहीं कर सकता है। फिर थोड़ा बड़ा होता है तो घुटनों के बल चलता है। ज्यादा नहीं चलता है, उसका शरीर, उसका दिमाग, उसका हृदय, उसके अन्दर के रसायन सब एडजस्ट करते जाते हैं। तब उसके शरीर में विकास शुरू होता है। फिर शरीर या व्यक्तित्व में कोई हादसा नहीं होता। अब तुम्हारे पास पैसा है, बड़ा अस्पताल बना रहे हो, उससे तुम्हारे मन पर जो बोझ पड़ेगा उससे तुम्हारे दिमाग के रसायन फेल कर जायेंगे, क्योंकि तुम्हारा हर विचार तुम्हारे दिमाग के रसायनों और विद्युत-चुम्बकीय

परिपथों को प्रभावित करता है। अगर तुम बहुत महत्त्वाकांक्षी हो तो अपने मस्तिष्क के रसायनों की खपत कर रहे हो जो कालान्तर में तुम्हें विषाद और यहाँ तक कि आत्महत्या की ओर ले जा सकता है।

इसीलिए हमारे ऋषि-मुनि कहते थे कि ठीक ढंग से सोचो। हमारे ऋषि-मुनि वह सब जानते थे जो आज अमेरिका और यूरोप के लोग जानते हैं। संहिताओं और अन्य ग्रंथों में सब लिखा है। आयुर्वेद में चिकित्सा शास्त्र के सब रहस्य हैं। रॉकेट इत्यादि सब का विज्ञान लिखा हुआ है। रॉकेट बनाना आता था, बनाया नहीं। अशोक स्तम्भ कैसे बना कि उसमें जंग ही नहीं लगता? आज टाटा स्टील या और कोई इस्पात है जिसमें जंग ही न लगे! यह उस जमाने का विज्ञान था, मगर इन लोगों ने इसको विकसित नहीं किया। मनुष्य को अपनी उन्नति, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को थोड़ा-सा नियंत्रित करना चाहिये। धीरे-धीरे बढ़ोगे तो विकास अवश्य होगा। अब अमेरिका या इंग्लैण्ड में क्या है? उनका बाजार पूरा भर चुका है। आज अमेरिकन कम्पनियाँ जो माल पैदा कर रही हैं वह अमेरिका में ही खपत नहीं हो रहा, उनको बाहर आना पड़ेगा। बाहर बाजार मिलेगा तो ठीक है, नहीं तो आर्थिक संकट हो जाएगा।

हम यह नहीं सोचते कि रिखिया के लोग आयेंगे, फिर देवघर के लोग आयेंगे, फिर कलकत्ता, बम्बई से लोग आयेंगे। स्वामी सत्यानन्द ऐसा सोचता ही नहीं है। जब हमने मुंगेर में योगाश्रम खोला था तो हमारे पास कमरे ही नहीं थे। सब पुआल बिछाकर हॉल में सोते थे। ऐसा नहीं कि हम कमरे नहीं बना सकते थे। बस, नहीं बनाये। हर चीज में एक बात का ख्याल रखो कि मन पर, भावनाओं पर और कल्पनाओं पर बहुत अधिक स्ट्रेस, बहुत अधिक दबाव न हो। स्ट्रेस का असर मन पर ही नहीं, शरीर पर भी होता है। एक तरह का स्ट्रेस होने पर उससे सम्बन्धित एक रसायन तुम्हारे शरीर के अन्दर गिरता है। अभी हम बोल रहे हैं, तुम सुन रहे हो, समझ रहे हो, यह सब रासायनिक क्रिया है। अगर रसायनों में कहीं कुछ गड़बड़ी हुई तो तुम सुन नहीं सकोगे, तुम समझ नहीं सकोगे, हम बोल नहीं सकेंगे। शरीर के अन्दर हजारों प्रकार के रसायन होते हैं और वे रस काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि मानसिक और शारीरिक रोगों को जन्म देते हैं। मानसिक बीमारी तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क के रासायनिक क्रियाकलापों का प्रतिफल है। एड्रिनल ग्रंथि की क्रिया बढ़ती है तो भय उत्पन्न होता है। थायरायड ग्रंथि की गतिविधि बढ़ने से शरीर के अन्दर गर्मी आती है।

इसलिये हम ज्यादा नहीं सोचते हैं। यहाँ एक मिट्टी की कुटिया बनाकर रहते हैं। अब सोचा कि नवम्बर में शतचण्डी यज्ञ होता है, लोग आते हैं, गन्दे होटलों में रहते हैं, हजारों रुपया खर्चा करते हैं, यहीं रहेंगे तो अच्छा रहेगा, सस्ता भी रहेगा। यह विचार करके यहाँ एक भवन बनाया और नाम रख दिया क्लिनिक। उसमें धीरे-धीरे सब सुविधायें रखेंगे, गाँव के लोगों को निःशुल्क उपचार मिल जायेगा। नहीं तो बहुत खर्चा करना पड़ता है, दो-ढाई सौ का बिल आ जाता है। और नवम्बर में 9 दिन आकर यहाँ लोग टिक भी सकेंगे।

हर इन्सान की, हर समाज की, हर धर्म की, हर मुल्क की, हर फूल और पत्ते की, इस सृष्टि में हर एक चीज की एक निश्चित नियति होती है। आदमी का पुरुषार्थ नियति से जुड़ा हुआ है। बिना नियति के पुरुषार्थ नहीं होता है। अब यह चीज समझना भी कठिन है, समझाना भी कठिन है। उसको मानना चाहिये।

ये गाँव में जितने लोग हैं सबकी एक ही नियति है?

देखो, गाँव में लोग गरीब जरूर हैं, मगर गाँव के लोगों को अन्दर में परमात्मा का जो अनुभव होता है, जो विश्वास होता है वह शहर के लोगों में नहीं है। इसके अलावा गाँव के लोग बहुत मजबूत होते हैं। सेना हार जाती है, सरकार बदल जाती है। उनको रक्षा की पहली पंक्ति कहते हैं, फर्स्ट लाईन ऑफ



डिफेन्स। रक्षा की दूसरी पंक्ति समाज और गाँव हैं। इनको जीतना मुश्किल है और इनकी वजह से आज भारत जिन्दा है। वैदिक धर्म और ईश्वर पर विश्वास इनकी वजह से जिन्दा है। ये लोग दार्शनिक होते हैं। ये इतने दुःखी नहीं होते जितने शहर के लोग दुःखी होते हैं। इनका दुःख तुम देखते हो, इनको नहीं दिखाई देता है क्योंकि ये मस्त रहते हैं। इनके बीच में रहो तो पता चलेगा, वरना नहीं पता चलेगा। हाँ, उनके पास किचन नहीं है, टॉयलेट नहीं है, वह बात दूसरी है। वह भौतिक चीज है।

भारत में आज भी समाज का मुख्य अंग गाँव हैं। गाँव के लोग बिल्कुल अनजान हैं। फिल्म इन्डस्ट्री में क्या हो रहा है, टी.वी में क्या है, कुछ पता ही नहीं है। सबेरे से लेकर शाम तक बेचारे मजदूरी करते हैं और रात को अपना खा-पीकर सो जाते हैं। जो समय बचता है वह शादी में, बीमारी में और अन्त्येष्टि में चला जाता है। इनको कोई नहीं जीत पाया, न इस्लाम की सभ्यता, न पाश्चात्य सभ्यता।

आज सरकार गाँवों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देती। सरकार की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि वह वहीं पैसा लगाती है जहाँ से पैसा पैदा होता है। अब पेट्रोकेमिकल्स या कोयला में पैसा लगाती है तो पैसा उत्पन्न होता है। मंत्री को भी मिलता है, अफसरों, कर्मचारियों, ठेकेदारों को भी मिलता है, माफिया को भी मिलता है, हर एक को मिलता है। गाँव में यदि पैसा लगायेगी तो पैसा पैदा ही नहीं होगा। कोई भी सरकार कहीं पर भी गाँवों में पैसा नहीं लगाती है। यहाँ तक कि इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी।

इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी ऐसा ही है?

हाँ, सब जगह गाँव का यही हाल है। एक समान है। गरीबी दुनिया में सब जगह है। जैसे यहाँ देखते हो, बस उन्नीस-बीस का फर्क है। सब जगह गाँवों में ऐसा ही है। हम तो वहाँ के गाँवों में रहते थे, वहाँ बिल्कुल यही हाल है। यह जो पाश्चात्य सभ्यता तुम लोग कहते हो, वहाँ के गाँवों में नहीं है। उनके घर में कोई मर जाए तो एक साल कोई शुभ कर्म नहीं होते। एक साल शादी नहीं होती, काला कपड़ा पहनकर रहते हैं घरों में।

वहाँ जितने भी गाँव हैं, चाहे इंग्लैण्ड के गाँव हों, आयरलैण्ड के गाँव हों या अमेरिका के गाँव हों, सब एक ढंग से सोचते हैं। यह डिस्को डान्स, फैशन

शो, वगैरह जो कुछ भी हो रहा है, शहरों में होता है। चूँकि आप पढ़ते हो तो समझते हो दुनिया भर में हो रहा है। ऐसा नहीं है। दुनिया की अस्सी प्रतिशत आबादी अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीती है। जो कुछ भी आधुनिक है यह बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली या बैंगलोर में है, मगर जैसे ही तुम गाँव में निकलते हो तुम्हें वहाँ भेड़, मुर्गी, सूअर, गाय-बैल ही दिखाई देंगे।

मैं विदेश के किसी गाँव जाता था तो वहाँ के लोग समझते थे कि आसमान से गिरकर कोई देवता आया है। ऐसा वहाँ का हाल है। मेरे से मन्त्र लेते थे, दक्षिणा देते थे, मेरे लिये खाना-पीना लाते थे। Yogi from India समझते थे, सोचते थे कि मैं आसमान में उड़ सकता हूँ, आग पैदा कर सकता हूँ! विश्वास उनका गजब का! एक बार एक लड़की आयी, उसका अपने पति से तलाक करीब-करीब हो चुका था। वह ब्राज़िल की लड़की थी, वापस जाकर तलाक देने वाली थी। वैसे कहीं पर भी औरतें तलाक पसन्द नहीं करती हैं। किसी भी देश में औरत पति को छोड़ना नहीं चाहती है। उनके लिये बहुत बड़ी दुर्घटना है। वह आयी, उसे मन्त्र दिया, वापस गयी, उसका तलाक टल गया। उसने मुझे फोन किया, 'आपका आशीर्वाद मिल गया, मेरा तलाक टल गया, आप ब्राज़िल आइये, मेरे पति को भी चेला बना लीजिये।'

तलाक का प्रावधान जिस तरह इस्लाम या ईसाई धर्म में है, वैसा वैदिक धर्म में नहीं था। हिन्दू कोड में यह चीज लाये, वह ठीक है, कानून रहना चाहिये। हमारे यहाँ पहले केवल अलग होने की प्रथा थी, तलाक की प्रथा नहीं थी। उस कानून से अपने को कोई एतराज नहीं है, मगर दुनिया में उत्तर से लेकर दक्षिण तक लोग तलाक को अच्छा नहीं मानते हैं। अगर तलाक टल जायेगा तो बड़ी खुशी होगी, क्योंकि ईसाई धर्म में भी विवाह की पवित्रता है, इस्लाम, पारसी और यहूदी धर्म में भी विवाह की पवित्रता है। विवाह एक पवित्र सम्बन्ध है जो आजीवन बना रहना चाहिये। यह सब धर्मों की मान्यता है।

देश, काल और वस्तुमयी सृष्टि

हमारी पृथ्वी सौरमण्डल का एक अंग है और यह सौरमण्डल स्थिर नहीं है, अनंत आकाश में तेज गति से चल रहा है। हर दिन इस पर अलग प्रभाव पड़ रहे हैं। इसलिए पृथ्वी पर भी लगातार परिवर्तन हो रहा है, इस पर विभिन्न प्रकार की गुरुत्वाकर्षण और विद्युत-चुम्बकीय शक्तियाँ असर कर रही हैं।

दूसरी बात जो बहुत महत्त्वपूर्ण है, एक ग्रह के रूप में पृथ्वी का विकास नहीं, ह्रास हो रहा है। सतयुग और त्रेता युग में पृथ्वी का विकास होता है, द्वापर युग में विकास रुक जाता है और कलियुग में ह्रास शुरू हो जाता है, भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों दृष्टियों से। इसका मतलब कि भौतिक स्तर पर पृथ्वी की सृजन शक्ति खत्म हो रही है। सतयुग के समय, मतलब आज से लाखों साल पहले यह पृथ्वी अपने भीतर से डायनासॉर, हाथी, घोड़े, मनुष्य, सब पैदा कर सकती थी। पहले डायनासॉर नर-मादा के सम्बन्ध से तो नहीं पैदा हुये, वह तो प्राकृतिक सृष्टि हुई। प्राकृतिक सृष्टि का मतलब क्या होता है? पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश तत्त्वों को समेटने से एक हाथी पैदा हो गया, हथनी पैदा हो गयी, डायनासॉर पैदा हो गया, ऊँट पैदा हो गया। वह आज नहीं होता है। केवल मच्छर पैदा होते हैं और एक दिन शायद वे मच्छर भी पैदा न हों।

हमारे यहाँ बोला गया है कि सृष्टि दो तरह की होती है, ब्राह्मी सृष्टि और मैथुनी सृष्टि। अब अण्डे से मच्छर पैदा हो गया तो मैथुनी सृष्टि हो गयी, मगर जो पहला मच्छर पैदा हुआ वह तो ब्राह्मी सृष्टि है। प्रकृति के पाँच तत्त्वों के पंचीकरण से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। स्वामी विद्यारण्य की पंचदशी पढ़ोगे तो तुम्हें इस पंचीकरण प्रक्रिया के बारे में मालूम पढ़ेगा। जीव इन्हीं पंचतत्त्वों से पैदा होता है, इन्हीं में मिलता है। इसीलिये कहते हैं, मिट्टी से पैदा हुआ आदमी, मिट्टी से पैदा हुआ जीवन।

इसी तरह से वायु मण्डल भी खाली नहीं है। इसमें अनेकों प्रकार की शक्तियाँ बराबर इधर से उधर आती रहती हैं। एक ग्रह और दूसरे ग्रह के बीच में जो स्थान है उसको कहते हैं अन्तरिक्ष। इस अन्तरिक्ष में अदृश्य शक्तियाँ नित्य निवास करती हैं। यह शास्त्रों में लिखा है और विज्ञान के मुताबिक भी यह आकाश खाली नहीं है। यह अन्य तत्त्वों से भरा पड़ा है। हम बोल रहे हैं, यह ध्वनी कहीं जा रही है। हम सोचते हैं, वह विचार वहाँ जा रहा है। श्वास लेते-छोड़ते हैं, धुआँ पैदा करते हैं, सब वहाँ जा रहा है अन्तरिक्ष में। इसको अगर तुम्हें अच्छी तरह से समझना है तो तुम्हें नक्षत्र विज्ञान और पंचांग विद्या का अध्ययन करना चाहिए। पंचांग विद्या का मतलब समय के पाँच अंगों का ज्ञान। हमारे यहाँ समय को काल बोलते हैं। काल के भीतर ही सभी वस्तुएँ होती हैं, काल ही उनका आधार है। मैं उपनिषदों की बातों को सरल ढंग से बता रहा हूँ। यह सृष्टि काल पर टिकी हुई है। जिस तरह से एक घड़ा किसी

आधार पर रहता है उसी तरह से यह सारी सृष्टि काल पर टिकी है। काल ही इसका आधार है और इस काल को हम लोग शिव जी के रूप में देखते हैं। शिव जी का एक रूप है न महाकाल? और उस शक्ति का नाम क्या है? काली।

काल के पाँच मुख्य विभाग होते हैं और उन विभागों को हम लोग पंचांग में देखते हैं। आज सोमवार है, आज सौर चैत्र का दूसरा दिन है, आज कौन-सा नक्षत्र है, वह कितने बजे उदय हुआ, आप लोग सुने होंगे यह सब। उस आधार पर फिर ज्योतिष विद्या आती है। तब उसमें मालूम पड़ेगा यह समय कितनी ठोस चीज है।

काल और वस्तु के बाद तीसरी चीज आती है देश। तुम्हारी पृथ्वी आज इस देश में है, कल लाखों मील आगे चली जाती है। जब मैं पैदा हुआ, जब तुम पैदा हुये, उस दिन पृथ्वी जिस देश में थी आज उस देश में नहीं है। देश का मतलब होता है स्थान। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, सूर्य के चारों ओर भी घूमती है, उसी तरह से सूर्य भी किसी अन्य ग्रह के चारों ओर घूमता है, फिर अपनी धुरी पर भी घूमता है। जब पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर कर लेती है तो दिन और रात हो गया, मगर जब यह पृथ्वी सूर्य का पूरा चक्कर मारती है तो अयन होते हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन। उस वक्त यह अलग-अलग स्थानों को पार करती है, जिनको कहते हैं नक्षत्र। उसी तरह से फिर ऋतु बनती है। ऋतुओं से बारह महीने हो गये। उसी तरह से यह सूर्य फिर किसी दूसरे सूर्य का चक्कर लगाता है। उसकी भी बसन्त ऋतु या कुछ होती होगी, क्या मालूम। देश यानि स्थान, काल यानि समय और वस्तु यानि ऑब्जेक्ट, ये तीन चीजें हैं इस सृष्टि में।

स्वामीजी, आप कहा करते हैं कि सब पूर्वनिर्धारित है तो फिर लोग मंदिर क्यों जाते हैं, प्रार्थना क्यों करते हैं?

मंदिर मत जाओ, प्रार्थना मत करो, किसने कहा तुमसे यह सब करने को? लेकिन तुम फिर भी करोगे क्योंकि मजबूर हो। मन ही नहीं मानेगा, आखिर दिनभर क्या करेगा मन? मलूकदास ने कहा भी है –

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यह कहे, सबके दाता राम॥

इसका मतलब मंदिर जाने से कोई फायदा नहीं?

मेरे को क्या, वहाँ जाओ तो भी ठीक है, घर में रहो तो भी ठीक है। कहीं तो रहना है। मन्दिर में भी मजे से रहो, घर में भी मजे से रहो। जिन्दा रहने के लिये काम करना ही पड़ता है। काम नहीं होगा तो आदमी विषाद में चला जायेगा, कहेगा जिन्दगी व्यर्थ है, आत्महत्या कर लेगा।

कर्म दार्शनिक सिद्धान्त भी है, जो हमलोगों के यहाँ उपनिषदों और पुराणों में है, साथ ही यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त भी है। चिकित्सा विज्ञान में बोलते हैं कि बीमारियाँ पूर्वनिर्धारित होती हैं। कैसे पता चला कि किसी को कैंसर होगा ही? क्योंकि उसके जेनेटिक सिस्टम में ही ये सब चीजें उनको दिखायी देती हैं। यद्यपि यह विज्ञान पूरा विकसित नहीं हुआ है, मगर जितना हो चुका है उसके आधार पर बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि हाँ, बीमारियाँ पूर्वनिर्धारित होती हैं।

जो आदमी अच्छा काम करेगा उसका फल उसको इस जन्म में मिलेगा?

अच्छा या बुरा काम आदमी नहीं करता है, वह तो निमित्त है। आपके चाकू ने मेरा गला काट दिया और इसके चाकू ने किसी का ऑपरेशन कर दिया, उसमें चाकू का क्या दोष? उसमें तो करने वाले का दोष है और करने वाले न तुम हो न मैं हूँ। दुःख तुमने दिया, सुख तुमने दिया –

सकली तोमारी इच्छा, इच्छामयी तारा तुमि
तोमार कर्म तुमि करो माँ, लोके बाले कारी आमि
करे दाओ माँ ब्रह्म-पद करे करो अधोगामी
आमि जंत्र तुमि जन्त्री, आमि रथ तुमि रथी
जेमन चलाओ तेमनी चली।

हमारा तो यही दर्शन है, तुम भी ऐसा क्यों नहीं सोचते हो? काम करो, नौकरी करो, पैसा कमाओ, खर्चा करो, मेरे को दो, उसको दो, उसके लिये मना नहीं कर रहा हूँ, मैं पुरुषार्थ को नकार नहीं रहा हूँ, मगर पुरुषार्थ मनुष्य अपने ही सन्तोष के लिये करता है, न कि जीवन में कोई परिवर्तन के लिए। पुरुषार्थ तो केवल नाम है। किसके लिये करते हो पुरुषार्थ? पुरुष के लिये, अपने लिये। अपने लिये कर रहे हो, मजा आ रहा है, अच्छा लग रहा है,

उसको संस्कृत में कहते हैं पुरुषार्थ। पुरुषार्थ का मतलब प्रयत्न नहीं होता है, वह गलत अनुवाद है। पुरुष के लिये जो किया जाता है वह पुरुषार्थ है। तुम्हारे अन्दर जो बैठा है, जिसको सुख होता है, दुःख होता है, हर्ष होता है, सन्तोष होता है, उसके लिये तुम कर रहे हो। यह पुरुष आखिर कौन है?

बँगला खूब बना महाराज, जिसमें नारायण बोले।
इस बँगले में दस दरवाजे, बीच पवन का खंभा,
आवत-जावत कोऊ नहीं देखा, यही एक अचम्भा।
एक अचम्भा हमने देखा, नारी पुरुष का जोड़ा,
कहत कबीर सुनो भई साधो, जिन जोड़ा तिन तोड़ा।

वह पुरुष ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाता है, पर किसी को दिखाई नहीं देता है। आगे कबीरदास जी कहते हैं कि इस बंगले में एक और अचम्भा है, एक नारी-पुरुष का जोड़ा। जो इस नारी और पुरुष को जोड़ देता है, वही उसको पाता है।

इस बंगले के अन्दर जो जीवात्मा रहता है वह पुरुष है। तुम जो कुछ भी कर रहे हो उस जीवात्मा के लिये कर रहे हो, उसकी खुशी के लिये कर रहे हो, अपनी नियति को बदलने के लिये नहीं कर रहे हो। नियति तो एक ऐसा कानून है कि हम-तुम जैसे चार फुट के आदमी क्या बदलेंगे। आखिर हमारी क्या हैसियत है इस ब्रह्माण्ड में? इस विशाल, अनन्त ब्रह्माण्ड में एक सूर्य है, जिसका एक ग्रह पृथ्वी है, उसमें एशिया महाद्वीप है जिसमें हिन्दुस्तान एक देश है, उसमें एक बिहार राज्य है जिसमें एक शहर देवघर है जिसमें एक गाँव पनियापगार है। उसमें एक मकान है जिसमें एक छोटा-सा आदमी स्वामी सत्यानन्द है और वह कहता है मैं कर्त्ता हूँ! अब तुम उस लम्बे नक्शे में देखो तुम्हें एक बिन्दु भी देखने को नहीं मिलेगा। यह तुच्छ-सा जीव इतनी बड़ी-बड़ी बातें कैसे करता है?

हमने बहुत पहले सोच लिया था कि देखो सत्यानन्द, तुम्हें जो कुछ मिलने वाला है, वह जरूर मिलेगा और जो खोना होगा वह खोना पड़ेगा। जो नाम मिलेगा, मिलेगा, जो बदनामी मिलेगी, मिलेगी, जो स्वास्थ्य मिलेगा, मिलेगा, जो बीमारी मिलेगी, मिलेगी। तुम उसकी चिन्ता मत करो, वह तो तुमको मिलना ही है। अब रह गया बाकी समय, किसी तरह से टाईम पास

करो। थोड़ा मूँगफली खा लो, थोड़ा अखबार पढ़ लो, थोड़ा टी.वी. देख लो, नौकरी कर लो, शादी कर लो, बाल-बच्चे पैदा कर लो, समय निकल जायेगा किसी तरह से। सिर्फ टाईम पास करो, इस जीवन के विषय में ज्यादा गम्भीर मत रहो क्योंकि कोई है जो नियति को नियंत्रित कर रहा है। जैसे कुत्ते को मालिक जंजीर से बाँधकर ले जाता है, इधर-उधर जाने से उसको खींचता है, उसी तरह से अब तुम कुत्ते हो, मालिक कोई और है।

यह मेरी ही फिलासफी नहीं है, सब संत-महात्मा तो यी कहते हैं। ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, गुरु नानक, सब तो यही कहते थे। संत-महात्माओं पर भरोसा न हो तो अच्छे-अच्छे वैज्ञानिकों के लेख पढ़ो, आईन्स्टाईन ने क्या कहा था, मैक्स प्लैंक ने क्या कहा था? जिन बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने दुनिया में क्रान्ति लाई, उनका क्या कहना है? वे एक ही बात बोलते हैं – एक बहुत बड़ी सत्ता है और वही सत्ता सारी सृष्टि का संचालन करती है।

स्त्री जाति का उत्थान

स्त्री जाति की उन्नति स्त्री जाति ही कर सकती है। पुरुष स्त्री जाति का उत्थान नहीं कर सकता, क्योंकि स्त्री के सोचने का तरीका, उसकी भावनाएँ पुरुष से अलग होती हैं। उसकी पसंद, उसकी प्राथमिकता आदमी से अलग होती है। केवल यहाँ नहीं, अमेरिका जाओ, जर्मनी जाओ, औरतों का मूल स्वभाव वही है। सब जगह एक तरह है। पढ़ी-लिखी लड़कियों का भी मानसिक और भावनात्मक ढाँचा एक-सा ही होता है। उन्हें कोई भी दूसरी भाषा थोड़ा-सा भी पढ़ाने से उनके दिमाग में, उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन आता है। अगर अंग्रेजी पढ़ने वाली हो तो हिन्दी या संस्कृत पढ़े। हर भाषा का मनुष्य के मन पर अलग-अलग असर पड़ता है। भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

यहाँ पहले-पहले छोटी लड़कियों को स्वामी निर्मलरत्ना अंग्रेजी पढ़ाती थी तो तीन-चार आने लग गयीं। एक लड़की दिनभर दरवाजे पर खड़ी रहती थी, स्वामी सत्संगी बाहर जाती तो कहती हमको भी सीखना है। हमने कहा, इसको ससुराल जाकर गोबर ही तो उठाना है, मिट्टी तो उठानी है, ईंटा तो उठाना है, वह अंग्रेजी सीखकर क्या करेगी? मगर नहीं, यहाँ की लड़कियाँ अंग्रेजी सीखना चाहती हैं, उनके माता-पिता उनको सिखाना चाहते हैं। यह हमारे देश का नया मनोविज्ञान है, नया बैरोमीटर है। गाँव के माता-पिता अपनी बच्चियों



को, जिनका प्रारब्ध बर्तन मांजना, कपड़ा धोना, गोबर उठाना, बच्चा पैदा करना ही है, अंग्रेजी सिखाना चाहते हैं। यह आज हमारे समाज का बैरोमीटर है। यदि आज हम व्यवस्था ठीक कर सकें, और भी शिक्षक ला सकें तो सैकड़ों लड़कियाँ आयेंगी। हमारे पास आवेदन-पत्र तो ढाई सौ थे। ढाई सौ में से हमने केवल बीस को चुना। हमने कहा, धीरे-धीरे शुरू करो। जब देखेंगे कि इन लोगों में इच्छा है तो शिक्षक भी आ जायेंगे, हमारे पास शिक्षकों की कोई कमी तो है नहीं।

मगर हमारा लक्ष्य अंग्रेजी नहीं है, वह तो चारा है। हमारा लक्ष्य है कि इन लोगों को ऊँची चीजों के बारे में, उच्च दर्शन के बारे में सोचना चाहिये। शादी करना, बच्चा पैदा करना, घर चलाना, पैसा कमाना, चाय-भाजी बनाना, यह तो मजबूरी है, सबको करना पड़ता है, मगर यह जीवन का लक्ष्य नहीं हो

सकता। जीवन का लक्ष्य है ज्ञान की प्राप्ति, तत्त्व चिन्तन, ईश्वर और सृष्टि के बारे में सोचना-यह काम मनुष्य ही कर सकता है, कुत्ता, बिल्ली, हाथी, वगैरह यह काम नहीं कर सकते। केवल मनुष्य ही ज्ञान का चिन्तन कर सकता है, ईश्वर पर बात कर सकता है। ईश्वर नहीं है, यह भी बोल सकता है और ईश्वर है, यह भी बोल सकता है। पूजा-पाठ कर सकता है, रामायण पढ़ सकता है, जन्म-पुनर्जन्म के बारे में सोच सकता है। और तो कोई नहीं कर सकता है न? जब मनुष्य के अन्दर यह क्षमता आ गई है तो उसका उपयोग करना चाहिए न? खाना बनाओ, कपड़ा धोओ, शादी करो, बच्चा पैदा करो-यह करना ही पड़ेगा, यह मानने को हम तैयार हैं, किन्तु यह जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। तुम इसलिये पैदा नहीं हुये हो।

हमारे पूर्वज बन्दर थे, ऐसा डार्विन बोलता है, मगर किसी भी बन्दर को आरती करते या तुलसी-पूजा करते या शिवलिंग का अभिषेक करते या मन्त्र जपते देखा है क्या? हम तो नहीं मानते कि बन्दर हमारे बाप-दादा थे, मनुष्य ने सीधे जन्म लिया है। भगवान ने मनुष्य को पैदा किया है, उसने प्रयोग किया है कि कोई ऐसा प्राणी हो जो कम-से-कम मेरी जय-जयकार तो बोले। भगवान ने सब प्राणी पैदा किये, मगर कोई उसको याद नहीं करता। कुत्ता-बिल्ली, हाथी-घोड़ा, पतंग-मातंग सब तैयार किया, मगर पैदा करने के बाद उन्होंने सलाम भी नहीं किया। भगवान ने सोचा, अब ऐसा कोई जीव पैदा करें जो कम-से-कम कहे 'श्री राम जी की जय'। तब उसने मनुष्य को पैदा किया, और क्या पैदा किया कि लो! बनाने वाले को ही भूल गया। अब बेटी की तरफ देखता है, बेटे की तरफ देखता है, दादा-परदादा, नाती-पोती सबको देखता है, मगर भगवान का नाम याद नहीं आता। जब कुछ आफत आ जाती है तो देवघर वगैरह जाकर फल-फूल चढ़ा देता है। माने भगवान की वही भूमिका है कि जब दिक्कत आए तो चले जाओ। गलत बात बोली क्या?

मनुष्य को भगवान का ज्ञान हुआ। यह मनुष्य की विशेषता है, पर मनुष्य ने इस विशेषता का फायदा नहीं उठाया। मनुष्य के लिये भगवान का भजन, आध्यात्मिक जीवन मुख्य विषय नहीं रह गया, उसके लिये प्रधान विषय है शादी-ब्याह बस। जो मुख्य विषय था वह गौण हो गया। भगवद्-चिन्तन, आध्यात्मिक जीवन हमलोगों के लिये वैकल्पिक विषय हो गया और सांसारिक जीवन अनिवार्य। जबकि अनिवार्य तो अध्यात्म होना चाहिये।

मनुष्य ईश्वर से विमुख क्यों होता है?

शुरू से ही मनुष्य ईश्वर से दूर होते गया है। अंग्रेजी में शब्द आता है religion, re का मतलब होता है दुबारा, ligion का मतलब होता है बांधना। जैसे गाँठ बाँधी जाती है न, जुड़ना, तो religion का मतलब दुबारा जुड़ना। इसका मतलब यह हुआ कि तुम पहले एक ही थे, भगवान में ही थे। भगवान के साथ तुम्हारा सम्बन्ध था, बन्धन था, तुम छूट गये, अब दुबारा जोड़ो। Religion का मतलब मजहब नहीं होता है, बल्कि इसका मतलब होता है पुनर्योग, पुनर्सम्बन्ध। प्रथम सम्बन्ध क्या है? भगवान ने हमें बनाया, हम भगवान के अन्दर हैं, भगवान और हम एक हैं। अज्ञान की वजह से हम हट गये, दूर चले गये तो किसी ने आकर दुबारा भगवान का ख्याल कराना शुरू कर दिया, और तुम दुबारा जुड़ गये।

वेदों और उपनिषदों में यह प्रश्न बहुत आया है – क्या वजह है कि जीवात्मा जो परमात्मा का अपना स्वरूप है, मनुष्य जो परमात्मा का औरस पुत्र है, इनके बीच सम्बन्ध-विच्छेद क्यों हो गया? जीवात्मा परमात्मा से हटकर माया की तरफ क्यों जाने लगा? उसका यह स्वभाव क्यों है? यह आज का प्रश्न नहीं है, यह तो हजारों सालों से पूछा गया है। जब परमात्मा मेरे अन्दर है, जब परमात्मा मेरा जन्मदाता है तो फिर मैं मनुष्य प्रपंच की तरफ क्यों गया? कुत्ते और सूअर की तरह विष्ठा क्यों खाना? जिन चीजों से तुम जानते हो दुःख मिलता है, परेशानी होती है, उन्हें ही क्यों पकड़कर रखते हो?

सांख्य शास्त्र में इसका कारण बतलाते हैं। कहते हैं कि जब पुरुष और प्रकृति का संयोग हुआ तब सृष्टि की उत्पत्ति हुई, जीव की उत्पत्ति हुई। यदि पुरुष और प्रकृति का मिलन नहीं होता तो जीव की उत्पत्ति नहीं होती। तब परमात्मा निराकार, निर्लेप, अजन्मा, एकान्त में एक जगह बैठा रहता। *एकोऽहं*, मैं एक हूँ, ऐसा सोचकर शून्य निराकार में रहता। उपनिषद् कहता है कि एक बार की बात है, परमात्मा के मन में संकल्प उठा *एकोऽहं बहुस्यामः* – मैं एक से बहुत हो जाऊँ, प्रजा पैदा करूँ। तब उसके आगे कहानी आती है, कैसे अण्डा फूटा, चौपाये कैसे बने, फिर दोपाये कैसे बने, कीट-पतंग-मातंग, चौरासी लाख योनियाँ जो बोलते हो न, ये कैसे बनीं। पुरुष और प्रकृति चने के दो फाँक जैसे हैं जिनके बीच से अंकुर निकलता है। अगर दोनों फाँकों को अलग रखोगे तो अंकुर नहीं निकलेगा। उसी तरह पुरुष-प्रकृति के योग से सृष्टि पैदा होती है, और पुरुष-प्रकृति को अलग किया जाए तो सृष्टि का नाश।

कबीरदासजी का जो पद बोला था न, *'एक अचम्भा हमने देखा, नारी पुरुष का जोड़ा। कहत कबीर सुनो भई साधो, जिन जोड़ा तिन तोड़ा।'* यहाँ जोड़ने का मतलब होता है ध्यान योग, और तोड़ने का मतलब होता है पुरुष को प्रकृति से अलग करना। ध्यान के द्वारा पुरुष और प्रकृति को अलग किया जाता है। प्रकृति का मतलब होता है पदार्थ और पुरुष का मतलब होता है चेतना।

प्रकृति को और समझाते हैं। प्रकृति कोई औरत नहीं है, एक तत्त्व है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती है – सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से युक्त। पुरुष इन तीन गुणों का आश्रय लेकर सृष्टि को पैदा करता है। जब तुम या हम पैदा हुये तो इन तीन गुणों को लेकर पैदा हुये हैं। आखिर सन्तान में माँ का अंश तो आयेगा ही। माँ प्रकृति और पिता पुरुष, तो हममें प्रकृति से तीन गुण आये-तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण। हम सब लोग रजोगुण और तमोगुण प्रधान जीव हैं, इसलिये हमलोग हमेशा बाहर की तरफ जाते हैं, यद्यपि परमात्मा के अंग हैं।

रामचरितमानस में इस बात को और भी अच्छी तरह से समझाया है। वहाँ श्रीराम का पूरा जन्म इसी प्रश्न का उत्तर है। सीता का हरण, रावण का मरण, समुद्र भ्रमण, दशरथ की तीन रानियाँ, चार पुत्र, वनवास, सीता-विवाह, धनुष-यज्ञ, यह सब उसी प्रश्न का उत्तर है जो तुमने पूछा है। जीवात्मा बन्धन में क्यों पड़ा है? क्यों माया उसको हरकर ले जाती है? क्यों रावण सीता को हरकर ले जाता है और किस तरह से उस जीवात्मा सीता का उद्धार होता है? रावण आखिर कौन है? अरे, रावण दस सिर वाला आदमी है, तुम भी हो दस सिर वाले। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, दस हो गये। तुम दुनिया का जितना ज्ञान प्राप्त करते हो, जितना भोग भोगते हो, दस इन्द्रियों से ही तो भोगते हो न? खाना-पीना, सोना-जागना, आदान-प्रदान, यह दस इन्द्रियों से ही तो अनुभव हो रहा है न? रावण तो तुम हो, क्या फर्क है। हर इन्द्रिय की दो वृत्तियाँ होती हैं, दस इन्द्रियों की कितनी हुईं? बीस, इसलिए रावण के बीस हाथ हैं। वह सब कुछ जानते हुए भी सीता को हरकर ले आया। मनुष्य भी अपनी इन्द्रियों के वशीभूत होने से ये सब काम करता है, और राम जी की सीता को हर लेता है। रामचरितमानस मनुष्य के तमाम प्रश्नों का उत्तर है। भक्ति के प्रश्नों का भी और ज्ञान के प्रश्नों का भी।

– 23 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 18

आज का युग उपयोगितावादी युग है। जो जिसके जितना काम आ जाए, उसे लोग उतना ज्यादा मानते हैं। जो किसी के काम का नहीं है, पड़ा रहे साठ-सत्तर साल, क्या फर्क पड़ता है। इंग्लैण्ड की राजकुमारी डायना को तो सब कोई जानते हैं। राज परिवार ने उसे बहिष्कृत कर दिया और संसार ने उसे सर-माथे पर रख लिया। यह आज के सामान्य व्यक्ति की मर्यादा है। दुनियाभर के लोग उस राजकुमारी का उतना ही आदर करते हैं जितना शायद यहाँ सती-सावित्री का करते हैं। यह इस युग की मर्यादा है जिसमें किसी पुरुष या स्त्री के चरित्र को लोग अपने दृष्टिकोण से परखते हैं।

तुम बड़े हो, अपने लिये बड़े हो। तुम पवित्र हो, अपने लिये हो, हमें तो तुमसे कोई फायदा नहीं। आज का आदमी हर चीज को लाभ-हानि की तुला पर तौलता है। व्यापार से, समाज से, रिश्ते-नातों से, सब से फायदा चाहता है। जो रिश्ते, जो नाते, जो परम्पराएँ आज उस व्यक्ति के किसी भी प्रकार काम आती हैं, वे उसके लिये स्वीकार्य हैं। वर्त्तमान युग उपयोगितावाद और व्यावहारिकता का है। मैं समझता हूँ आदमी हमेशा व्यावहारिक ही रहा है। जिसे तुम आदर्शवाद कहते हो वह वास्तव में एक सामाजिक अवरोध है, जैसे गाड़ी में ब्रेक। ब्रेक हमेशा लगाने के लिये नहीं होता, जब जरूरत होगी तब लगायेंगे। हमेशा लगाओगे तो गाड़ी चलेगी नहीं। आदर्शवाद का तभी उपयोग होता है जब उसकी आवश्यकता हो, अन्यथा कुछ न बोलो, शान्त रहो। इसका उपयोग मत करो। आदर्शवाद को लेकर हिन्दुस्तान में कुछ गलतियाँ हुई हैं।

युद्ध के पीछे आर्थिक कारण

समाज और संसार में लड़ाई जरूरी नहीं है। लड़ाई होती है क्योंकि उससे कुछ लोगों को फायदा होता है जो लड़ाई को एक उद्योग के रूप में देखते हैं। वे युद्ध को एक राजनीतिक निर्णायक के रूप में नहीं, बल्कि एक उद्योग के रूप में देखते हैं। कौन जीतेगा, किसकी हार होगी, कौन राजा बनेगा, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। हमारे कितने बम बिकेंगे, कितना अनाज बिकेगा, कितनी सिगरेट बिकेगी, कितना कपड़ा बिकेगा, कितना चमड़ा बिकेगा, इससे मतलब रहता है। हमें कितने हवाई-जहाज, कितने युद्धपोत बनाने पड़ेंगे, यह काम की चीज होती है। उस वक्त बाज़ार मंदी से उठ जाता है। इसीलिए तो लड़ाइयाँ होती हैं।

यह बात याद रख लो कि महायुद्ध तभी होते हैं जब किसी शक्तिशाली साम्राज्य की अवनति होने लगती है, वहाँ के बाज़ार में मन्दी आने लगती है। आज अमेरिका एक बड़ा साम्राज्य है। किसी जमाने में ब्रिटेन बड़ा साम्राज्य था। जब वहाँ आर्थिक मन्दी होने लगती है तो समाज चौपट होने लगता है। तुम्हारा माल बिक नहीं रहा है तो तुमको पैसा नहीं आ रहा है। माल तैयार होकर पड़ा हुआ है गोदाम में। उस पर टैक्स पर टैक्स भरते जाओ। माल बनता है, पर बिकता नहीं क्योंकि माँग नहीं है। मकान नहीं बन रहे हैं, मजदूर बैठे हैं। पाव-रोटियाँ सड़ रही हैं। उसको कहते हैं मन्दी, रिसेशन। उस वक्त मंदी से बाहर आने के लिये युद्ध रचे जाते हैं। लड़ाई तो आर्थिक सन्तुलन के लिये की जाती है, ऐसे ही थोड़ी होती है।

तो महाभारत के समय भी ऐसा ही हुआ था क्या?

महाभारत के समय ऐसा ही कुछ हुआ होगा, कोई जरूरी नहीं। पुराने जमाने में लड़ाइयाँ राज्य और अधिकार के लिये लड़ी जाती थीं। जिस आर्थिक सिद्धान्त की बात हम कर रहे हैं, वह उस वक्त नहीं था। यह सिद्धान्त तो पिछले तीन-चार सौ साल का है। लोग लड़ाइयाँ करते थे केवल सम्पत्ति बटोरने के लिये या अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये।

लड़ना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति नहीं है। लड़ना किसी को पसन्द नहीं, पर सामाजिक कारणों से, आर्थिक कारणों से और इन्सान के अन्दर जो दिमाग है, उसकी वजह से लड़ाइयाँ होती हैं। लड़ाइयाँ करवाई जाती हैं। अमेरिका

अपनी जमीन पर लड़ाई नहीं चाहता, इसलिये लड़ाइयाँ पूर्वी यूरोप की तरफ रखता है, अपनी तरफ लड़ाई को आने नहीं देता। इंग्लैण्ड ने लड़ाई की, उसका सूर्य अस्त हो गया। जितने भी राज्य लड़ने और जीतने के लिये गये वे अपने दरवाजे पर लड़ाइयों को नहीं संभाल सके, खत्म हो गये, क्योंकि युद्ध में बहुत नुकसान होता है। एक आदमी पाव भर खाना खाता है, मगर एक सैनिक एक मन खाना खाता है। उस हिसाब से राशन दिया जाता है। जब मैदान-ए-जंग में राशन जाता है तो एक हजार लोगों के लिये एक हजार पाव नहीं जायेगा, एक हजार मन जायेगा। अब सिगरेट एक सैनिक के पीछे दस जायेगी क्योंकि वहाँ नुकसान भी होता है, छोड़कर भागना पड़ता है। वह सब उसमें जोड़ा जाता है। सैनिकों का कोटा आपके कोटे से कई गुना ज्यादा होता है।

सैनिक मरता है तो उसकी पत्नी विधवा हो जाती है, बच्चे अनाथ हो जाते हैं, जिसका दोष सरकार को लगता है। जो अच्छी सरकार है वह किसी-न-किसी तरह से लड़ाई को टालेगी। इसलिये हमेशा कहा जाता है कि भाई लड़ो मत, बातचीत के द्वारा कोई रास्ता निकालो। हाँ, बातचीत से जो हल निकलता है उसमें समय जरूर लगता है। जैसे हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की समस्या है, पचास साल हो गए हैं, पाँच पीढ़ियाँ बदल गई हैं। कोई बड़ी बात नहीं है। पाँच-दस और पीढ़ियाँ निकल जाने दो, सारा माहौल बदल जाएगा। बातचीत में समय लगता है जबकि लड़ाई में आधे घण्टे में सब निश्चित हो जाता है। लड़ाई में दोनों तरफ नुकसान होता है। एक जहाज गया तो करोड़ों रुपयों का नुकसान होता है।

स्वामीजी, पुराने जमाने में जो बड़ी लड़ाइयाँ होती थीं, जैसे महाभारत या राम-रावण युद्ध, उनमें इतने सारे लोग मरते थे तो क्या पूरा मैदान मृतकों से भरा रहता होगा? तब हाथी-घोड़े कैसे चलते थे, या कोई तरीका था मृतकों को हटाने के लिये?

देखो जी, हर युग में सरकार के अलग-अलग नियम होते हैं। एक नियम तो यह कि सरकार लड़ाई में भाग नहीं लेती है। लड़ाई में भाग लेती है सेना और राजा। सरकार तो एक तंत्र या व्यवस्था होती है। सचिव, कलेक्टर, तहसीलदार – सरकार इसको कहते हैं और यह सरकार लड़ाई में कभी भाग नहीं लेती है। जब लड़ाई होती है तो यह पीछे से इन्तजाम करती है, राशन भेजती जाती है,

तम्बाखू-सिगरेट, मक्खन, दूध, मांस, मसाला सब भेजती जाती है। जो मरते हैं उनको ले भी जाती है। इलाज भी करती जाती है।

अब रामायाण-महाभारत के वक्त भी सरकार उतनी सक्षम रही हो, यह तो हम नहीं कह सकते हैं। हाँ, यह नियम पहले भी था कि घायलों को जो लोग उठाते हैं उनके ऊपर हमला नहीं होता था। इसका वर्णन रामायण में आता है। डाकिनी, बेताल और पिशाच मरे हुये या घायल लोगों को ले जाया करते थे। यह सब लिखा है, मगर हम उसका दूसरा मतलब लगाते हैं। बेताल का मतलब लगाते हैं कि बड़े दाँत हैं, सींग हैं। डाकिनी-शाकिनी को डरावनी औरत समझते हैं। पर ऐसा नहीं है। ये उस वक्त के पद और दायित्व थे, जैसे आजकल नर्स या हेड-नर्स कहा करते हैं। बस इतना ही फर्क है।

महाभारत में उल्लेख है कि भीष्म पितामह ने एक ही दिन में दस हजार लोगों को मारा। इतनों को उठाना कैसे सम्भव है? यह समझ में नहीं आता।

हमलोगों के देश में एक परम्परा रही है। इतिहास को इतिहास की तरह नहीं लिखते हैं। इतिहास को इतिहास की तरह लिखने से क्या होगा? आगे की पीढ़ियों में तुम्हारा और हमारा मेल कभी नहीं हो सकता। वह याद बनी रहेगी। इसलिये इतिहास को हमारे यहाँ पुराण के रूप में लिखते हैं। पुरा का मतलब होता है पुराना समय या जमाना, ण का मतलब होता है जानकारी। एक जमाने की जानकारी, यह हुआ पुराण का शाब्दिक अर्थ।

पुराणों की भाषा-शैली में दो विशेष अलंकार मिलाते हैं – एक अतिशयोक्ति अलंकार और दूसरा भयंकर अलंकार। अलंकार माने जैसे तुम गहना-जेवर पहनते हो तो अच्छे दिखते हो, बिन्दी लगाते हो तो अच्छा दिखता है। जैसे स्त्री को आकर्षक बनाने के लिए उसे अलंकार दिए जाते हैं, वैसे ही कथा को रोचक बनाने के लिये यथार्थ को आधार बनाकर उसमें अतिशयोक्ति और भयंकर अलंकार, ये दो चीजें जोड़ी जाती हैं। इसलिए दस हजार आदमी का हजार लगा दो। यह तुम्हें सब जगह मिलेगा। यह इसलिए किया गया ताकि आज पढ़ने वाले का दिमाग इस तरह से चले कि उसमें किसी भी तरह से दुर्भावना न हो।

आज अगर हम पचास साल पहले का इतिहास याद करें, हिन्दुस्तान के लोग कैसे पाकिस्तान भागे थे, पाकिस्तान के लोग कैसे भारत भागे थे, उनके

बच्चों, औरतों, मर्दों के साथ कैसा व्यवहार हुआ था, उसका विवरण एकदम यथार्थ भाषा में लिखेंगे तो सौ साल बाद भी लोग याद करेंगे। इसी को अगर एक कथा या आख्यान के रूप में रखोगे तो सारे का सारा जोर यथार्थ से हटकर अतिशयोक्ति में चला जाता है। इसलिये हमारे यहाँ इतिहास को हमेशा पुराणों का रूप दिया गया है। हमलोगों के पुराण एक तरह के इतिहास ही हैं।

अब देखो, छोटी-सी बात तुम्हें बताऊँ। आज यूरोप और अमेरिका बहुत मालदार देश हैं, वहाँ बहुत बड़े उद्योग हैं, बड़ी कम्पनियाँ हैं। उनके बाज़ार पूरी तरह सैचूरेट हो गए हैं, भर गए हैं। अपनी अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिए उन्होंने कृत्रिम बाज़ार तैयार किया है। कृत्रिम बाज़ार क्या है? ये सब डिज़ाईनर टेक्सटाईल, डिज़ाईनर जूते, नये प्रकार के साबुन – यह कृत्रिम बाज़ार है। लोगों का ध्यान कई प्रकार के जूतों में, कई प्रकार के शैम्पू में जाता है, बिक्री होती है। पर यह कृत्रिम बाज़ार भी भर चुका है। अब क्या करेंगे? दूसरे देशों में जायेंगे बेचने के लिये। वहाँ बाज़ार खोलेंगे। बीस-तीस साल के बाद तुम देखोगे उन देशों के पास हथियार रहेंगे, जबर्दस्त टेक्नॉलॉजी रहेगी।

कल्पना करो, बीस-तीस साल के बाद जब इनके पास टेक्नॉलॉजी आ जायेगी तो क्या करेंगे। वही हाल होगा जो एक जमाने में पुराणों में लिखा है कि राक्षस लोगों ने देवताओं पर हमला किया और इन्द्र को अमरावती से भगा दिया। उसने ब्रह्मा, शिव और विष्णु से जाकर कहा, आपने ब्रह्मास्त्र, पाशुपातास्त्र और नारायणास्त्र जैसे हथियार दिये हैं, अब हमें बचाइये आप। ब्रह्मा, विष्णु, शिव बोले – भारत में जाओ, वहाँ राम जी ने जन्म लिया है, कृष्ण जी ने जन्म लिया है, वे ही इन सब को ठीक कर सकते हैं। वह समय आने वाला है। भारत की संस्कृति अभी भी एक सौम्य संस्कृति है। सारे राष्ट्र इस बात को जानते हैं कि भारत सौम्य देश है। ठीक है, माना कि हिन्दुस्तान गरीब है, निरक्षर है, मगर सब लोग भारतीयों के मनोविज्ञान को गंभीर मनोविज्ञान मानते हैं। एक दिन यही यूरोपियन राष्ट्र, यही पाश्चात्य देश हिन्दुस्तान के पास मदद माँगने के लिये आयेंगे। या तो इतिहास स्वयं को दोहराता है, या यूँ कहो, पुराणों में जो भविष्यवाणियाँ लिखी हैं, वही हो रहा है। पुराणों में कहा है कि संस्कृति तीन तरह की होती है, मानवी, दैवी और आसुरी। मानवी और आसुरी संस्कृति का मतलब तो जानते हो। रही बात देवताओं की, देवता लोग तो भोग प्रेमी होते हैं, *देवाः भोगप्रियाः।* पाश्चात्य

संस्कृति में बढ़िया खाना, बढ़िया पीना और भोग विलास नहीं है क्या? ये उसी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में भी कुछ चीजें अपने आप को दोहराती प्रतीत होती हैं। इसका क्या कारण है?

प्रकृति का नियम है कि तुम्हारे पास अगर शक्ति और सत्ता आती है तो अहंकार भी आ जाता है। उस दम्भ और घमण्ड के कारण तुम्हारा पतन होता है, फिर तुम दुबारा खड़े होते हो, पुनः शक्तिसंपन्न होकर पुरानी स्थिति को फिर से भूल जाते हो। आदमी पैदा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है, फिर पैदा होता है। यही दुनिया का चक्कर है। इसलिए कहते हैं कि इतिहास स्वयं को दोहराता है। आप कहते हैं जीवन भी स्वयं को दोहराता है, मैं कहता हूँ कि यह बार-बार का दोहराना ही तो जीवन है। *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम* – वह तो बार-बार होता है। जन्म लेना, फिर मरना, फिर दुबारा माँ के पेट में आना, यह पुनरावृत्ति तो होगी ही। यह प्रकृति का नियम है और प्रकृति हमेशा रिसाईकलिंग करती है, चक्र में चलती है।

पत्ते आते हैं, झड़ते हैं, खाद बनती है, फिर उसी से नए पत्ते आते हैं। हर साल वही ऋतुएँ आती हैं, जाड़ा, बसंत, गर्मी, बरसात, फिर जाड़ा। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन। यह दुनिया का चक्कर है। पुनरावृत्ति तो सब जगह है। केवल इतिहास में नहीं, जीवन में पुनरावृत्ति है, मौसम में पुनरावृत्ति है। प्रकृति के कलेवर में पुनरावृत्ति है। पानी मेघ बनता है, फिर मेघ से पानी बरसता है। आदमी पैदा होता है, बड़ा होता है, फिर मरता है। यदि यह दुनिया चक्कर है तो इस चक्कर से बाहर निकलें कैसे? उसी चक्कर में जाना पड़ता है। सीधा रास्ता हो तो कहीं से निकल जायें, पर चक्कर से बाहर तो कोई रास्ता है ही नहीं। शंकराचार्य जी कहते हैं, इह *संसारे बहुदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे* – हे प्रभु! बस आपकी कृपा हो तो इसके बाहर निकल जायेंगे।

इतिहास को जब लोग इतिहास के रूप में जानते हैं तो दो साम्राज्यों या दो जातियों के बीच में जो झगड़े हुए होते हैं वे शताब्दियों तक उनके दिमाग में रहते हैं। इसलिए हमारे यहाँ इतिहास को पुराण के रूप में बताया जाता है। तब उसमें वृत्तांत बदल जाते हैं और लोग तब उसे केवल मनोरंजन के लिये लेते हैं।

स्वामीजी, भीष्मपितामह पर अर्जुन ने इतने तीर चलाये, फिर तीरों पर वे इतने दिन लेटे रहे। इसके पीछे कोई गूढ़ अर्थ है या ऐसे ही बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है?

अगर हम दो सौ बड़ी-बड़ी कीलें लेकर तुम्हारे शरीर में घुसा दें, फिर जब निकालेंगे तो मर जाओगे न? किसी पर अगर छुरा मारा जाता है तो जब तक वह डॉक्टर के पास नहीं जाए तब तक छुरा निकालना नहीं। नहीं तो सब खून निकल जायेगा, वह तुरन्त मर जायेगा। छुरा खून को रोकता है। आदमी खून के निकलने से मरता है। किसी की आँत फट गई, किसी का कलेजा फट गया, उससे कुछ नहीं होता है, जब उसका खून सब निकल जाता है तब मृत्यु हो जाती है।

तो इसका मतलब ईसा मसीह निश्चित रूप से सूली पर नहीं मरे थे?

ईसा मसीह की मृत्यु वहाँ नहीं हुई है, पक्की बात है। उनके हाथों में कीलें ठोंकी गईं, यह भी निश्चित है, पर वे मरे नहीं, क्योंकि हाथ और पैर मर्मस्थान नहीं होते। शरीर में जो मर्मस्थान हैं वहाँ पर चोट लगने से आदमी मरता है, मगर जो मर्मस्थान नहीं हैं वहाँ पर चोट लगने से आदमी तब मरता है जब वहाँ से रक्त का प्रवाह नहीं थमता। उन्हें तीन दिन के बाद नीचे लाया गया, जख्म सूख गये थे। जहाँ तक मरने का सवाल है हमने देखा है समाधि वगैरह में नब्ज बिलकुल गायब रहती है। जो जड़ समाधि लगाते हैं, उनमें प्राणायाम से नब्ज एकदम थम जाती है, फिर भी आदमी बाहर निकल आता है। जब उसे ऑक्सीजन मिलती है वह जीवित हो जाता है। कई लोगों को देखा है जो भू-समाधि लगाते हैं, जड़ समाधि लगाते हैं, डॉक्टर लोगों ने उनकी नाड़ियाँ चेक कीं, हृदय चेक किया, बिल्कुल मृत घोषित कर दिया, पर वे दुबारा जीवित हो गए।

इसी तरह ईसा मसीह को भी मृत घोषित करके सैनिक लोग वहाँ से चले गए होंगे। बाद में औषधियों से उनका उपचार किया गया। उन्हें वहाँ से चुपचाप इटली होते हुये ईराक लाये, बाद में वे पूर्व की ओर आए। जब हिन्दुस्तान आये तो कश्मीर से होते हुये आए और वहीं रुक गये। कश्मीर वैसे भी सुन्दर जगह थी। उस समय वे तीन लोग थे जिनका उल्लेख मिलता है। एक तो वे स्वयं, उनकी माता मरियम और मित्र, मेरी मेग्दलीन। ये तीन लोग कश्मीर पहुँचे,



शायद अन्य लोग भी रहे होंगे। श्रीनगर में जो मजार है वह मरियम की मजार है। वह अभी भी है और हमने देखी है। श्रीनगर के बाहर गंदरबल की तरफ एक गाँव है, वहाँ ईसा मसीह की मजार है, जिसे दो नामों से पुकारते हैं – ईसु आसफ और नबी आसफ। उसका रखवाला मुसलमान है, और उसके पास पुलिन्दे हैं जिनमें सब लिखा है। यहाँ तक बात स्पष्ट है।

ये सब बातें सुनने के बाद कई विदेशी विद्वान् वहाँ गए हैं, किताबें छप चुकी हैं, तस्वीरें छपी हैं। उससे पुलिन्दा माँगा है पर वह अपने धर्म का पक्का है, नहीं दिया है। जो कुछ भी जानकारी उपलब्ध हो सकी उसके आधार पर एक पुस्तक 'एक्वेरियन बाईबिल' लिखी गई है, जिसमें क्राइस्ट की पूरी जीवनी लिखी है। बहुत मशहूर पुस्तक है। इस पुस्तक में लिखी सब बातों का पता कैसे चला? कुछ सैलानियों को डेड सी के किनारे गुफाओं में कुछ दस्तावेज मिले जो अरैमाइक भाषा में लिखे हुए थे। उस समय यही भाषा प्रचलित थी और ईसा मसीह उसी भाषा में बोलते थे। जब उन्हें सूली पर चढ़ाया गया तो उन्होंने जो कहा था, 'भगवान, आपने मुझे क्यों त्याग दिया' वह अरैमाइक भाषा में था। यह यहूदियों की स्वाभाविक भाषा नहीं जो आजकल ये लोग बोलते हैं। सैलानियों ने वे दस्तावेज़ जर्मनी में बेच दिये। वहाँ पढ़े-लिखे लोगों

ने उन पर शोध करना शुरू कर दिया। एक विभाग ही खुल गया, 'रिसर्च ऑन डेड सी स्क्रोल्स'। उसका यही नाम है। हम जो बोल रहे हैं उसका आधार ये दस्तावेज़ हैं।

ऐसा कहा जाता है कि ईसा मसीह के जन्मस्थान के नजदीक कुछ पीढ़ियों पहले एसेनी सम्प्रदाय का एक मठ था। उसमें इस सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी और बुजुर्ग लोग रहते थे। ईसा मसीह के पैदा होने के करीब पचास साल पहले वे लोग आश्रम बन्द करके चले गये, आश्रम वीरान हो गया। उसका कोई वृत्तान्त नहीं मिला। ईसा मसीह के पैदा होने के पाँच साल पहले एसेनी सम्प्रदाय के लोग वापस आकर बसे। अब वही थे या दूसरे थे, पता नहीं, मगर वह सम्प्रदाय फिर वहाँ आ गया। ईसा मसीह बचपन से वहाँ जाते थे और उन्होंने वहाँ सब सीखा जो सीखना चाहिए था, मतलब अध्यात्म विद्या। अध्ययन के दौरान एक ऐसा समय आया जब उनके शिक्षकों ने कहा कि इससे ज्यादा हम तुमको नहीं सिखा सकते। अगर तुमको ज्यादा सीखना हो तो भारत चले जाओ, वहाँ इसके ज्ञाता लोग हैं। तब ईसा मसीह भारत आये, कश्मीर पहुँचे। पहले वहाँ अध्ययन किया, फिर वाराणसी गये, वहाँ रहे, अध्ययन किया और पुरी भी गये। उन्होंने पुरी में रथ-यात्रा देखी। अब पुरी की रथ-यात्रा कितनी पुरानी है अन्दाज लगा लो।

वे दस-ग्यारह साल भारत में रहे। एक-दो साल आने-जाने में लगे होंगे और फिर वापस गये इस्रायल। बाईबिल में भी जो वृत्तान्त है उसमें इन तेरह सालों का कोई उल्लेख नहीं है। वे जब यहाँ से वापस गये तो उन्हें सिद्धियाँ थीं – बीमार को ठीक कर सकते थे, मरे हुए को जिला सकते थे, अन्धे को आँख दे सकते थे। फकीर की तरह एकान्त में रहते थे, मौन धारण करते थे, व्रत करते थे, सब लिखा है। चेला बनाते थे, जिसमें हम लोग निपुण हैं।

उन्होंने वहाँ क्या सिखाया? जब वे यहाँ आये उस वक्त यहाँ दो मुख्य विचारधारायें चल रही थीं, एक वैष्णव और दूसरी बौद्ध। बौद्ध धर्म आचार-प्रधान धर्म है और वैष्णव भक्ति-प्रधान धर्म है। उन्होंने वहाँ यही सिखाया। ईसाई धर्म में यही दो चीजें तो हैं। बौद्धों की आचार-संहिता और वैष्णवों की भक्ति-संहिता, जिसमें रामानुजाचार्य जैसे महात्माओं ने भगवान के बारे में कहा है। भगवान दयालु हैं, भगवान की सत्ता के बिना पत्ता भी हिल नहीं सकता, सारा जीवन भगवान के लिये अर्पण करो। वे भी कहते थे कि तुम

चिन्ता क्यों करते हो, भगवान तो हैं न तुम्हें देखने के लिए। बीमार हो, भगवान चाहेंगे तो ठीक होगे, नहीं चाहेंगे तो बीमार रहोगे। वे हर चीज में भगवान को घुसा देते थे। भक्ति तो यही कहती है न? भक्ति में तो खाना-पीना-सोना, सब कुछ भगवान के हाथ में है। जब ईसा मसीह लोगों को यह सब सिखाने लगे तो यहूदी बिगड़े, कहा, 'यह क्या नई चीज सिखाता है, अपना धर्म तो सिखाता नहीं, दूसरों का धर्म सिखाता है।' बस उन्हें दण्ड दे दिया गया। यह काफी लम्बी कहानी है।

भगवान को याद करते समय मन भागता क्यों है?

देखो जी, जब सूर्य निकल आता है तो अन्धकार क्यों भागता है? इसलिए कि दोनों का एक-दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मन तो हमेशा भागेगा ही। अगर तुम यह सोचो कि मन भागे नहीं, स्थिर हो जाए, निश्चल हो जाए, एक जगह टिक जाए तो तुम एक असम्भव बात सोच रहे हो। मन का स्वभाव चंचलता है। जिस तरह हनुमान जी के मन्दिर पर टंगी ध्वजा हवा के रुक जाने पर भी हिलती रहती है, उसी तरह से कितना भी तुम्हारे मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा, द्वेष, आसक्ति खत्म हो जाये, भगवान पर मन लग भी जाये तो भी मन चंचल रहेगा। इसलिये मन को स्थिर करने का प्रयत्न बेकार है। मन से लड़ने का मतलब हुआ कि जैसे एक छोटा बच्चा हाथी की पूँछ को खींचे। भगवान में मन लग जाये, भगवान का नाम लेने में आनन्द आ जाये, भगवान की पूजा में समय कट जाये, यही लक्ष्य होना चाहिये। मन भागता रहे, भागने दो। अरे! जब तुम अपने पति या बच्चों के लिये खाना बनाती हो तो मन एकाग्र होता है क्या? पचास बार तो कुछ-न-कुछ सोचती हो, मगर खाना तो स्वादिष्ट ही होता है और बन भी जाता है। मन के चंचल होते हुये जब खाना स्वादिष्ट बन सकता है, तो वैसे ही मन के चंचल होते हुये भगवान के प्रति प्रेम जागृत नहीं हो सकता है क्या?

आनन्द तो आता है!

तुम दो चीजें चाहो कि आनन्द भी आये और मन भी रुक जाये, यह हो नहीं सकता क्योंकि मन रुकेगा तो आनन्द खत्म हो जायेगा। आनन्द मन की अनुभूति का नाम है। जिस आनन्द के बारे में तुम बोल रहे हो वह मन की

ही अनुभूति है, मन को ही अनुभव हो रहा है। यह मन जो हमशा इधर-उधर भटकता है वह भगवान के नाम में मौज लेता है, आनन्द ले लेता है, यही काफी नहीं है क्या? और जब इतना काफी है तो बाकी की बात मत पूछो।

क्या कारण है कि सतयुग, त्रेता या द्वापर युगों के केवल राम-रावण युद्ध और महाभारत ही हमलोगों को मालूम हैं या प्रसिद्ध हैं? वैसे तो शिव जी ने या देवी जी ने भी इतनी लड़ाइयाँ लड़ीं, फिर वे इतनी प्रसिद्ध क्यों नहीं?

महाभारत की लड़ाई गृहयुद्ध था, और गृहयुद्ध का होना किसी भी राष्ट्र के लिये विध्वंसक हो सकता है। बाहर का आदमी तुमसे लड़े दूसरी बात है, पर घर के अन्दर आपस में लड़ाई हो तो राष्ट्र बिखर जाता है। हिन्दुस्तान की आज जो हालत है उसका कारण है गृहयुद्ध। महाभारत युद्ध के समय अधिकांश राजा कौरवों के साथ थे। बस पांचाल के राजा उनके साथ नहीं थे। जब कौरव हारे तो वे सब लोग देश छोड़कर चले गये। यह तो हमेशा होता है, हर गृहयुद्ध के बाद पलायन होता है। आयरलैण्ड के लोगों को आज भी याद है कि हमारे पूर्वज महाभारत के बाद भाग कर आये थे, वे लोग जानते हैं। ऐसे ही मध्य एशिया, दक्षिण पूर्वी एशिया और अफ्रीका की तरफ भी समुद्र के मार्ग से गये हैं। बहुत बड़ी संख्या में भारत से जन पलायन हुआ। केवल आम जनता का पलायन नहीं, बल्कि विचारकों, लेखकों, कारीगरों, राजनीतिज्ञों, अधिकारियों, वैज्ञानिकों और वैद्यों का बहुत बड़ी संख्या में पलायन हुआ। करोड़ों की संख्या में हिन्दुस्तान से लोग भागे, जो हर गृहयुद्ध में हमेशा होता रहता है। ताजा उदाहरण लो, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के बटवारे में करोड़ों इधर-से-उधर हो गये न?

लोगों को याद दिलाया जाए कि गृहयुद्ध नहीं होना चाहिये, इसलिये महाभारत की कथा को इतना महत्त्व दिया गया है। अन्यथा पुराणों में 18 मुख्य पुराण हैं और 18 उपपुराण हैं। उन सब में तो अनेकों लड़ाइयों का वर्णन आता है। देवताओं और राक्षसों के बीच तो बराबर लड़ाइयाँ होती रही हैं, मगर उनमें हमारे राष्ट्रीय हित की कोई बात नहीं थी। वे लड़ाइयाँ दूसरों की थीं। उनसे हमें कोई मतलब नहीं था। अगर मतलब था भी तो इतना कि जब देवताओं और असुरों के बीच लड़ाई हुई तो दशरथजी को बुला लिया या

मान्धाता को बुला लिया सहायता के लिये। बस इतना ही उल्लेख मिलता है, मगर उसका सीधा प्रभाव हमारे समाज पर पड़ा हो, ऐसा नहीं है। जबकि महाभारत का असर सीधे हमारी सामाजिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था पर पड़ा। शिक्षा देने वाली संस्थाएँ, चिकित्सा करने वाली संस्थाएँ, हमारे समाज में तो कई प्रकार की संस्थाएँ होती हैं, वे सब खत्म हो गईं। जैसे आतंकवाद से पंजाब में गाँव के गाँव टूटे पड़े हैं। जो लोग वहाँ से आते हैं बताते हैं। मन्दिर टूटे पड़े हैं, स्कूलों को तोड़ दिया है। कश्मीर में अपरोक्ष लड़ाई चल रही है, कितने स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी, अस्पताल टूट गये, पूरा सामाजिक ढाँचा ही चरमरा गया। कश्मीर की हालत अच्छी नहीं है। उसको पुनर्जीवित करने के लिये अरबों-खरबों रुपये लगेंगे, दसों साल लगेंगे।

भगवान का अवतरण

जब श्रीकृष्ण का अवतार हुआ तो उन्हें मालूम था कि वे अवतार हैं। उन्हें जो ईश्वरीय आदेश मिला था, वह उन्हें बकायदा याद था। और सुनते हैं कि जब श्रीराम का अवतार हुआ तो उन्हें मालूम नहीं था कि वे अवतार हैं। इसलिये वे सीता जी के अपहरण के समय रोने लगे, उनके विरह में व्याकुल हो गये और उस व्याकुलता से पराभूत होकर उन्होंने रावण का विनाश कर दिया। वहाँ से लौटने के बाद सीता जी की उन्होंने अग्नि परीक्षा भी करवा दी और लोगों के कहने से उनका त्याग भी कर दिया, क्योंकि उन्हें मालूम नहीं था कि वे अवतार हैं।

अवतार प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न दोनों होते हैं, फिर स्थायी और अस्थायी भी होते हैं। नृसिंह का अवतार हुआ, हिरण्यकश्यप का वध किया और गायब हो गये। हर युग में अवतार की आवश्यकता तो पड़ती ही है, किन्तु अवतार विशेष कारणों से ही होते हैं। अब इस युग में क्या कारण है जिसे लेकर कोई अवतार आये? ऐसा तो कोई कारण हमें नहीं लगता। कोई भी विचारक, कोई भी सामान्य व्यक्ति इस बात को देख सकता है कि पिछले पचास वर्षों में धर्म और अध्यात्म में रुचि रखने वालों की संख्या बढ़ी है, घटी नहीं है। मन्दिर में पूजा करने वालों, साधु-महात्माओं के सत्संग में ज्ञान की बात सुनने वालों, कीर्तन-भजन-आत्मचिन्तन करने वालों, दीक्षा और संन्यास धारण करने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है, घटी नहीं है। जब धार्मिक चीजें बढ़ रही हों तो फिर अवतार किसलिये? अब रही बात कि समाज में कुरीतियाँ हैं, बुराइयाँ हैं, आचारहीनता

है, संस्कारहीनता है, यह सब मानते हैं, परन्तु क्या आप यह नहीं देखते कि पिछले पचास वर्षों में इनके विरोध में आवाज अधिक उठी है। कानून में व्यापकता आ रही है। लोगों की राजनैतिक विचारधारा में व्यापकता आ रही है।

पहले एक बेईमान को बुरा माना जाता था, आज बेईमान एक उपाधि है?

पहले के जमाने में कोई बेईमानी नहीं करता था। सभी जरूरी चीजें बहुत सस्ती थीं, पैसा महँगा था, पर पैसे को तो कोई नहीं खाता। आदमी तो दाल-चावल खाता है, कपड़ा पहनता है, रुपया तो नहीं पहनता। आज रुपया सस्ता हो गया तो चीजें महंगी हो गई हैं। इस वजह से आदमी में बेईमानी परिस्थितिवश हुई है, उसके संस्कारवश नहीं हुई है। आप संस्कारों के कारण बेईमान नहीं हैं। परिस्थितियों ने आपको बेईमान बनाया है। आप झूठ नहीं बोलते हैं, न बोलना चाहते हैं, मगर परिस्थितियाँ आपसे झूठ बुलवा रही हैं। ये परिस्थितियाँ समाज की देन हैं जो समाज के बदलने से बदल सकती हैं। और समाज को बदलने के लिये अवतार का आना ऐसा ही है जैसे कि हाथी से हल चलवाना या मच्छर को तोप से मारना।

हाँ, आज अवतार आए तो केवल एक वजह से। आज आदमी भक्त हो गया है, मन्दिर में भी जाता है, सत्संग में भी जाता है, पूजा-पाठ भी करता है, उसको भगवद्-कृपा भी प्राप्त होती जाती है, मगर उसके मन में एक सन्देह है – क्या सचमुच में भगवान है? मनुष्य के मन में ईश्वर के अस्तित्व के प्रति कणमात्र भी सन्देह नहीं होना चाहिये। जैसे नींबू की एक बूँद सारे दूध को फाड़ देती है वैसे अविश्वास की एक बूँद मनुष्य के सारे विश्वासों के महल को गिरा देती है। इसलिए ऐसे समय में अवतार की आवश्यकता है, और यह भी सच है कि हर युग में अवतार आते हैं। दो साल पहले गणेश जी ने दूध पीया था। अब गणेश जी हिन्दुस्तान में दूध पीते तो मान लेते कि हिन्दुस्तानी गणेश जी दूध पी रहे हैं। पर मेरे पास तो ढाई सौ फैक्स आये, टेलिफोन पर टेलिफोन आये। पहले तो मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। पहले दिल्ली से, फिर धनबाद, कलकत्ता, इंग्लैण्ड, जर्मनी, अर्जेन्टीना से खबर आई कि गणेश जी दूध पी रहे हैं! यह घटना ऐसी ही है जैसे ईसा मसीह के जन्म के समय आसमान में तारे का चमकना या बुद्ध के अवतार लेते समय कमलों का खिलना। राम जी के वक्त तो *'जा दिन तें हरि गर्भहिं आए, सकल लोक*

सुख संपति छाए।' जब भगवान राम माता के गर्भ में आए तो सारे संसार में सुख और कुशल-मंगल था।

हर अवतार के वक्त एक लक्षण की उत्पत्ति होती है। गणेश जी का दूध पीना एक सूचना है, संकेत है। हमारे शास्त्रों में लिखा है *'कलौ चण्डीविनायकौ'*, कलियुग में चण्डी और विनायक ही मुख्य देवता हैं और वही लक्षण हम देख रहे हैं। अब आप लोग निश्चित जान लीजिये कि अवतार हो चुका है। परन्तु हाँ, इस युग में अवतार तो पिछड़ी जाति में ही होगा। कायस्थ और ब्राह्मण तो भूल जाइये, होगा पिछड़ी जाति में ही। आज अगर उच्च जाति में अवतार होगा तो अधिकांश लोग उसकी बात नहीं सुनेंगे। बोलेंगे, ये ब्राह्मण लोग फिर घमण्ड का चर्खा चला रहे हैं। आज पिछड़ी जातियाँ मुखर होती जा रही हैं। मैं किसी जाति विशेष का पक्षधर नहीं हूँ, मैं यथार्थ बात बोलता हूँ। अखबार की तरह बोल देता हूँ आपको। ये जातियाँ मुखर हो रही हैं। हजारों साल तक इनका डी.एन.ए. दबाया गया था, पर अब उनका डी.एन.ए., उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हो रही है। बहुत कुशाग्र और प्रतिभाशाली लोग निकलेंगे इनमें।

लेकिन कहा गया है कि भगवान अवतार लेंगे तो ब्राह्मण के यहाँ लेंगे।

हाँ, ऐसे बहुत उल्लेख हैं। अनेक नाम आये हैं, हर पुराण में अलग-अलग हैं, पर अब उन चीजों को समझना बहुत मुश्किल है। सच में देखा जाये तो फिर ब्राह्मण की भी परिभाषा हमें तय करनी पड़ेगी। ब्राह्मण किसी जाति को कहते हैं या गुण को कहते हैं या यह कोई योग्यता है? आखिर ब्राह्मण शब्द मूलतः ब्रह्म से निकलता है – जो ब्रह्म को जाने सो ब्राह्मण। 'ण' प्रत्यय ज्ञान से संबंध रखता है और ब्रह्म का मतलब होता है वेद। प्राचीन काल से ब्रह्म शब्द वेदों से तात्पर्य रखता आया है। उस समय तीन वेद थे तो त्रिवेदी तीन वेद को जानने वाला था। तीन वेद को जो जाने उसकी उपाधि है ब्राह्मण। चार वेद हुये, चतुर्वेदी हुये तो चार वेदों को जो जाने वह ब्राह्मण। और केवल वेद ही नहीं, उसे संहिताओं, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, अरण्य ग्रन्थों का, श्रुति और स्मृति दोनों का ज्ञान हो तो वह ब्राह्मण होगा। तो ब्राह्मण यहाँ पर योग्यता हो गई, यह जातिगत तो रहा नहीं। यदि ब्राह्मण की यह परिभाषा मानी जाए कि वह वेदों का ज्ञाता है, तब तो वह जाति तक सीमित नहीं रहा। कोई भी वेदों का पण्डित हो तो वह ब्राह्मण ही है।

शास्त्रों में दो शब्दों का इस्तेमाल किया गया है, ब्रह्मश्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ। अब ब्राह्मण को दो भागों में बाँटा है। जिसको वेदों का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त हो गया हो, उसे प्रोफेसर कहिये। वह जानता है, बातचीत कर सकता है, सब उपनिषदों के बारे में बोल सकता है, सिखा-पढ़ा सकता है, तर्क कर सकता है, वह हुआ ब्रह्मश्रोत्रिय। अब ब्रह्मनिष्ठ किसको कहते हैं? वेदों में जगह-जगह पर कहे हुए उस परम तत्त्व में जिसकी आत्मा टिक गई हो वह ब्रह्मनिष्ठ है, अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ वह है जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है। जो आदमी वेदों का पण्डित हो और वेदों में जो अध्यात्म ज्ञान है, उसका भी उसे अनुभव हो, अपरोक्ष अनुभूति हो वह ब्राह्मण है।

अब यदि यह ब्राह्मण की परिभाषा है तो तुम उसको जाति की सीमा में बाँधकर मत रखो, जाति की सीमा से हटा दो। सर जॉन वुडरॉफ या मैक्समूलर, इन्होंने तो ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं लिया। ऐसे अनेक नाम बता सकते हैं जिन्होंने वेदों और उपनिषदों पर टीकाएँ लिखी हैं। एनी बेसेन्ट, लेडबीटर या कर्नल ऑलकॉट ने किस ब्राह्मण घर में जन्म लिया था? मगर वे ब्राह्मण थे। यहाँ पर ब्राह्मण की परिभाषा उदार होनी चाहिये, संकीर्ण नहीं।

परमात्मा आखिर कहाँ उतरेंगे? कमल तो कीचड़ से ही उठता है न? उसी प्रकार अवतार रूपी कमल कीचड़ से भी निकल सकता है। अब सवाल यह उठता है कि जिन जातियों को हम पिछड़ी जातियाँ कहते हैं उनमें दोष क्या



हैं? बल्कि दोष तो समाज के उच्च वर्गों में देख सकते हैं। हमारे चारों ओर कोई बड़ी जाति के लोग नहीं हैं, मजदूर हैं, चमार हैं, रमानी इत्यादि हैं। पर नियम के पक्के हैं, रीतियों में पक्के हैं। उन्नीस-बीस भी मुश्किल है यहाँ। सामाजिक व्यवस्था में कहीं गलती हो गई तो समझौता नहीं करते हैं। यहाँ पिछड़ी जातियों में उन्नीस-बीस का भी समझौता सम्भव नहीं है। विवाह की मर्यादाएँ, त्याग की मर्यादाएँ, शील की मर्यादाएँ, बहुत-सी मर्यादाएँ हमने देखीं जो अनुकरणीय हैं। आप लोगों ने भी अनुभव किया होगा। फिर किसी आदमी को जाति के बल पर क्यों परखते हो? मनुष्य को उसके गुणों से परखा जाता है। अगर वह आदमी गुणी है और यदि उसने मेहतर या निषाद कुल में जन्म लिया है तो उसको फेंक दोगे क्या? अगर तुम्हारा यही दर्शन है तो हम उसको स्वीकार नहीं करते हैं। कल अगर तुम्हारी हीरे की अंगूठी टॉयलेट में गिर जाये तो फ्लश कर दोगे क्या? जैसे तुम उसको फ्लश आउट नहीं करते हो, उसी तरह से समाज में गुणी आदमी को फ्लश आउट नहीं करना चाहिये। और कलियुग में भगवान वहीं जन्म लेंगे।

अब भगवान का अवतार होगा तो वह सन्देह भक्ति को खत्म करने के लिये होगा?

हाँ, मनुष्य के मन में भगवान के प्रति सच्ची भक्ति जागे, क्योंकि कलियुग की महिमा त्याग, तप, ब्रह्मचर्य या यज्ञ नहीं है। कलियुग में केवल दो बातों का महत्त्व है, जिसे सब धर्मों ने एक स्वर में स्वीकार किया है – भगवान के प्रति अटल भक्ति और दूसरे व्यक्ति की थोड़ी मदद। तीसरा रास्ता नहीं है। योगासन-प्राणायाम तो हम लोग करते हैं समय व्यतीत करने के लिए। नहीं तो मन में बड़ी अपराध की भावना रहती है, कुछ नहीं किया, कुछ नहीं किया। इन विधियों से कुछ होता नहीं जी। चाहे दस घण्टे ध्यान में बैठो, पर यह मनवा बात मानेगा नहीं। कुत्ते की पूँछ कभी सीधी होने वाली नहीं है। भजन, पूजन, आसन, प्राणायाम, नादयोग जो भी करना है जरूर करो, वह केवल समय व्यतीत करने के लिये है, अपने मन के अपराध भाव को हटाने के लिये है। असली चीज है भगवान के प्रति भक्ति।

मैं पूजा-पाठ की बात नहीं बोल रहा हूँ, श्रद्धा की बात कर रहा हूँ। मान लो मैंने अपने पिता को नहीं देखा। जब मैं माँ के गर्भ में था तभी मेरे पिताजी

की मृत्यु हो गई। मेरी माँ कहे कि तुम्हारे पिता थे तो मुझे सन्देह होगा क्या? नहीं होगा। उसको कहते हैं सहज श्रद्धा, अटूट श्रद्धा।

इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं। एक तो यह कि सारे जीवन के निर्देशक ईश्वर हैं। सब कुछ उनके अधीन है। सब कुछ वही करते हैं। ईश्वर को ही अपना मुख्य सूत्रधार मानना। यह अभी इन्सान नहीं कर रहा है क्योंकि उसके दिमाग में पुरुषार्थ नाम की जंग चढ़ी हुई है। उसमें अहंकार है। मनुष्य को केवल भक्ति के प्रति जाग्रत करने के लिये, उसके श्रद्धा-विश्वास को जगाने के लिये ही ईश्वर का जन्म होगा। श्रद्धा-विश्वास ही तीसरी आँख है। उसके बिना भगवान अगर तुम्हारे पॉकेट में भी हों तो तुम्हें पता नहीं चलता है। पॉकेट में हाथ डालते भी हो तो तुम्हारे हाथ में ही नहीं आते हैं क्योंकि श्रद्धा-विश्वास नहीं है। तुलसीदास जी ने भी कहा है –

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

अपने अन्दर छिपे हुये ईश्वर को सिद्ध लोग भी नहीं देख सकते हैं। उन्हें देखने के लिये श्रद्धा और विश्वास जरूरी हैं, जो शिव और पार्वती के प्रतीक हैं। उस श्रद्धा और विश्वास को जगाने के लिये भगवान का अवतार इस युग में संभव है। ऐसा नहीं सोचना कि सब भ्रष्ट मन्त्रियों को मारने के लिये आ रहे हैं, या अमेरिका को दण्ड देने के लिये आ रहे हैं, या पाकिस्तान को दण्ड देने के लिए आ रहे हैं। वह सब नहीं होगा। इस कलियुग में भगवान की महिमा केवल भक्ति को जाग्रत करके सन्देह रूपी राक्षस को नष्ट करने के लिये होगी। यदि आपका सन्देह नष्ट हो जाए, मेरा सन्देह नष्ट हो जाए और जीवन भक्तिमय हो जाए तो हमारा जीवन तो परम आनन्दमय हो जायेगा।

अभी भगवान में हमारी श्रद्धा नहीं है। जितना महत्त्व हम पैसे को देते हैं उतना भगवान को नहीं देते। बल्कि भगवान की पूजा भी पैसे के लिये करते हैं। भगवान की पूजा आखिर क्यों करते हो? अर्थ और काम के हेतु। मन्दिर जाते हो अर्थ और काम के हेतु। सन्त-महात्मा का चेला बनते हैं, तीर्थ यात्रा, दान-धर्म क्यों करते हैं? अर्थ और काम के हेतु। अर्थ और काम ही हमारे जीवन का हेतु है जबकि वास्तव में हमारा हेतु होना चाहिये भक्ति।

– 24 मार्च 1998, रिखियापीठ



अध्याय 19

मैं युद्ध, शांति और सामाजिक हिंसा जैसे विषयों पर शोध कर रही हूँ। चाहे वह सर्बिया हो या अफगानिस्तान या हिंदुस्तान, सब तरफ हिंसा बढ़ती हुई दिख रही है। इसका समाधान कैसे और कहाँ मिल सकता है?

इसका उत्तर तो बहुत सरल है। हम अपना स्वधर्म खोजने की बजाय पाश्चात्य जगत् से प्रेरणा ले रहे हैं। अगर अपनी भिन्नताओं के कारण मैं और तुम साथ नहीं रह सकते तो शांति कभी नहीं आएगी। समझ के बिना शांति आ ही नहीं सकती। दूसरे को समझना ज्ञान की चरम पराकाष्ठा है। पाश्चात्य जगत् में आखिर क्या है? दूसरों के आचार-विचार, दूसरे की तहजीब, दूसरे की संस्कृति, दूसरे की भाषा, वे पनपने ही नहीं देते हैं। उनका पूरा समाज एक जैसा होता है। सब अंग्रेजी ही बोलेंगे या सारा काम फ्रेंच में ही होगा। हिन्दुस्तान में हमेशा से दूसरे के रीति-रिवाजों को, दूसरे की जुबान को, दूसरों के कपड़े पहनने के तरीके को, उसके कानूनों को, उसके नृत्य और संगीत की प्रणाली को, उसकी पूजा-पाठ की प्रणाली को न मानते हुए भी स्वीकार किया गया।

उत्तर भारत में पूर्णमासी को सब शुभ कर्म होते हैं। हिंदुओं की बात बोल रहा हूँ। दक्षिण भारत में सब अमावस्या को होते हैं। अगर कोई पूछे कि क्यों होते हैं अमावस्या को, तो भारतीय लोग बोलेंगे, 'क्या मालूम, पर होने दो न! अपने को उससे क्या फर्क पड़ता है!' अब इस बात के लिए हम झगड़ें क्या? नहीं, वहीं से अमन की मौत होती है। अमन की मौत की केवल एक वजह है। मुल्कों को दूसरे के विचारों के प्रति समझ नहीं होती। यह जरूरी नहीं कि आप ईसाई धर्म की तरह प्रार्थना करें या हिन्दू धर्म की तरह प्रार्थना

करें, या मूर्ति पूजा करें, या पुनर्जन्म माने, या भरतनाट्यम् को पसन्द करें, या पाश्चात्य नृत्य को पसन्द करें – आप जो करते हैं, वह आपका निजी मामला है। मगर मनुष्य का एक सामाजिक चेहरा भी होता है। मेरा भी है, सबका है। उस सामाजिक चेहरे में मैं दूसरों के साथ अड़ जाता हूँ, और जब दूसरों के साथ अड़ता हूँ, बस वहीं से नादानी शुरू होती है। यह नादानी हिंदुस्तान में इसलिये शुरू हुई क्योंकि आज हमें पश्चिम से इंजेक्शन मिलते हैं।

समाज में भाषा, धर्म और संस्कृति जैसी बहुत-सी चीजें हैं जो हमें ठीक से समझनी पड़ेंगी। अब संस्कृति एक ऐसी चीज है जो इंसान-इंसान में अलग होती है। बाप और बेटे की संस्कृति में अन्तर होता है, उनके शौक में फर्क होता है। पति-पत्नी, जिनका रिश्ता आप लोग जन्म-जन्म का मानते हो, उनके शौक में फर्क होता है। जुड़वा भाइयों की संस्कृति में अन्तर होता है, उनके शौक में फर्क होता है। जब हर इंसान एक-दूसरे से अलग है तब इसके लिए दो ही तरीके हैं – या तुम उस फर्क को उजागर करो और आपस में लड़ो या उस फर्क को नजर अंदाज करो और मजे में रहो। तुम्हें मांसाहारी भोजन खाना है तो तुम खाओ। हमें शाकाहारी खाना है, हम शाकाहारी खायेंगे। फिर ऐसा क्यों कि तुम हमेशा हमें गाली देते रहते हो और हम तुम्हें? एक छोटी-सी बात पर झगड़ा हो जाता है।

शान्ति का मार्ग

शान्ति का यही तरीका है कि लोग एक-दूसरे को समझें और स्वीकार करें, जिसे पाश्चात्य जगत् को सीखना पड़ेगा। हमने वहाँ कई जगह असहिष्णुता को देखा। हम सारायेवो कई बार जा चुके हैं, सबसे पहले हम गये थे जब हम स्विट्ज़रलैण्ड में थे। यूगोस्लाविया भी जाते रहते थे। हमें सब चीज अजीब लगती थी, एकदम अजीब। लेकिन अब पश्चिम में एक वर्ग पैदा हो रहा है जो युवा है, 20-25 साल के अन्दर। यह वर्ग नई विचारधारा रखता है। सफेद बाल वालों या 35-40 साल के लोगों की बात नहीं बोलता हूँ, जो 20-25 साल के लड़के-लड़कियाँ हैं उनके विचारों में परिवर्तन आ गया है। वे लोग कहते हैं कि अगर कोई पुनर्जन्म मानता है तो मुझे क्या फर्क पड़ता है और यदि कोई पुनर्जन्म नहीं मानता तो भी मेरे को क्यों फर्क पड़ना चाहिए? पुनर्जन्म के आधार पर तुम्हारे और हमारे बीच झगड़ा हो जाए, यह तो अच्छी चीज

नहीं है। कोई विष्णु जी की मूर्ति की पूजा करता है, कोई अद्वैत निराकार की उपासना करता है। अब इस वजह से हमारे बीच झगड़ा हो जाये तो कितनी फालतू चीज है। तुम्हारे विष्णु की उपासना करने से, तुम्हारे पुनर्जन्म मानने से, तुम्हारे संन्यास लेने से, तुम्हारे बालों का मुण्डन करने से मेरे को क्या फर्क पड़ता है? आखिर मुझे तुम्हारी इतनी फिक्र क्यों लगी हुई है।

इस देश में ऐसा नहीं है। सिर से लेकर नीचे तक बदन ढकने वाली संस्कृति नंगे साधुओं को भी स्वीकार करती है, उनकी पूजा भी कर लेती है। संन्यासियों में जो अवधूत होते हैं, नागा होते हैं, उनके महिला प्रतिरूप को भैरवी कहा जाता है। कुम्भ मेला में आप देखियेगा, एकदम नंग-धड़ंग रहती हैं। हम लोगों ने उसको भी स्वीकार किया है। अब यह संस्कृति कहाँ से आई है, वह तो हम नहीं कह सकते। आसाम से आई या दक्षिण एशिया से आई कि अफ्रीका से कि सिक्किम से कि ईरानियों के साथ आई, वह हमें मालूम नहीं, मगर है यहाँ।

जब तुम राष्ट्र को एक परिवार कहते हो तो उस परिवार को एक तरह से व्यवहार करने को मत बोलो, क्योंकि इस परिवार में, इस मुल्क में, या दुनियाभर में लोग इतिहास के दौरान कई जगहों से आये हैं। जैसे अमेरिका में कई जगह से गये हैं, चीन में कई जगह से गये हैं, वैसे हिन्दुस्तान में भी कई जगह से आये हैं। यहाँ या तो किसी जमाने में अवसर खोजते आये, क्योंकि यह तो सोने की चिड़िया थी या फिर राजनैतिक उत्पीड़न से भागकर आये या



किसी और वजह से आए। पारसी लोग आये, मुगल लोग आये, तुर्क लोग आये, अफ्रीका से लोग आये, दक्षिण पूर्व एशिया से लोग आये, नेपाल-भूटान से लोग आये, अपनी-अपनी जगह बसा लिये गए। राजाओं ने कहा, रहो यहाँ, जमीन जोतो और खाओ। उनके रीति-रिवाजों पर न तो राजा ने हस्तक्षेप किया और न ही जनता को हस्तक्षेप करने दिया। जब तक जन मानस तैयार नहीं किया जाता, तब तक किसी भी रीति-रिवाज को बदल नहीं सकते हो।

आज यूरोप के लोग चाहते हैं कि वहाँ मंदिर बनें, भारत के साधु लोग आकर आश्रम चलायें, संस्कृत सिखायें, दर्शन सिखायें। कई लोग संन्यास लेना चाहते हैं, पर वहाँ का समाज और सरकार तैयार नहीं है। स्पेन में बहुत-से साधक हैं जिनको हमने संन्यास दिया है, पर वे एफीडेविट करके अपना नाम नहीं बदल पाते हैं। आपकी चाहे इस्लाम में श्रद्धा हो या वैदिक धर्म में या ईसाई धर्म में या आचार्य रजनीश पर, हरेक को अपना रास्ता तो खुद ही चुनना पड़ेगा। राजा कैसे तुम्हारे लिए रास्ता चुन सकता है? समाज में राजा और प्रजा का काम है कि दूसरे के रीति-रिवाजों को समझकर व्यवहार करें। शान्ति का इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

पहले दूसरे के धर्म को आदर देना होगा, और किसी मुल्क में एक मजहब नहीं हो सकता। आज के जमाने में, जबकि सामाजिक व्यवहार इतना बढ़ रहा है, कोई देश एक धर्म पर आधारित नहीं हो सकता, चाहे वह मध्य एशिया हो या हिन्दुस्तान, चीन, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी या अमेरिका। जो सार्वभौमिक धर्म की बात करते हैं, वे गलत कहते हैं। जैसे लोगों के रंग, कद-काठी, भाषायें, खाने के तरीके, कपड़े पहनने के तरीके अलग हैं, उसी तरह भगवान के पास पहुँचने के रास्ते भी अलग हैं। तुम देवघर आये हो। कलकत्ता से नहीं बल्कि पटना से होते हुए आये हो। पर कलकत्ता वाले आदमी को अगर यहाँ पहुचना होगा तो क्या पटना होते हुए आयेगा? लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक रास्ता नहीं है, जितने आदमी उतने रास्ते। शिव महिम्नः स्तोत्र में एक पंक्ति आती है, बहुत सुन्दर है। पुष्पदंत कहता है – *रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां, नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव* – अपनी रुचियों की विचित्रता अलग-अलग होने की वजह से लोगों के रास्ते सीधे-टेढ़े कई तरह के रहते हैं। मनुष्यों का गन्तव्य एक है। जहाँ उसको पहुँचना है, वह जगह एक है। जैसे सारी नदियाँ बहती हुई अन्त में समुद्र में ही मिलती

हैं, उसी तरह से किसी भी धर्म का सच्चे दिल से पालन करने वाला आदमी ईश्वर के पास ही पहुँचेगा, दूसरी जगह नहीं पहुँचेगा।

यह जो आपने कहा कि हिन्दुस्तान जैसे देश में असंतुलन हो रहा है, इसका मुख्य कारण यही है कि हिन्दुस्तान के लोगों ने अपनी संस्कृति पर आस्था रखना छोड़ दिया और यूरोप के तरीके से सोच रहे हैं। यूरोपी तरीका है लड़ाई का। पिछली शताब्दियों में उन्होंने दो बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं जिसमें करोड़ों लोग मरे हैं। लाखों औरतें विधवा हुई हैं, लाखों बच्चे अनाथ हुए हैं।

शांति और सामंजस्य के लिए सबसे पहले हिन्दुस्तान में हरेक आदमी को टॉलेरेंट बनाना पड़ेगा, उदार और सहिष्णु बनाना होगा। केवल मजहब के मामले में नहीं, हर मामले में। उदारता और सहिष्णुता का कोई विशेष दायरा नहीं होता। पति-पत्नी के बीच सहिष्णुता का क्षेत्र धर्म थोड़े ही होता है। बाप-बेटे में सहिष्णुता का क्षेत्र मजहब थोड़े ही होता है। दूसरे की बात जो अपने को समझ में नहीं आये, उसको समझना, उसको कहते हैं टॉलेरेंस, सहिष्णुता। मुझे लगता है कि शान्ति का यही एक रास्ता है जो महापुरुषों ने आदि काल से यहाँ बनाया है।

अपने ही देश में आप अच्छी तरह से देखो, कितनी भिन्नता है। भाषाओं की भिन्नता तो जानी जाती है, शक्ल और भोजन में भी भिन्नता है। मद्रासी आदमी रोटी नहीं खा सकता है। हमारे यहाँ जो उड़िया रसोइये आते हैं, वे हमलोगों के लिए रोटी बनाते हैं, पर अपने लिए भात बनाते हैं क्योंकि रोटी नहीं खा पाते हैं। इतनी भिन्नता है यहाँ। अब उसके लिए एक-दूसरे को गाली दें, वह नहीं होना चाहिये।

क्षेत्रवाद बनाम संघवाद

हमारे देश में हमेशा सीमित क्षेत्र को ही लेकर शान्तिपूर्वक शासन चला है। भारतवर्ष में अनादि काल से, जब से हमने पुराण-इतिहास पढ़े हैं, प्रथा यही थी कि हर एक क्षेत्र स्वतंत्र था, उसकी अपनी सेना थी, उसके अपने कायदे-कानून थे, उसकी अपनी ज़ुबान थी, उसकी अपनी सीमा थी, किन्तु वह एक चक्रवर्ती को अपना राजा मानता था। सम्राट् को चक्रवर्ती कहते थे। वह चक्रवर्ती जब मरता था तो जो उसकी गद्दी पर बैठता था, उसे इन लोगों के पास जाकर स्वीकृति लेनी पड़ती थी कि हाँ, मैं चक्रवर्ती हूँ। उसे आप अश्वमेध यज्ञ कहो

या राजसूय यज्ञ कहो, पर मुख्य बात यही थी। जैसे रामचन्द्र या दशरथ केवल अयोध्या चलाते थे, अवध उनका राज्य था। वहाँ उनका कानून था, टकसाल थी, सेना थी, सब कुछ उनका था। वे उतने के राजा थे, बाकी से उनको कोई मतलब नहीं था। बाकी के वे राजा नहीं, सम्राट् थे। वहाँ वे शासन नहीं करते थे, केवल अयोध्या में शासन करते थे। किन्तु बाकी सब लोग अयोध्या को अपना चक्रवर्ती मानते थे।

अब यह क्षेत्रवाद ही तो है। क्षेत्रवाद में सबसे बड़ी चीज क्या होती है? प्रतिभा की जागृति। अगर तुम मुझे स्वतंत्र रूप से चलने दोगे तो मैं अपनी पूरी योग्यता का प्रतिपादन करूँगा, लेकिन मुझे दबाकर रखोगे और बोलोगे, देख बेटा, तू ऐसे ही कर, तब तो मैं तुम्हारे साँचे में ढल जाऊँगा, अपनी प्रतिभा जागृत नहीं कर सकता। क्षेत्र को अपनी प्रतिभा जागृत करनी चाहिए और उस प्रतिभा को जागृत करने के लिए उस क्षेत्र को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। हाँ, जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा का सवाल है, उसे चक्रवर्ती पर छोड़ देना चाहिए, भारत सरकार पर छोड़ देना चाहिए। वहाँ तक मैं तुम्हारे साथ हूँ, मगर जहाँ तक क्षेत्रीय विकास का सवाल है, केन्द्रीय शासन से क्षेत्र का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। यह सिद्धांत केवल देश और राज्य के स्तर पर ही नहीं, छोटी-मोटी संस्थाओं के स्तर पर भी वैध है। हम अपनी ही बात बोलते हैं। हमने इतनी उन्नति क्यों की? इसलिए कि हमने सब आश्रमों को स्वतंत्र किया हुआ है। कोई मेरे अधीन नहीं है। स्वीडन का आश्रम वहाँ का स्वामी चलाता है, दूसरी जगह का कोई और चलाता है। वहाँ कितना पैसा आता है, क्या करते हैं, उससे मेरे को कोई मतलब नहीं है। फेल हो गए तो तुम फेल हो गए, हमको उससे क्या मतलब?

हर क्षेत्र की अपनी विशेष प्रतिभा होती है। तमिलनाडु के लोग अपनी प्रतिभा रखते हैं, आन्ध्रप्रदेश के लोगों की अपनी अलग प्रतिभा है, बंगालियों, राजस्थानियों, मैथिलियों, भोजपुरियों, पंजाबियों, गुजरातियों सबकी अपनी प्रतिभा है। घर-परिवार को ही देख लो। किसी बाप में यह क्षमता नहीं होती कि अपने चारों बेटों को प्रतिभावान् बना सके। बाप के लिए यही तरीका है कि 'बेटा अब तुम अपनी प्रतिभा का विकास खुद करो। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ, मेरे से जो मदद होगी माँग लेना, मगर अब तुम अपने रास्ते चलो।' उसमें एक बेटा वैज्ञानिक निकल जाएगा, एक बेटा बहुत बड़ा प्रशासक बन जाएगा, एक बेटा उद्योगपति निकल जाएगा। जिस तरह से हम अपने बच्चों

को पूर्ण स्वतंत्रता देने के लिए कहते हैं, उसी तरह से क्षेत्र हमारे बच्चे हैं, और क्षेत्रीय स्वतंत्रता भारत की उन्नति के लिए आवश्यक है। जो भी देश उन्नति करना चाहता है, उसे अपने क्षेत्रों को स्वतंत्रता देनी चाहिए। केवल सुरक्षा के मामले में उन सबको एक जगह पर रहना चाहिए। जब कभी युद्ध होता था, उनसे परामर्श लिया जाता था, तब सब लोग इकट्ठा होकर उसका सामना करते थे। यह बात स्पष्ट है कि जब तक भारत में क्षेत्रीय स्वतंत्रता थी, भारत संसार पर राज करता था। अन्न की उत्पत्ति होती थी, सोने की उत्पत्ति होती थी। *गायन्ति देवा किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत-भूमि-भागे* – देवता लोग भी गाते थे कि हे भारत भूमि, तुम धन्य हो!

गड़बड़ कब हुई? मैं तुमको बतलाता हूँ। इतिहास में चन्द्रगुप्त के समय ऐसी परिस्थिति आ गई थी कि उसने सबको एक संघ में मिलाना शुरू कर दिया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की मदद से अखण्ड भारत को पुनः परिभाषित किया। धीरे-धीरे चन्द्रगुप्त सबको मिलाता गया। फिर उसका पोता आया अशोक, जो दक्षिण के एक छोटे से भाग के अलावा पूरे देश का शासक बन गया। उसके बाद वह गड़बड़ को संभाल नहीं सका। चन्द्रगुप्त तो भागकर कर्नाटक में जैन साधु बन गया था और अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उसने तो इतनी बड़ी गलती की जो हिंदुस्तान में कभी नहीं हुई थी। राष्ट्र या सरकार का कोई धर्म नहीं होता। सरकार हमेशा धर्म-निरपेक्ष ही रहनी चाहिए। किसी धर्म के साथ उसका कोई पक्षपात नहीं होना चाहिए। न्यायपालिका का, संसद का, प्रशासन का धर्म के साथ कोई सम्बंध नहीं होना चाहिए। अशोक ने बौद्ध धर्म को राष्ट्र-धर्म स्वीकार किया। उसके बाद मुगल आये, उन्होंने भी इसी परम्परा को जारी रखा।

अशोक के बौद्ध धर्म में जाने की वजह राजनैतिक थी, क्योंकि कलिंग में भयंकर नरसंहार हुआ था, लाखों लोग मरे। मतलब लाखों घर बर्बाद हुए, लाखों औरतें विधवा हुईं, लाखों बच्चे अनाथ हुए। अर्थव्यवस्था पर असर पड़ा, राजनैतिक चितंन पर भी इसका असर पड़ा होगा। आखिर अशोक की राजनैतिक परिषद् भी थी। तब जाकर अशोक को अहिंसा का मार्ग स्वीकार करना पड़ा। वह खुद संभाल नहीं सका। उसके पास कोई विकल्प नहीं था। बौद्ध धर्म को स्वीकारना अशोक का राजनैतिक निर्णय था, व्यक्तिगत निर्णय नहीं। राजनैतिक और व्यक्तिगत निर्णय में अंतर होता है।

ग्राम उद्योगों का महत्त्व

सामाजिक हिंसा के बढ़ने का एक और कारण है, भारी उद्योग बनाम कुटीर उद्योग। गाँधीजी की भाषा में इन्हें ग्राम उद्योग कहते हैं। गाँवों में अगर हर आदमी को कुछ उद्योग मिल जाये तो दो-ढाई रोटी तो खा ही लेगा। जिस आदमी को दो-ढाई रोटी के लिए कुछ मेहनत करनी पड़ती है, अनुपात के अनुसार उस आदमी को हिंसा के लिए समय नहीं मिलता। हिंसा के लिये समय उन्हीं लोगों को मिलता है, जिनके पास काफी फुर्सत है।

एक बात और है। भारी उद्योगों से एक मिडिल क्लास का, मध्यम वर्ग का जन्म हो रहा है, जो जानता कम है, पर बोलता ज्यादा है, और जो कुछ भी बोलता है, उसमें सार नहीं है। चाहे वह वैचारिक स्वतंत्रता की बात बोले, चाहे मानवाधिकार की, वही बोलता है जिसे उसने किताबों में पढ़ा है। मध्यम वर्ग भारी उद्योग के कारण ही जन्म ले रहा है, जबकि ग्राम उद्योगों में हमलोगों ने रुचि नहीं दिखाई। यह आंदोलन अब ठंढा पड़ गया है। गाँधीजी ने इस पर काफी जोर दिया था और कुछ अच्छा काम हुआ भी था, पर वह अब ठंढा पड़ गया है जिसके कारण हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी जनसंख्या आज कष्ट-पीड़ित है। जो कुछ भी विकास हिन्दुस्तान में हो रहा है वह गिने-चुने शहरों में ही हो रहा है, जिसका यहाँ गाँव-देहात में कोई मतलब नहीं है। ग्रामीण वर्ग की उपेक्षा हुई है।

जब शान्ति की बात कही जाती है तो इस बात पर जोर देना पड़ेगा। हिंदुस्तान में सरकार और संस्थाओं को गाँवों में उसी तरह से काम करना होगा जैसे दिल्ली, बैंगलोर, पुणे, हैदराबाद, कलकत्ता या पटना में काम करते हैं। मगर होता नहीं है। उसके पीछे सीधा-सा कारण है। जब उद्योग धन्धों में पैसा लगाया जाता है, तो मुनाफ़ा बहुत आता है। वह मुनाफ़ा राष्ट्र को भी आता है, मंत्रियों और अफसरों को भी आता है, और यहाँ गाँवों में अगर निवेश करेंगे तो वह मुनाफ़ा नहीं होगा। यहाँ चाहे पानी का तालाब बनाना हो, खेती का काम बेहतर करना हो, छोटे-मोटे अस्पताल या अनाथालय बनाना हो या ग्राम उद्योगों को बढावा देना हो, उसमें उनको मुनाफ़ा नहीं मिलता, और जब मुनाफ़ा ज्यादा नहीं मिलेगा तो फिर करना ही क्यों?

मुनाफे की बात तो भौतिक पक्ष हो गया, मगर इसका एक आध्यात्मिक पक्ष भी है। हिन्दुस्तान के गाँवों में देश की अधिकांश आबादी बसती है। यदि उन लोगों के लिए कुटीर उद्योग, ग्राम उद्योग, लघु उद्योग, हस्त-शिल्पकला

उद्योग आदि की व्यवस्था की जाए तो बहुत कल्याण हो सकता है। हस्त-शिल्पकला दो-तीन प्रकार की तो नहीं है, हजारों प्रकार की है। हिन्दुस्तान कलाओं का देश रहा है, पर आज ये कलाएँ खत्म हो रही हैं। अगर इन लोगों को ये चीजें मुहैया करा सको, डिफेंस बजट में से थोड़ा पैसा कम करके, खेलों से थोड़ा अंश लेकर, सब मंत्रालयों से कुछ प्रतिशत राशि लेकर तो कुछ बात बन सकती है। हम तो कहेंगे कि यहाँ के लिए एक अलग सरकार और व्यवस्था ही बना दो। यह कलेक्टर-कमिशनर के हाथ की बात नहीं है, वहाँ पर तो पूर्ण विराम लग जाता है। इसे अलग ढंग से करना पड़ेगा।

गाँवों में एक बार आपको थोड़ी भी सफलता मिल गई तो शहरों में आपको मार-पिटाई करने वाले नहीं मिलेंगे। आखिर गाँव के लोग ही मजबूरन शहर में जाते हैं, वहाँ झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं। अगर गाँव में बिजली का या कुटीर धन्धे का काम मिलेगा तो सब वापस आयेंगे। शहर क्यों जायेंगे? वहाँ दो हजार रुपये में भी बसर नहीं होता, यहाँ तो चार-पाँच सौ रुपये में हो जाता है। इसलिए गाँवों का उद्धार करना होगा, क्षेत्रों को व्यापक बनाना होगा।

माला में 108 दाने होते हैं, सब अलग-अलग होते हैं पर सबको एक सूत में पिरोया जाता है। माला के दानों को आप क्षेत्र मानो और सूत को संघ मानो। हर क्षेत्र की अपनी कीमत है, अपना स्वाभिमान है। बंगाली, उड़िया, पंजाबी, सब अपने को ऊँचा समझते हैं। हरेक का अपना एक गौरव है, अपना एक इतिहास है, अपनी विशेषता है। हरेक के अन्दर एक गजब का हुनर छिपा हुआ है। सर्वांगीण विकास के लिए राष्ट्र के नाम पर क्षेत्रों को कमजोर नहीं करना है।

धार्मिक उदारता

धर्म के सम्बन्ध में भी उदारवाद होना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता न कहकर, सर्व-धर्म-स्वीकृति-भाव कहना चाहिए, सब रास्ते मेरे हैं। आज किसी को कलकत्ते से यहाँ आना है तो पश्चिम की ओर यात्रा करेगा, किसी को पटना से आना है तो पूर्व की ओर जाएगा। जिस दिन मुझे विष्णु जी का पूजा-पाठ-भजन करना है तो वैष्णव धर्म के मुताबिक करूँगा। जिस दिन मुझे भगवद्-भक्ति को वेदान्त में बदलना है तो सूफी विचारधारा रखूँगा। सूफी विचारधारा तो आशिक और माशूक की है। 'इश्क हकीकी, इश्क मिजाजी,' वहाँ भी राधाकृष्ण भाव है। भक्ति को ही अगर हम वेदान्त के रूप में समझें तो हम सूफी के रास्ते चलेंगे।

रास्ते तो सब अपने ही हैं, कोई रास्ता दूसरा नहीं है। जब हमें करुणा के रास्ते पर चलना है, दूसरों की मदद करनी है, सेवा करनी है तो उसके सबसे बड़े उदाहरण ईसा मसीह हैं। ईसा मसीह ने तो धर्म की परिभाषा इसी में दी है। धर्म की अन्तिम परिभाषा प्रार्थना नहीं है। 'स्नेह, प्रेम, करुणा, भक्ति से कोमल करो प्राण', इनसे व्यक्तित्व कोमल होता है। तो क्या ऐसा करने से हम ईसाई हो गये? क्या फर्क पड़ता है? तुम्हें कोई ठप्पा लगाने की जरूरत नहीं।

ईसाई धर्म में जो सेवा की भावना है, वह हमें बहुत प्रिय है। इसी तरह इस्लाम में भाईचारा है। हर धर्म में कोई विशेषता होती है और वह समाज और इंसान को उठाने के लिए होती है। हाँ, कुछ धर्मों में कुछ ऐसी बात होती है जो दूसरों से नहीं मिलती। पारसी पुनर्जन्म नहीं मानते। इस्लाम और पारम्परिक ईसाई धर्म में पुनर्जन्म की कोई संभावना नहीं है। चारवाक मत में भी पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं है। जैन लोग पुनर्जन्म मानते हैं, मगर दूसरे ढंग से समझाते हैं। अब इस भिन्नता के बिंदु को हमें एकता के बिंदु में बदलना पड़ेगा। जैसे संतरा होता है, अन्दर में सब फाँक रहती है, बाहर में एक रहता है। इसको कहते हैं अनेकता में एकता।

सर्व-स्तरीय-शान्ति

शांति के सम्बन्ध में एक और बात हम समझाना चाहते हैं। हिन्दुस्तान में शान्ति को तीन स्तरों पर देखा जाता है। इसलिए 'ॐ शान्तिः' नहीं, हमेशा 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' कहते हैं। अपने यहाँ एक शान्ति मंत्र है, आपने सुना होगा – '*ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः विश्वेदेवा शान्तिः।*' यह वेद का शान्ति मंत्र है। इसका मतलब यह है कि शान्ति केवल मनुष्य के दिमाग में नहीं होनी है, वनस्पति, जल, आकाश, सब जगह हम लोगों को शान्ति का तरीका निकालना पड़ेगा। अब खेतों में रासायनिक कृमिनाशक डालते हैं। उससे प्रकृति में, वनस्पतियों में असंतुलन आता है। धुआँ आसमान में उड़ रहा है, कहते हैं ओज़ोन लेयर तक पहुँच गया है। शान्ति मंत्र में जो-जो बिंदु लिखे हैं उन सब में शान्ति होनी चाहिए। शान्ति का राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक तरीका अपनी जगह ठीक है, मगर साथ ही पूरे पर्यावरण में शान्ति आनी चाहिए। वह हमलोग कर नहीं सकते हैं क्योंकि आज दुनिया इस कदर आगे जा रही है कि तूती की आवाज सुनने वाला कोई नहीं है। यह

तभी हो सकता है जब मानव सभ्यता को चोट लगे, जब मानव जाति किसी दुर्घटना से होकर गुजरे। जैसे अशोक दुर्घटना से होकर गुजरा, वैसे ही कोई बड़ी दुर्घटना होगी तभी इंसान चौंकेगा। 'अरे बाप रे! हो गया बस! परमाणु प्रयोग बंद करो भाई, अपने को नहीं चाहिए।'

शान्ति मनुष्य के जीवन की व्यापक आवश्यकता है। घर में तो तुम्हारे और तुम्हारे पिताजी के बीच झगड़ा चल रहा है, दो भाइयों में झगड़ा हो रहा है, और कहते हो कि देश में शान्ति है! शान्ति का मतलब होता है सर्व-व्यापक-शान्ति। इसलिए शान्ति के लिए हमेशा इसका तीन बार उपयोग हुआ है, शान्तिः शान्तिः शान्तिः। केवल राष्ट्र, समाज और व्यक्ति में ही नहीं, बल्कि मन के अन्दर भी शान्ति होनी चाहिए। अगर किसी को देखकर मेरे मन में बड़ी जलन होती है, मेरे मन में घृणा आती है, यह भी तो अशान्ति है। जब मनुष्य का मन विश्रांत नहीं होता, उसके मन को चोट लगती है, उसके मन में घृणा होती है, उसके मन में नासमझी और असहिष्णुता आती है। इन सबका जन्म अशान्ति से होता है।

इसलिये अशान्ति को हम हमेशा मानसिक अवस्था से जोड़ते हैं। इसको सम्भालने का सबसे अच्छा तरीका है कि हर देश के हर व्यक्ति को ऐसे काम में लगाओ, जिससे उसे आमदनी भी हो, जिसमें उसको अपना खून-पसीना भी देना पड़े और जिसको करने में आनन्द आता हो। शान्ति का यही रास्ता है। इसलिए महात्मा गाँधी हमेशा कुटीर उद्योग और ग्राम उद्योग पर भरसक जोर दिया करते थे। उससे आमदनी तो उतनी नहीं होती जितनी कारखानों में होती है, मगर ये छोटे-छोटे उद्योग इतनी बड़ी तादाद में है कि एक छोटे गरीब परिवार से लेकर करोड़पति के परिवार तक को उनकी आवश्यकता पड़ती है। फिर ऐसे देश में जहाँ आबादी इतनी ज्यादा है, ग्राम उद्योग ही समीचीन और प्रासंगिक है, जहाँ सब लोगों को हम काम बाँटकर रख सकते हैं। तभी उत्पात करने वालों की संख्या घटेगी।

अभी उत्पात करने वालों की संख्या ज्यादा है। गाँव का लड़का शहर में जाता है, वहाँ के तौर-तरीकों को वह समझ नहीं पाता, उसको झटका लगता है। फिर वहाँ की बातों को सीखने लगता है, कुसंग में पड़ जाता है क्योंकि सीधा आदमी है, और धीरे-धीरे उद्दण्ड हो जाता है। अगर उसी आदमी को अपने ही घर में कुछ छोटी-मोटी आमदनी का जरिया मिल जाता है, हम नहीं समझते कि वह बाहर जाना पसन्द करेगा। शान्ति का यही तरीका है। यह एक



बहुत अहम चीज बोल रहा हूँ। गाँव में अगर 50 प्रतिशत लोगों को आप ग्राम उद्योगों के माध्यम से आमदनी दिला सकें तो आपकी बहुत बड़ी अशान्ति की समस्या का हल हो जाएगा। और अगर आप यहाँ बगल में भारी उद्योग खोल देंगे तो गड़बड़ शुरू हो जायेगी। यहाँ बन्दूकें आ जायेंगी, लूटपाट होने लगेगी। यह तो स्पष्ट बात है, प्रमाण देने की क्या जरूरत है?

ग्राम उद्योगों में, जैसे लकड़ी के काम में, सोना-चाँदी के काम में, चूड़ी बनाने के काम में, सब छोटी जाति के लोग माहिर हैं। उसके लिए कोई बी.ए. या बी.एस.सी. जैसी डिग्री की जरूरत नहीं पड़ती। आपको यकीन नहीं होगा, हम यहाँ जो भी काम करवाते हैं, किसी को बाहर से, यहाँ तक कि देवघर से भी नहीं बुलाते हैं। सब स्थानीय हैं, 1-2 मील के अन्दर के लोग हैं। आश्रम में ट्रान्सफॉर्मर बिठा दिया है। मेरे पास इन्टरनेट, ईमेल, फैक्स भी है। मैंने दिल्ली या पटना से किसी को नहीं बुलाया। सब छोकरे यहाँ के हैं। अब मैं सेटेलाइट टीवी लेने जा रहा हूँ, और यहीं के लोगों से कराऊँगा। मोटर में कुछ गड़बड़ होती है तो यहाँ बगल के गाँव में किसी को साइकिल से दौड़ाता हूँ। बिजली मिस्त्री आकर ठीक कर देता है। कितना माहिर है! तीन मंजिल की बिल्डिंग बना रहे हैं, मार्बल टाइल्स लग रहे हैं। सारा काम यहीं के लोग कर रहे हैं और यही लोग शहर में जाकर बदमाशी करने लगते हैं।

ये छोटे-मोटे उद्योग, जैसे कपड़े, मोजे, टोपियाँ बहुत चल सकते हैं। विदेशी लोग हिन्दुस्तान आते हैं, दो-चार डॉलर में मोल ले जाते हैं। राजस्थान के चमकने वाले कपड़े, जूते, सब ले जाते हैं। स्वामी सत्संगी क्या करती थी, मालूम है? यह लंदन जाती थी तो यहाँ से छत्तीसगढ़ की 40-50 पनही ले जाती थी और वहाँ सड़क पर खड़े होकर बेचती थी। एक दिन तो इसके पैर की पनही ही बिक गई, मोजा पहनकर अपने घर आई। छत्तीसगढ़ की पनही मालूम है न, कड़े चमड़े की जूती, वहाँ काली मिट्टी के ऊपर चलने के लिए होती है। बंगाल में भी ऐसी चप्पल है। मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ। चमड़े का काम है, कपड़े का काम है, लकड़ी का काम है, पत्तों का काम है, ऐसी पचासों चीजों का काम है जो गाँवों में हो सकता है।

ताइवान और कोरिया में घड़ियाँ बनती हैं न? सस्ते में बिकती हैं और एक साल के बाद खत्म हो जाती हैं। अरे, गरीब देश को टिकाऊ चीज बनानी ही क्यों चाहिए? आज के अर्थशास्त्र में ड्यूरेबिलिटी यानी टिकाऊपन एक बहुत बड़ी आर्थिक चोट है। इस बात को नजर-अंदाज नहीं करना। अब दस साल तक तुम्हारी साईकिल चल रही है, माने दस साल तक नई साइकिल बिकेगी नहीं। इतने बड़े देश के लिए टिकाऊपन आर्थिक दृष्टि से अनुचित है। जापान की उन्नति का यही कारण रहा है। बचपन में हम सुनते थे, 'जापानी माल 3-3 आना में ले जा', हर एक चीज छ: आने में बिकती थी। टिकाऊ चीजों से बाजार मंदा होता है। एक टाईप-राइटर सालभर के लिए बनाओ, उसके बाद फेंक दो कबाड़ी में और दूसरा लाओ। तब देश की उन्नति होगी। यह चीज खासकर के ग्राम उद्योग के संदर्भ में आपको बतला रहा हूँ।

चूड़ियों का काम अच्छा है, हमारे यहाँ अगल-बगल में मुसलमान औरतें हैं, वे चूड़ियाँ बेचती हैं। शुरू में एक औरत आई जब उसका पति मर गया, उसे छः सौ की चूड़ियाँ लेकर दे दीं। हमने कहा, 'इन्हें बेचो, तुम खाओ।' यहाँ जितनी भी बेवा मुसलमान औरतें हैं, सब चूड़ियाँ बेचती हैं। हम बाजार से लेकर उनको एक डिब्बा बनाकर दे देते हैं। वे घर-घर जाकर बेचती हैं और उस पैसे से गुजारा करती हैं। इन सब चीजों पर हमलोगों को ध्यान देना चाहिए।

हमलोगों ने गाँवों को देश के विकास के नक्शे से हटा रखा है। हम किसी सरकार या पार्टी की आलोचना नहीं कर रहे हैं, मगर हम गाँवों में बहुत रहे हैं और आज भी रहते हैं। हमारा जीवन गाँवों में घूमते-घूमते बीता है। कुछ नहीं

है वहाँ। शहरों में जाते हैं तो पंखा, टेलीफोन, एयर कन्डीशनर, सब कुछ है। देश की आर्थिक सम्पदा का उचित विभाजन होना चाहिए। चाहे वह पूँजीवाद के द्वारा हो या समाजवाद के द्वारा या साम्यवाद के द्वारा, उससे अपने को कोई मतलब नहीं, मगर जब तक यह समाजवादी देश था तब तक तो नहीं हुआ। आज पूँजीवाद आ रहा है, अब क्या होता है, हम नहीं कह सकते।

शान्ति के लिए उपयुक्त वातावरण

संयुक्त राष्ट्र संघ को इस बात पर विचार करना होगा कि शान्ति का रास्ता केवल बोलने से नहीं मिलेगा। शान्ति बोलने से नहीं आती। शान्ति के लिए एक वातावरण तैयार करना पड़ेगा। हर देश को अपने संविधान में हर धर्म, हर तहजीब, उनके देश में जितने लोग हैं उनकी भाषा, उनकी पाठशालाओं को स्वतंत्रता देनी पड़ेगी। अगर आज हम रिखिया में फ्रेंच स्कूल खोलना चाहें तो खोल सकते हैं। भारत सरकार मना नहीं कर सकती। मगर पश्चिम के देशों में ऐसा नहीं है। वैसे वे लोग हिन्दी सीखते हैं, फ्रेन्च सीखते हैं, मगर उनके संविधान में आना होगा। बॉस्निया में क्या हुआ? सारायेवो में क्या हो रहा है? कोसोवो में क्या हुआ? इसका कारण क्या है? इसका मुख्य कारण यही है कि उन लोगों ने अपने संविधान में वहाँ की मुख्य धर्म-धाराओं को समान स्वीकृति नहीं दी। उन लोगों को अपना हक लड़कर लेना पड़ा और लड़ने के लिए उनको बन्दूकें उठानी पड़ीं, क्योंकि वे बालकन हैं। बालकन लोग तो लड़ना जानते हैं, शान्ति से कोई बात नहीं होती।

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वातावरण को बिगाड़ने वाली सभी चीजों पर रोक लगनी चाहिए। चाहे वह परमाणु ऊर्जा हो या कोई और चीज, उस पर रोक लगनी चाहिए। शान्ति पर वार्ता केवल दार्शनिक नहीं होनी चाहिए, इसके अंतर्गत सभी व्यावहारिक पहलू आने चाहिए।

मानसिक कर्म ही वास्तविक कर्म है

शांति का उपयुक्त वातावरण अगर तैयार हो गया तो फिर कभी झगड़ा नहीं होगा, कोई मारपीट नहीं होगी, कोई मुकदमाबाजी नहीं होगी। अभी क्या होता है? कोई हिन्दू के बारे में कहता है, यह गाय नहीं खाता। अंग्रेज तो सूअर खा लेता है, मुसलमान सूअर नहीं खाता। कोई बोलता है वह घोड़ा खाता है। ये चीजें

बहुत छोटी हैं, लेकिन इनका असर बहुत जबरदस्त होता है। इन सब चीजों को ठीक तरह से नई पीढ़ी को समझाना पड़ेगा। अरे भाई, जिसको खाना है अपना खाए, तुमको क्या फर्क पड़ता है, तुम्हारी थाली पर नहीं आयेगा, चलेगा।

एक बार मैं हवाई जहाज से जा रहा था। मेरी बगल में मेम साहब बैठी थी। मेरे लिए शाकाहारी भोजन आना था। उसका माँसाहारी खाना पहले आया। पहले तो वह मेरे लिए रुकी, पर मेरा खाना आने में देर हो रही थी। मेरे लिए तो इडली-डोसा, पूड़ी-समोसा आने वाला था और उसके तो कटे हुए सब पीस आ रहे थे। उसने सोचा, मेरा खाना बाद में आएगा। जब बहुत देर तक देखा कि मेरी थाली में कुछ नहीं है, तो उसने अपनी थाली में से एक टुकड़ा मेरी तरफ बढ़ा दिया 'प्लीज़ हैव इट' बोलकर।

फिर आपने क्या किया, स्वामीजी?

कुछ नहीं, थैंक्यू बोला, खाया नहीं। थैंक्यू बोलने में तो कोई नुकसान नहीं है न! खाया नहीं, धन्यवाद बोल दिया। हमारी विचारधारा कुछ अलग है। दूसरा जो कुछ करता है, उसका भोक्ता वह है। दूसरी चीज, दूसरे के दिल को किसी प्रकार का दु:ख उत्पन्न न हो इसके लिए तुम एक सीमा तक जा सकते हो। अब मेरी थाली में वह बीफ था कि मटन था, यह तो मुझे मालूम नहीं, लेकिन उससे मेरा भोजन तो अशुद्ध नहीं होता। मेरा तो इडली-डोसा से काम था, वह मैंने खा लिया। वह भी अपना खाने में लगी, उसको यह भी पता नहीं चला कि मैंने खाया या नहीं।

अपने यहाँ एक कथा आती है। एक महात्मा जी का आश्रम था किसी नुक्कड़ पर और उसके सामने में एक नगरवधू का घर था। महात्मा जी दिनभर देखते रहते थे कि कौन आया, कौन गया। अपने चेलों से कहते थे, 'बदजात, बदचलन औरत है, देखो न, वह आ गया, सेठजी भी आ गया।' दिनभर वे यही करते थे, और जब उनके यहाँ कीर्तन-भजन होता था तो वह वेश्या उनके कीर्तन-भजन को ध्यान से सुनती थी, आनंद लेती थी। जब दोनों मरे तो यमराज के घर पहुँचे। यमराज ने महात्मा जी को तो भेज दिया जेल में और महिला को मुक्त कर दिया। महात्मा जी बिगड़े, बोले, 'हम जीवन भर पूजा करते रहे, हमें जेल क्यों भेजते हो? वह व्यापार करती रही, अपना शरीर बेचती रही और उसे मुक्त कर दिया।' यमराज ने कहा, 'देखो, कर्म मन से होता है। शरीर का कर्म

बड़ा कर्म नहीं है। वह मन से भगवान का ही ख्याल करती थी और तुम मन से उसका ख्याल करते थे। तुमको अपने कर्म का फल मिला, उसको अपने कर्म का फल मिला है। वास्तविक कर्म मन से, भावना से, कामना से पैदा होते हैं।'

पाश्चात्य जगत् में कई ईसाई लोग योग का विरोध क्यों करते हैं?

उनमें असुरक्षा की भावना है, और कुछ नहीं। मैं तो कई बार मजाक करता हूँ, उनसे बोलता हूँ, 'भाई, तुम क्रिश्चिएनिटी-क्रिश्चिएनिटी बड़ी जोर से बोलते हो, पर तुमको मालूम होना चाहिए कि आखिर क्राइस्ट तुम्हारे यहाँ पैदा नहीं हुए। वे तो एशिया की उपज हैं और क्रिश्चिएनिटी तुम्हारा अपना धर्म तो है नहीं, इम्पोर्टेड रिलीजन है, बाहर से आया हुआ धर्म है।' लड़के लोग हमारी बात मानते हैं, बड़े लोग थोड़ा-सा हिचकिचाते हैं। अब इस बात पर क्यों लड़ते हो? अरे, दूसरे धर्म वाले को भी आने दो न, दूसरी भाषा को भी आने दो। कई देशों में हिन्दी को, संस्कृत को बहुत मानते हैं। पढ़ना चाहते हैं। कई देशों में अपना जो संगीत है, चाहे वह हिन्दुस्तानी संगीत हो या कर्णाटक संगीत,



उसको भी बहुत मानते हैं। मगर यह सब सीखने के लिए उन्हें यहाँ आना पड़ता है, वहाँ इतना अच्छा प्रशिक्षण नहीं हो पाता।

केवल एक ही चीज में ब्रेक-थ्रू हुआ है, गजब की सफलता मिली है, और वह है योग। यह ब्रेक-थ्रू कैसे हो गया योग में? बड़ा विचित्र घटनाक्रम है। 1968-69 के आसपास की बात है, वियतनाम में लड़ाई हो रही थी और अमेरिका के नागरिकों को सेना में जबरदस्ती भरती किया जा रहा था। यहूदी लोग तैयार नहीं थे, फिर भी उनको जाना पड़ता था। उन लोगों ने कानून में एक धारा खोज निकाली कि अमेरिकन सेना में उन्हीं को लिया जाये जो किसी सम्प्रदाय के साथ संबंधित न हों। यह एक लाइन मिल गयी उन लोगों को और उन्होंने एशिया से आए कुछ सम्प्रदायों को पकड़ना शुरू कर दिया। उस वक्त वहाँ प्रभुपाद भक्तिवेदान्त जी थे, हरे कृष्ण आंदोलन वाले, और हम थे। दोनों को पकड़ लिया उन्होंने। जब वे लोग हमारी योग कक्षा में आते थे तो उन्हें योग का सर्टिफिकेट मिलता था। 18 साल होने पर जब उनको सेना से भरती होने का कागज आता था तो फॉर्म में नाम-वगैरह के बाद पूछा जाता था कि किसी सम्प्रदाय से संबंधित हो क्या? तो वे हाँ लिख देते थे – 'येस, योगा', 'येस, कृष्णा कांशसनेस', और उनकी भरती पर रोक लग जाता था।

यहाँ से अमेरिका में योग प्रचार का सिलसिला शुरू हुआ। जब मैं 1968 में वहाँ पहली बार गया तब मैंने परिस्थिति को तुरंत भाँप लिया। वहाँ 17-18 साल का एक यहूदी लड़का था, उसकी हम से मुलाकात हुई। वह अमीर घर का था, पर उसे भी जब सरकार से कागज आया तो वह मेरे पास आया और बोला, 'स्वामीजी, हम आपके शिष्य बनना चाहते हैं।' हमने कहा, 'तुम किसलिए ऐसा करना चाहते हो?' वह बोला, 'वह तो हम आपको बाद में बतायेंगे। पहले आप मुझे मंत्र दे दीजिये, कपड़ा दे दीजिये और नाम भी दे दीजिये। हम आपकी क्लास में आयेंगे।' हमने उसको दे दिया। करीब दो महीने बाद वह फॉर्म लेकर आया और नीचे मुझसे दस्तखत करवा लिया कि यह लड़का मेरे सम्प्रदाय का है। बस, छुट्टी पा गया। बाद में वह कई साल आश्रम में रहा, हमारा ड्राइवर भी था, और कई सालों तक पूर्ण मौन का अभ्यास किया। स्वामी भक्तानन्द नाम है उसका।

तब हमने सोचा, 'हाँ, स्वामी सत्यानन्द, बहुत अच्छा तरीका मिला है तुमको। अब सब को मूंड़ो।' सबसे पहले यहूदी लोग मेरे पास आये और

फिर ईसाई लोग भी आये। 17-18 साल के लड़के बड़ी संख्या में आना शुरू हुए। फ्रांस में भी ऐसे ही आये, क्योंकि उस वक्त वियतनाम की लड़ाई में कोई जाना नहीं चाहता था। वह लड़ाई हनुमान जी की पूंछ की तरह बढ़ती ही जा रही थी, घटने का नाम ही नहीं ले रही थी। लोग लड़ाई में जाने के लिए तैयार नहीं थे, खासकर यहूदी लोग। हरे कृष्णा आंदोलन में भी अधिकांश यहूदी थे। वे अपने मजहब और परम्परा को बहुत मानते हैं।

यहूदी लोगों की परम्परा में आश्रम जीवन का बहुत बड़ा स्थान है। कभी इस्राएल जाने का मौका मिले तो किबूत्स में रहना, बिल्कुल आश्रम की तरह होता है। लड़के-लड़कियाँ वहाँ जाते हैं, कमरा मिल जाता है, वहाँ रहकर बगीचे का काम करते हैं, खेती का काम करते हैं, रसोई का काम करते हैं। जिम्मेदार व्यक्ति कोई नौकरी भी कर लेता है, पैसा लेकर आता है। यहूदी लोग किबूत्स, माने आश्रम प्रणाली को बहुत प्रोत्साहन देते हैं। वहाँ तुमको सैकड़ों की संख्या में किबूत्स मिलेंगे। 40-50 लड़के-लड़कियाँ मिलकर रहते हैं, समुदाय की तरह चलाते हैं। फिर दो-तीन साल के बाद सब चले जाते हैं। कोई नौकरी में इधर चला जाता है, कोई शादी में उधर चला जाता है। इस परम्परा को वे लोग बहुत मानते हैं। जब वे लोग हमारे आश्रम में या हरे कृष्ण आश्रम में आते हैं तो उनको बहुत खुशी होती है।

दूसरी बात यह कि उनके यहूदी धर्म और अपने धर्म में ज्यादा फर्क नहीं है। वे लोग ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर देते हैं, अपने यहाँ भी ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर दिया जाता है। वे पवित्रता पर बड़ा जोर देते हैं, हमारे यहाँ भी ऐसा ही है। वे बोलते हैं कि लड़के लोगों को जल्दी उठना चाहिए, बैठकर पाठ करना चाहिए। उनके यहाँ भी लम्बे-चौड़े रीति-रिवाज रहते हैं, दो-तीन दिन तक चलते हैं। अपने यहाँ भी कई दिन तक कर्मकाण्ड चलते हैं। जो परम्परा उनके यहाँ चली है वह अपने यहाँ भी चलती है, इसलिए उनको कोई दिक्कत नहीं होती।

विविधता को स्वीकारना

अगर वे लोग उस वक्त लड़ाई का विरोध नहीं करते तो लड़ाई आगे भी चलती। अशांति और असहिष्णुता की ऐसी समस्याओं को संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से किसी तरह हटाना होगा। फ्रांस में तो उतनी दिक्कत नहीं है क्योंकि वहाँ प्रवासी कम हैं, मगर अमेरिका में तो समस्या हो जाएगी। उनकी

आर्थिक परिस्थिति अगर गिरी तो वे हमलोगों की तरह सम्भाल नहीं सकेंगे। यहाँ हिन्दुस्तान में कैसे सम्भाल रहे हैं? यहाँ डेढ-डेढ कोस में तो ज़ुबान बदलती है, इतनी विविधता, इतना बहुजन समाज है यहाँ। सबका अपना-अपना तरीका है, कोई सोमवार को पूजता है तो कोई मंगलवार को तो कोई शनिवार को। साल भर में यहाँ दस नए साल आ जाते हैं, वह विक्रम संवत् का हो या बंगाली संवत् का या कोई और। ऐसी परिस्थिति में हमने सब कुछ स्वीकार किया है। इसका मतलब यह नहीं कि सरकार बंगाली संवत् माने या गुजराती संवत् माने, मगर हमने उनको स्वीकार किया है। शायद यह एकमात्र देश है जहाँ दस प्रकार के नए साल स्वीकार किये जाते हैं।

हम सब भाषाओं को स्वीकार करते हैं। हमारे संविधान में भाषाओं की लम्बी सूची आती है न, आठवें स्केड्यूल में? क्या अमेरिका कह सकता है कि हिन्दी उनके देश की भाषा है? लिख सकता है अपने संविधान में? लिखना चाहिए क्योंकि वहाँ लाखों हिन्दी भाषी जो हैं। ग्रीक, इटेलियन, फ्रेंच, स्पेनिश, चाइनीज़ – ये हमारे देश की भाषाएँ हैं, क्या ऐसा उन्होंने अपने संविधान में लिखा है? नहीं, बस लिख दिया, 'फ्रीडम ऑफ रिलीजियन, फ्रीडम ऑफ स्पीच' – धर्म और भाषा की स्वतंत्रता। संविधान में केवल स्वतंत्रता शब्द लिख देने से काम नहीं चलेगा। उसे परिभाषित करना होगा। वहाँ के संविधान में लिखा होना चाहिए कि यहाँ की भाषा हिन्दी, फ्रेंच, हीब्रू वगैरह हैं। संविधान की सूची में निर्धारित होना चाहिए कि ये इस देश की भाषाएँ हैं। यह बुनियादी काम है शांति के लिए। फ्रांस में लाखों अरबी भाषी लोग रहते हैं, क्या फ्रांस के संविधान में अरबी को फ्रांस की भाषा माना है? जिस देश में पचास-साठ लाख लोग एक भाषा बोलते हों, वह उस देश की भाषा माननी चाहिए। वह केवल मोरक्को या अलजीरिया की भाषा नहीं है। हाँ, वहाँ भी बोलते हैं, पर अब यह तुम्हारे देश की भाषा भी है। संविधान में यह कहना कि केवल फ्रेंच ही फ्रांस की भाषा है, या केवल अंग्रेजी ही इंग्लैण्ड की भाषा है गलत है। इंग्लैण्ड में लाखों लोग हिन्दी बोलने वाले हैं। उनका क्या जाता है अगर वे इंग्लैण्ड के संविधान में लिखें कि इंग्लैण्ड की ये-ये भाषाएँ हैं, उपभाषाएँ हैं, क्षेत्रीय भाषाएँ हैं या वर्गीय भाषाएँ हैं। जैसे भारत की राष्ट्रभाषा तो हिन्दी है, पर साथ ही तमिल क्षेत्रीय भाषा है, तेलुगु क्षेत्रीय भाषा है। ऐसा कहने में क्या जाता है, लेकिन वे लोग नहीं कहेंगे।

यही उनकी तथाकथित स्वतंत्र संस्कृति की बड़ी खामी है। अभी तो उनके पास टका है। तुमको और मेरे को लड़ाकर, हमें हवाई-जहाज और बम बेचकर वे अपने बेरोज़गारों को, समाज के निचले वर्ग को हफ्ते दर हफ्ते भत्ता देते जाते हैं। कल अगर यह बंद हो जाये, हम खुद अपना हवाई-जहाज बना लें, सब हम बना लें, तब तुमसे क्यों लेंगे? तब इनको हफ्ता बंद करना पड़ेगा और तब वे सब लोग सड़क पर उतरेंगे। भाषा का मुद्दा उठेगा, आखिर राजनीति में कोई मुद्दा होना चाहिए न? देखियेगा, कल वहाँ ये सब मुद्दे उठने वाले हैं।

ये मुद्दे यहाँ नहीं उठेंगे। हिन्दुस्तान का केवल एक मुद्दा है, गरीबी। भ्रष्टाचार या अव्यवस्था यहाँ का मुद्दा नहीं है। यहाँ की गरीबी और बेकारी थोड़ा हटा दो, हिन्दुस्तान हमेशा अपना गुरु पद निभाएगा। आप दुनिया के किसी भी मुल्क में चले जाओ और उसको परखकर एक केरेक्टर सर्टिफिकेट, एक चरित्र प्रमाणपत्र दो। हिन्दुस्तान को हमेशा एक शांत, गम्भीर राष्ट्र का केरेक्टर सर्टिफिकेकट मिलेगा। एक उग्र, हिंसात्मक देश को यह सर्टिफिकेट नहीं मिल सकता। जब तक संन्यासी जीवित हैं इस देश की मौलिक विचारधारा बदलेगी नहीं, क्योंकि यहाँ सभी लोग संत-महात्माओं और साधु-संन्यासियों से जुड़े रहते हैं।

राष्ट्रीय एकीकरण

हम आपको एक बात बतलाते हैं। पूरे हिन्दुस्तान में, और नेपाल में भी पूजा में नारियल इस्तेमाल होता है। काश्मीर में बिना नारियल के पूजा नहीं होती, जबकि काश्मीर में नारियल नहीं होता। केवल काश्मीर ही नहीं, मैं एक बार बलूचिस्तान गया था। बलूचिस्तान में हिंगलाज तीर्थ है जहाँ पर एक चन्द्रकूप है। उस कुएँ में नारियल डालना पड़ता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब कोई व्यक्ति भ्रूण-हत्या करता है तो उस पाप का प्रायश्चित हिंगलाज तीर्थ में होता है। हमने तो खैर कुछ किया नहीं, हम तो ऐसे ही घुमक्कड़ गए हुए थे वहाँ। कराची से बलूचिस्तान तक गए थे किसी काफिले में। हिंगलाज के पुजारी ने चन्द्रकूप में नारियल डलवाया और दक्षिणा भी ली। अच्छा, अब यह नारियल वहाँ कहाँ से आ गया? नारियल तो बंगाल में या फिर दक्षिण भारत में होता है। यह हमारी संस्कृति का बहुत बड़ा हिस्सा है। सुपारी हमारे यहाँ हर पूजा में चलती है। बिना सुपारी के तो भगवान प्रसन्न ही नहीं होते हैं। *पूगीफलं समर्पयामि* – पूगीफल याने सुपारी कहाँ

होती है? दक्षिण भारत में। हिन्दुस्तान की भावनाओं को नारियल जैसी चीजों ने एक कर दिया।

दूसरी बात, हिन्दुस्तान में जहाँ भी लोग रहते हैं, रामेश्वरम् से काश्मीर तक और कटक से गुजरात तक, जब उनको तीर्थयात्रा करनी होती है तो सब उत्तर भारत की ओर आते हैं। त्रिवेणी संगम में स्नान करने के लिए आयेंगे या वाराणसी में आयेंगे या चार धाम की यात्रा करेंगे। जब किसी को संन्यास लेना होगा तो दक्षिण भारत से उत्तर की ओर आयेगा। उत्तर से कोई भी आदमी संन्यास लेने के लिए दक्षिण भारत नहीं जाता। अगर यहाँ किसी को संन्यास लेना है तो पहली चीज है ऋषिकेश जाओ। राष्ट्र को एक करने के लिए एक अद्भुत परम्परा की जरूरत है, एक केंद्र की जरूरत है।

क्या शंकराचार्य ने यह परम्परा बनाई?

किसी ने यह परम्परा बनाई नहीं, यह अपने आप हो गया। कैसे हुआ, कब से हुआ? कुम्भ मेले का उल्लेख तो हर्षवर्धन के समय से मिलता है। तेरह-चौदह सौ साल हो चुके हैं। जगन्नाथ पुरी की रथयात्रा का जिक्र बाइबल में है। एक्वेरियन बाइबल में लिखा है कि क्राइस्ट ने जगन्नाथ पुरी की रथयात्रा देखी थी। दो हजार साल पुरानी बात है। यह परम्परा किसने बनाई होगी? कुछ ऐसे लोगों ने, जिन्हें मालूम था कि अलग-अलग मनुष्यों, जातियों और क्षेत्रों के बीच खाई को कम करने के लिए कुछ व्यावहारिक चीजों की जरूरत है, जैसे नारियल। अब नारियल जहाँ भी गया होगा मुफ्त में तो नहीं गया होगा, बिका होगा। केरल का नारियल जब बलूचिस्तान में बिक सकता है तो केरल के आदमी को क्या आपत्ति होगी? उसको तो पैसा मिल रहा है। अगर त्रिवेणी संगम में दक्षिण के लोग आते हैं तो त्रिवेणी वालों को क्या एतराज़? उन्हें तो फायदा ही है।

समाज को नजदीक लाने के लिए उसके स्वाभाविक स्वार्थों को भी जोड़ना पड़ेगा, केवल आध्यात्मिकता जोड़ना काफी नहीं है। अंत में किसी का नारियल, किसी की सुपारी, किसी का पान बिका न? अपने वैदिक धर्म में तो पान-सुपारी के बिना पूजा ही नहीं होती। *ताम्बूलपत्रं समर्पयामि पूगीफलं समर्पयामि* – मैं पान-सुपारी चढ़ाता हूँ। मनुष्य के निजी स्वार्थ का ध्यान रखना होगा, क्योंकि आदमी वैसे कुछ करे या न करे, स्वार्थ के लिए जरूर करता है।

– 25 मार्च 1998, रिखियापीठ

नोट

नोट



स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती झारखण्ड राज्य के अज्ञात-से गाँव, रिखिया में सन् 1989 में पधारे और यहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। गहन वैदिक तपस्याओं और साधनाओं को सम्पन्न कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए संन्यास परम्परा का एक उच्च आदर्श स्थापित किया। सन् 2007 में उन्होंने 'सेवा, प्रेम और दान' के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से रिखियापीठ की स्थापना की। 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि में वे यौगिक विधि से स्वेच्छानुसार महासमाधि में लीन हो गए।

यह पुस्तक श्री स्वामीजी द्वारा रिखियापीठ में जनवरी से मार्च 1998 के बीच दिये गये सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने अध्यात्म विद्या, भगवद् भक्ति, योग, संन्यास परम्परा, सेवा, आरोग्य, ग्रामीण विकास, पौराणिक इतिहास, महिला-कल्याण तथा अर्थशास्त्र जैसे अनेक प्रासंगिक विषयों पर अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजी के व्यावहारिक तथा प्रेरक विचार जीवन में प्रकाश खोजते सभी जिज्ञासुओं को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।



ISBN : 978-81-946102-8-1